अनुभूमिका (४)[१]

जो यह १४ चौदहवां समुल्लास मुसलमानों के मत-विषय में लिखा है सो केवल '**क़ुरान**' के अभिप्राय से [है,][२] अन्य ग्रन्थ के मत से नहीं; क्योंकि मुसलमान '**क़ुरान**' पर ही पूरा-पूरा विश्वास रखते हैं। यद्यपि फ़िरके[३] होने का कारण किसी शब्द, अर्थ आदि विषय में विरुद्ध बात है, तथापि '**क़ुरान**' पर सब ऐकमत्य हैं।

जो 'क़ुरान' अरबी[४] भाषा में है, उस पर मौलवियों ने उर्दू में अर्थ लिखा है। उस अर्थ का देवनागरी अक्षर और आर्यभाषान्तर कराके पश्चात् अरबी के बड़े-बड़े विद्वानों से शुद्ध करवाके लिखा गया है। यदि कोई कहे कि यह अर्थ ठीक नहीं है, तो उसको उचित है कि मौलवी साहबों के तर्जुमाओं का पहिले खण्डन करे, पश्चात् इस विषय पर लिखे;[५] क्योंकि यह लेख केवल मनुष्यों की उन्नति और[६] सत्यासत्य के निर्णय के लिये [है] अर्थात्[७] सब मतों[८] के विषयों का थोड़ा-थोड़ा

---

१. **अनुभूमिका लेखन**—मूलहस्तलेख लिखाते समय यह '**अनुभूमिका**' नहीं लिखाई गई थी, अतः यह मूलहस्तलेख में नहीं है। यह मुद्रणहस्तलेख लिखे जाने के बाद किसी समय लिखाकर उसमें बाद में संलग्न की है। उसी के आधार पर द्वितीय सं० में प्रकाशित है। मूलप्रति सं० में मुद्रणहस्त० और द्वितीय सं० से ग्रहण करके प्रकाशित की गई है।

२. **त्रुटित आवश्यक पद**—मुद्रणह० द्विप्र० तथा द्वितीय संस्करण मूलप्रति सं० में यहां '**है**' क्रिया नहीं है। वाक्यरचना की दृष्टि से यह आवश्यक है।

३. **फ़िरका से अभिप्राय**—सभी मुसलमान कुरान पर एकमत हैं और उसको अपना धर्मग्रन्थ मानते हैं, किन्तु इनमें वंश, परम्परा, सिद्धान्त आदि के मतभेदों के आधार पर अनेक उपसम्प्रदाय बन गये हैं जिनकी संख्या ७५ के लगभग है। जैसे—शिया, सुन्नी, अहमदिया आदि। इन आन्तरिक सम्प्रदायों में भी परस्पर युद्ध और संघर्ष चलते रहते हैं जिनके परिणामस्वरूप भयंकर रक्तपात होते रहे हैं। शिया और सुन्नी तो एक-दूसरे के घोर विरोधी और जान के दुश्मन हैं।

४. **अव्यवस्थित वर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में इस भाषा-नाम और देश के नाम की वर्तनी में पर्याप्त अव्यवस्था है। इतनी प्रमादपूर्ण अव्यवस्था है कि लिपिकरों और शोधकों पर क्रोध भी आता है और उनकी अयोग्यता पर तरस भी आता है। ग्रन्थकार बोलते एक ही शब्द थे किन्तु लिपिकरों ने उसको कहीं '**अरबी**' तो कहीं '**अर्बी**' लिखा है। यहां तक कि एक ही वाक्य में यदि यह शब्द दो बार लिखा है तो दोनों वर्तनियां भिन्न हैं (द्रष्टव्य मूलप्रति सं० पृ० ७२६ और द्वि० सं० पृ० ४०३), अनुच्छेदों में तो यह बुरा हाल कई स्थानों पर है। संस्करणों में यह स्थिति है कि मूलहस्त० में लिपिकर ने जो वर्तनी लिखी है तो मुद्रणहस्त० के लिपिकर ने प्रतिलिपि करते समय उसमें भिन्न वर्तनी बना दी। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

१. **अरबी**—मूलप्रति सं० पृ० ६४५, ७२६।	द्विप्र० सं० पृ० ५२१, ५८४।
अरब देश—मूलप्रति सं० पृ० ६४५, ७११, ७१४, ७१६, ७२४।	द्विप्र० सं० पृ० ५२१, ५७५, ५८२।
२. **अर्बी**—मूलप्रति सं० पृ० ६४१, ६८७, ७२६, ७२७।	द्विप्र० सं० पृ० ५१९, ५५३, ५८४।
अर्ब देश—मूलप्रति सं० पृ०- ७०४, ७०८।	द्विप्र० सं० पृ० ५६७, ५७०, ५७६।

यही अव्यवस्था **स्वामी वेदानन्द जी, सिद्धान्ती जी**, **पं० भगवद्दत्त जी, पं० युधिष्ठिर मीमांसक** तथा **उदयपुर सं०** सहित सभी संस्करणों में पाई जाती है। भाषात्मक एकरूपता, व्यवस्था और मानकता की दृष्टि से एक ही वर्तनी अपेक्षित है। इस संस्करण में सर्वत्र '**अरबी**' और '**अरब**' वर्तनियां ग्रहण की गई हैं। आगे इस विषयक टिप्पणी नहीं दी जायेगी।

५. **कुरान के अनुवाद के स्रोत**—इस वाक्य से नितान्त स्पष्ट है कि **महर्षि ने आयतों का जो हिन्दी-अनुवाद सत्यार्थप्रकाश में ग्रहण किया है, वह मौलवियों द्वारा किया हुआ है।** आगे (पृ० १०२६ पर) जो '**तफ़सीर हुसैनी**' आदि भाष्यों से जो टिप्पणी दी हुई है वह भी यह संकेत देती है कि मौलवियों के प्रचलित भाष्यों को आधार बनाया गया है। **पं० रामचन्द्र जी देहलवी** और **प्रो० राजेन्द्र जी जिज्ञासु** (अबोहर) का मत है कि ग्रन्थकार ने मुख्यतः **शाह रफ़ीउद्दीन** तथा **शाह अब्दुल कादिर** के भाष्यों से अनुवाद ग्रहण किया गया है।

ज्ञान होवे, इससे मनुष्यों को परस्पर विचार करने का समय मिले और एक-दूसरे के दोषों का खण्डन कर गुणों का ग्रहण करें। **मेरा[१] न किसी अन्य मत पर, न इस मत पर झूठ-मूठ बुराई वा भलाई लगाने का प्रयोजन है किन्तु जो[२] भलाई है, वही भलाई और जो बुराई है, वही बुराई सबको विदित होवे। न कोई किसी पर झूठ चला सके और न सत्य को रोक सके। और सत्यासत्य विषय प्रकाशित किये पर भी जिसकी इच्छा हो, वह न माने, वा माने; किसी पर बलात्कार नहीं किया जाता।**

और यही सज्जनों की रीति है कि अपने वा पराये दोषों को दोष और गुणों को गुण जानकर गुणों का ग्रहण और दोषों का त्याग करें और हठियों का हठ-दुराग्रह न्यून करें-करावें; क्योंकि पक्षपात से क्या-क्या अनर्थ जगत् में न हुए और न होते हैं? सच तो यह है कि इस अनिश्चित क्षणभंगुर[३] जीवन में पराई हानि करके लाभ से स्वयं रिक्त रहना और अन्य को रखना मनुष्यपन से बहि: है।

इसमें[४] जो कुछ विरुद्ध लिखा गया हो, उसको सज्जन लोग विदित कर देवें।[५] तत्पश्चात् जो उचित होगा तो माना जायगा, क्योंकि यह लेख हठ-दुराग्रह, ईर्ष्या-द्वेष, वाद-विवाद और विरोध घटाने के लिये किया गया है, न कि इनको बढ़ाने के अर्थ। क्योंकि एक-दूसरे की हानि करने से पृथक् रह परस्पर को लाभ पहुँचाना, हमारा मुख्य कर्म है। अब यह (१४) चौदहवें समुल्लास में मुसलमानों का मत-विषय सब सज्जनों के सामने निवेदन करता हूँ।[६] विचार कर, इष्ट का ग्रहण, अनिष्ट का परित्याग कीजिये।

अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वर्येषु।

इत्यनुभूमिका॥

---

६. **उचित परिवर्धन**—मूलप्रति सं० में यहां ''**और**'' पद त्रुटित है। मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में गृहीत है।

७. **मुद्रणलिपिकर द्वारा पाठनिष्कासन**—मूलप्रति सं० में यहां ''**अर्थात्**'' पद है जो आवश्यक और सार्थक है, क्योंकि पूर्व वाक्य का स्पष्टीकरण ''**अर्थात्**'' लिखकर अगले वाक्यों में किया है। मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में गम्भीरता से समझे बिना इसको हटा दिया है, जो अपपरिवर्तन है।

८. **उचित संशोधन**—मूलप्रति सं० में यहां ''**मत**'' एकवचनात्मक अपप्रयोग है, ''**सब**'' पद के सम्बन्ध से बहुवचन अपेक्षित है।

१. **त्रुटित आवश्यक पद**—तीनों सं० में ''**मेरा**'' पद त्रुटित है। वाक्यरचना के लिए आवश्यक है।

२. **अनावश्यक पद**—तीनों सं० में यहां ''**जो-जो**'' पद की द्विरुक्ति अनावश्यक है। यहां एक ही ''**जो**'' पद अपेक्षित है।

३. **अपप्रयोग**—तीनों सं० में यह पद कहीं शुद्ध ''**क्षणभंगुर**'' (द्र० मूलप्रति सं० पृ० ४९४, ४९५; द्विप्र० ४०७, ४०८; द्वि०सं० २८२, २८३) प्रयुक्त है, तो कहीं अशुद्ध ''**क्षणभंग**'' है। **संशोधन-पुष्टि**—यह विशेषण है, अत: इसका शुद्ध रूप ''**क्षणभंगुर**'' होगा। यही सर्वत्र ग्राह्य है। शुद्ध पद द्रष्टव्य है इस सं० में पृ० ७५४, ७५५ पर श्लोक १ में। इस पर सिद्धान्ती जी की टिप्पणी अशुद्ध है। वे 'क्षणभंगुर' अर्थ में 'क्षणभंग' का प्रयोग मानते हैं जो व्याकरणिक दृष्टि से गलत है।

४. **अपपरिवर्तन**—द्वि०सं० में ''**इससे**'' अपप्रयोग है। मूलप्रति सं० में ''**इसमें**'' शुद्ध है, वही ग्राह्य है।

५. **अपपरिवर्तन**—द्वि०सं० में यहां ''**देंगे**'' क्रिया है। यह '**जब**' प्रयोग के साथ आती है। अनुरोधार्थ में ''**देवें**'' क्रिया चाहिए।

६. **चौदहवें समुल्लास की रचना का इतिहास और इसके आधार ग्रन्थ**—ऋषि दयानन्द ने जून-अगस्त १८७४ ईस्वी में 'सत्यार्थप्रकाश' का प्रथम संस्करण महाराष्ट्रीय पं० चन्द्रशेखर को बोलकर लिखवाया था और राजा जयकृष्णदास जी मुरादाबाद निवासी (तब डिप्टी कलक्टर काशी) को प्रकाशनार्थ दे दिया था। इस संस्करण में १४ समुल्लास लिखाये थे किन्तु उसमें १३ वां समु० 'इस्लाम मत-समीक्षा' का रखा था और १४ समु० 'ईसाई मत-समीक्षा' का। राजा जी ने सन् १८७५ में प्रथम संस्करण प्रकाशित करा दिया था किन्तु उसमें १३, १४ समुल्लास तथा 'स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश' नहीं छापा। इसका कारण यह रहा कि राजा साहब अंग्रेज सरकार की सेवा में थे, अत: वे सरकार के और मुसलमानों के रोषपात्र नहीं बनना चाहते थे।

सत्यार्थप्रकाश को परिवर्धित करके महर्षि ने इसका दूसरा संस्करण तैयार कराया जो जुलाई, १८८२ तक तैयार हो चुका था। उसमें यह परिवर्तन किया कि मतों के उद्‌भव के कालक्रमानुसार १३वां समु० ईसाईमत-समीक्षा का तथा १४वां इस्लाममत-समीक्षा का रखा। मुद्रणप्रति के १४वें समुल्लास का निरीक्षण-संशोधन और प्रकाशित प्रूफ का निरीक्षण महर्षि नहीं कर सके थे क्योंकि ३० सितम्बर १८८३ को विष दे दिये जाने के कारण वे अस्वस्थ हो गये थे। इस समु० का निरीक्षण-संशोधन मुंशी समर्थदान जी ने अपने विवेक से किया है। उनसे बहुत-सी त्रुटियां भी हो गई हैं। हाँ, मूलप्रति के सभी समुल्लासों का निरीक्षण-संशोधन महर्षि ने अपने आप किया है। मूलपाठ के रेखांकित स्थल उसके प्रमाण हैं। यह मूलप्रति को विशेष प्रामाणिकता प्राप्त है।

महर्षि ने कुरान की आयतों का अनुवाद मौलवियों द्वारा रचित भाष्यों से ग्रहण किया है, अतः अनुवाद की अशुद्धियों का दायित्व भी मौलवियों का है। इस्लाम अथवा कुरान-मत की व्यापक समीक्षा के लिए महर्षि ने कुरान का अनुवाद भी तैयार करवाया था जो आज भी परोपकारिणी सभा अजमेर के पुस्तकालय में सुरक्षित है। इसके अन्त में लेखनकाल कार्तिक शुक्ला ९, संवत् १८३५ (३ नवम्बर, १८७८ ई०) लिखा है। यह अनुवाद किसने किया, उसका उल्लेख इसमें नहीं है किन्तु महर्षि के पत्र-व्यवहार से यह जानकारी मिलती है कि उस हिन्दी कुरान का संशोधन मुंशी मनोहरलाल जी रईस, मोहल्ला गुड़हट्टा, पटना निवासी ने किया था। महर्षि ने इनसे समीक्षा लिखने में भी सहयोग लिया था। ये अरबी भाषा के अच्छे विद्वान् थे। यह निश्चित है कि ये अनुवादक नहीं थे, क्योंकि अनुवादक ने हिन्दी-कुरान के अन्त में अपना स्थान ''**अयं ग्रन्थः सम्पूर्णः। इन्द्रप्रस्थ नगरे।**'' लिखा है। इससे इतना ही ज्ञात होता है कि कुरान का अनुवादक कोई दिल्ली का निवासी था। **भले ही यह अनुवाद अब तक प्रकाशित न हुआ हो, किन्तु यह श्रेय ऋषि दयानन्द द्वारा करवाये इसी अनुवाद को जाता है कि यह विश्व में कुरान का सबसे प्रथम हिन्दी अनुवाद है।**

द्वितीय संस्करण की आयतों में संशोधन परोपकारिणी संस्करण की २६वीं आवृत्ति के समय आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान् **पं० महेशप्रसाद जी मौलवी** 'आलिम फाजिल' ने किया। चौदहवें समु० की आयतों की संख्याओं में संस्करणानुसार अन्तर मिलता है। इसके मुख्य दो कारण हैं, **एक**- १४ वां समु० मुद्रित करते समय मुंशी समर्थदान ने कुछ आयतें अपने दृष्टिकोण से निकाल दीं। **दूसरा**- हस्तलिखित कुरान की जिल्द बांधते समय उसके ८-९ पृष्ठ १५ के बाद गलती से जुड़ गये जिसके क्रमानुसार कुछ बाद की आयतें पहले लिखी गईं और पहले की पीछे लिखी गईं। नये संस्करणों में उनका क्रम संशोधित कर दिया गया है। परोपकारिणी सभा ने ३७-३९ संस्करणों के रूप में परम्परागत द्वितीय संस्करण को छोड़कर मूलहस्तलेख पर आधारित '**मूलप्रति संस्करण**' प्रकाशित किया है। उसमें मुंशी समर्थदान जी द्वारा अनधिकार चेष्टा से निकाली गई सभी आयतों को पुनः सम्मिलित कर लिया है। इस प्रकार कुल आयतखण्ड संख्या १६१ के स्थान पर १७१ बन गई है जो वस्तुतः १७२ होनी चाहिए। इन १७२ आयतखण्डों में महर्षि ने कुल ४०९ आयतों की समीक्षा की है।

आयतों खण्डों की संख्या में अन्तर का कारण—मूलप्रति संस्करण में कुरान की कुल आयतखण्ड संख्याएं १७१ हैं। इस सं० में १७२ हैं। द्वितीय संस्करण (प्रथमावृत्ति) में १५९ हैं और परवर्ती द्वितीय संस्करणों में १६१ हैं। इसका कारण यह है कि द्वितीय सं० (सन् १८८४) में आयतखण्ड संख्या ४८ (द्वि०सं० में ४६ 'जो लोग ब्याज खाते हैं.....') नहीं है। आयतखण्ड संख्या १४ में दो आयतें ''**हमने मूसा को किताब.....**'' और ''**हमने उनको कहा कि तुम निन्दित बन्दर हो जाओ.....**'' (द्वि०सं० में १४, १७ तथा इस सं० में भी १४, १७) क्रमविरुद्ध रूप में संयुक्त हैं। इस प्रकार परवर्ती द्वितीय सं० की तुलना में दो आयतखण्ड कम होकर १५९ कुल योग है। परवर्ती ३४वें द्वितीय संस्करणों में आयतखण्ड संख्या ४६ को पुनः सम्मिलित कर लिया गया और आयतखण्ड संख्या १४ को दो आयतों (१४ और १७) में उचित क्रम में रखकर दो आयतखण्डों को विभक्त कर दिया गया, तो वह संख्या बढ़कर १६१ हो गई।

परवर्ती द्वितीय सं० में इस संस्करण तथा मूलप्रति सं० की अपेक्षया ये आयतखण्ड नहीं हैं—३३, ३४, ५७, ६२, ६३, ७३, ८३, १५१, १५२, १५३, १५५=कुल ११। १७२ में से ११ घटाने पर १६१ कुल संख्या शेष बचती है। मूलप्रति सं० में १४ और १७ खण्ड-संख्याओं को संयुक्त किया हुआ है] अतः उसकी कुल आयतखण्ड संख्या १७१ बनती है। द्वितीय संस्करण के उचित संशोधन को ग्रहण करते हुए इस संस्करण में १४ और १७ आयतखण्डों को पृथक्-पृथक् रखा गया है, अतः इस संस्करण में आयतखण्ड संख्याएं १७२ हो गई हैं। इनके अतिरिक्त कुल आयतखण्डों में से आठ आयतें द्विप्र०, द्वि०सं० में समीक्षासहित हटा रखी हैं, वे हैं—आयतखण्ड संख्या ६ में से २.९; ५५ में से आयत संख्या ३.१०२; ८१ में से ७.१२७; ९२ में से ९.३६; १०८ में से १६.४; ११९ में से २१.९, २२; ९९ में से ११.७ आयत का अर्धांश हटाया गया है। ये सब मूलप्रति हस्तलेख व मुद्रणप्रति हस्तलेख में हैं। मुद्रण-समय मुंशी समर्थदान जी ने इनको अनावश्यक और पुनरुक्ति मानकर हटाया है जबकि महर्षि यह दिखाना चाहते थे कि पूर्वापरविरुद्ध, पुनरुक्ति आदि दोषों का 'कुरान' भंडार है। (पृ० १०४२)। इन १७२ आयतखण्डों में कुरान की कुल ४०९ आयतों की समीक्षा की गई है। इस समुल्लास के प्रकाशन-समय महर्षि जीवित नहीं थे। यदि वे जीवित होते तो मुंशी समर्थदान जी को अपना बहुमूल्य और दुर्लभ श्रम व्यर्थ घोषित नहीं करने देते। द्वि०सं० के पक्षधर अब भी मुंशी जी द्वारा निकाली गई आयतों को ग्रहण नहीं कर रहे हैं। इसका सीधा-सा अर्थ यह निकलता है कि वे लोग महर्षि को कम और मुंशी जी को अधिक महत्त्वपूर्ण तथा प्रामाणिक मानते हैं। इस सोच का नाम 'ऋषिभक्ति' नहीं है।

अथ चतुर्दशसमुल्लासारम्भः[१]

अथ यवनमतविषयं व्याख्यास्यामः

इसके आगे मुसलमानों के मत-विषय[२] में लिखेंगे—

१. आरंभ साथ नाम अल्लाह[३] के, क्षमा करनेवाला दयालु। १।[४]

मंजिल १। सिपारा १। सूरत १॥

१. **त्रुटित शीर्षक**—दोनों हस्तलेखों में चतुर्दश समुल्लास-बोधक उक्त शीर्षक लिखित नहीं है। यह मुद्रण-समय में शैली की एकरूपता के लिए सम्पादकों ने अंकित किया है, जो दोनों सं० में गृहीत है।

२. **इस्लाम, उसके संस्थापक और कुरान का संक्षिप्त परिचय**—इस्लाम के संस्थापक हजरत मुहम्मद थे। उनका जन्म अरब के मक्का नगर में सोमवार, ११ नवम्बर ५६९ ईस्वी (मतान्तर से १० नवम्बर ५७० ईस्वी या २९ अगस्त ५७० ईस्वी) को कुरैश वंश में हुआ। इनके पिता का नाम अब्दुल्लाह था और माता का नाम आमिना था। हज० मुहम्मद पहले बकरियां चराते थे। फिर व्यापार का काम शुरू किया। जब पच्चीस वर्ष के हुए तो उन्होंने चालीस वर्षीय विधवा महिला बेगम खदीजा से विवाह कर लिया। वे एक धनाढ्य महिला थीं। हज० मुहम्मद धार्मिक तथा निरक्षर थे। वे रमजान के महीने में मक्का से तीन कि०मी० दूर 'हिरा' नामक पहाड़ की गुफा में जाकर ईश्वर का स्मरण किया करते थे। लिखा मिलता है कि चालीस वर्ष की अवस्था में उन पर अर्थात् उनके मस्तिष्क में कुरान की पहली आयत उतरी। यह आयत रमजान महीने की २७वीं रात को उतरी थी, और कहा जाता है कि तेईस वर्ष तक अर्थात् देहवसान तक आयतें उतरती रहीं। उसके बाद कुरान का लेखन व संग्रह हुआ।

सामाजिक सुधारों के लिए और मूर्तिपूजा के विरुद्ध उन्होंने निराकार एक अल्लाह में ईमान रखने का संदेश दिया। पहले प्रयास में केवल १०-११ ही मुसलमान बने। यहूदी अत्याचारों के कारण उन्हें भी मक्का छोड़ना पड़ा। धीरे-धीरे अनुयायियों की संख्या बढ़ती गई। हज० मुहम्मद ने फिर युद्ध करके ६३० ईस्वी में मक्का में अपने शासन और पन्थ की स्थापना की। तब इस्लाम को एक राज्य का आश्रय मिल गया। उसके आश्रय से वह बढ़ता गया। कहा जाता है कि अपने जीवन में हज०मुहम्मद ने २७ प्रमुख युद्ध किये जिनमें अधिकांश में उन्हें विजय प्राप्त हुई। हिजरी २२ सन् की १२ रबी उल अव्वल को (या ११ हिजरी में) ६३ वर्ष की आयु में इनका देहान्त हो गया।

मुहम्मद साहब की पत्नियां—इनकी पत्नियों की संख्या के विषय में लेखकों में मतभेद है। कोई १९, कोई १४, कोई ९ पत्नियाँ मानते हैं। अधिकांश लेखक ग्यारह पत्नियों से सहमत हैं। **(१) बेगम खदीजा**—यह चालीस वर्षीया दो बार विधवा हुई थी। उस समय मुहम्मद साहब की आयु २५ वर्ष थी। ये उसके यहाँ नौकर थे। फिर बेगम से शादी करके हज० मुहम्मद उसके पति बन गये। **(२) बेगम सौदा (विधवा)**, **(३) श्रीमती आयशा**—यह हज० अबुबक्र की बेटी और मुहम्मद साहब की खानदानी भानजी थी। विवाह के समय मुहम्मद साहब की आयु ५० वर्ष और आयशा की ६ वर्ष थी। १८ वर्ष की अवस्था में यह विधवा हो गई। **(४) बेगम हफ़सा**—हज० उमर की बेटी थी, विधवा थी। **(५) बेगम जैनब (प्रथम)**—दो बार की विधवा। **(६) बेगम उम्मे सलमा**—विधवा थी। **(७) श्रीमती जैनब (द्वितीय)**—मुहम्मद साहब के दत्तक पुत्र जैद बिन हारसा की पत्नी थी और इनकी फूफी की बेटी थी। बेटे जैद से तलाक के बाद विवाह किया। **(८) बेगम जोयरया**—युद्ध में बन्दी बनाई गई २० वर्षीय महिला। **(९) बेगम उम्मे हबीबा**—ईसाई पति से तलाक के बाद विवाह। **(१०) बेगम सफया**—युद्ध में बन्दी बनाई गई १७ वर्षीया महिला। **(११) बेगम मैमूना**—विधवा स्त्री। ('विश्वधर्म परिचय'—एच० राय गुप्त, पृ० ५७५-५७९) इनके अतिरिक्त लगभग आधा दर्जन दासियां मुहम्मद साहब के पास थीं। दासी से सम्बन्ध की एक कथा पृ० १०३३ पर वर्णित है।

सन्तानें—इनके तीन बेटे और चार बेटियाँ थीं। मारिया या मरियम दासी से उत्पन्न इब्राहीम को छोड़कर सभी सन्तानें बेगम खदीजा से थीं। तीनों लड़के बचपन में ही मर गये। बेटियां जीवित रहीं।

कुरान के निर्माण का परिचय—आजकल मुस्लिम लेखकों द्वारा यह स्थापित करने का प्रयत्न किया जा रहा है कि कुरान का अन्तिम संग्रह मुहम्मद साहब के जीवनकाल में हो चुका था। किन्तु यह प्रचलित इतिहास के विरुद्ध है। हज० मुहम्मद अशिक्षित थे, उनके मन में जो विचार आते थे, जिन्हें 'अल्लाह का उपदेश उतरना' कहा जाता है, उनका लेखन उनके साथ

रहनेवाले शिक्षित जन किया करते थे। उनकी आयतें उपलब्ध वस्तुओं पर लिख दी जाती थीं; जैसे कोई खजूर के पत्ते पर, कोई पत्थर के टुकड़े पर, ऊंट की काठियों या ऊंटों की हड्डियों पर। हज० मुहम्मद की मृत्यु के उपरान्त हज० अबुबक्र ने जैद बिन साबित को कहकर कुरान की आयतों का संग्रह कराया। जैद बिन साबित द्वारा संग्रहीत कुरान बेगम हफ़सा (मुहम्मद साहब की पत्नी और हज० अबुबक्र की बेटी) के पास सुरक्षित रहा।

हज० उसमान जब खलीफ़ा (=शासक) बने तो उन्होंने कुरान के कई पाठ देखे जिनमें आयतों में अन्तर था। **उन्होंने चार इस्लामी विद्वानों—अब्दुल्ला बिन ज़बीर, सईद बिन इलआस, अब्दुल रहमान बिन आरिस और ज़ैद बिन साबित की समिति बनाकर उनके सम्पादकत्व में फिर से सन् ६५१ में कुरान तैयार कराया।** बेगम हफ़सा के कुरान से उसको मिलाया गया फिर उन्हें वह प्रति वापस कर दी। हज० उसमान ने मुस्लिम राज्यों में नयी प्रति भेजकर अन्य सब पुरानी प्रतियों को नष्ट कराने का आदेश दिया और केवल नये संस्करण को ही मान्य करने का आदेश दिया। बेगम हफ़सा वाले कुरान को भी मदीना के हाकिम मर्दान ने प्रार्थना करके नष्ट करवा दिया। हज० सालिम और हज० अली ने भी एक अन्य कुरान संग्रहीत किया था। उसे भी नष्ट करा दिया गया।

उपलब्ध कुरान में एक-एक 'सूरा' या 'सूरत' में भिन्न-कालों में उतरी आयतों को विषयानुकूल और क्रमबद्ध रूप में संकलित कर सम्पादित किया गया है। जो इस तथ्य को सिद्ध करता है कि हज० मुहम्मद पर उतरी आयतों में विषयानुकूलता और क्रमबद्धता नहीं थी और उन्हें उनके अनुयायियों ने ही व्यवस्थित किया है। यह कार्य तभी सम्भव है, जब मुसलमानों के मतानुसार, आयतें उतरने का कार्य पूर्ण हो गया हो। पूर्ण होना तभी सम्भव है जब हज० मुहम्मद का निधन हो चुका हो क्योंकि आयतें उतरने का सिलसिला उनके जीवित रहते निरन्तर जारी रहा। इस प्रकार परिस्थितिजन्य साक्ष्यों के आधार पर उपलब्ध कुरान का लेखन-संकलन मुहम्मद साहब के निधन के उपरान्त ही सिद्ध होता है।

इस विवरण के अनुसार वर्तमान कुरान का स्वरूप सन् ६५१ का निर्धारित होता है। अर्थात् हज० मुहम्मद के देहान्त के १९ वर्ष बाद इसका प्रामाणिक संग्रह हुआ। ('विश्वधर्म परिचय'—एच०राय गुप्त, पृ० ५४१, ५५३-५५४)

मुसलमानों ने कुरान का एक बार पाठ निर्धारण करके बड़े परिश्रम से उसकी रक्षा की है। उन्होंने इसके अक्षर तक गिनकर उनका रिकार्ड सुरक्षित कर दिया है। कुरान में ३० पारे (=पर्व), ११४ सूरतें (=सूक्त), ६६६६ (या ६३६०) आयतें (ऋचाएं या श्लोक) ७९४३६ कलमे (=शब्द) और ३२३७४१ हर्फ़ (=अक्षर) हैं।

सम्प्रदायों का उद्‌भव—मुहम्मद साहब के जीवन काल तक मुसलमानों में कोई सैद्धान्तिक विरोध नहीं था। उनके बाद मुस्लिम विद्वानों ने अनेक धार्मिक पुस्तकें लिखीं जिन्हें 'हदीस' कहा जाता है। कुरान के भाष्य, आयतों के स्वरूप और हदीसों को लेकर मुसलमानों में सैद्धान्तिक मतभेद होते गये जिनके परिणामस्वरूप इनमें ७५ बड़े सम्प्रदाय और ३०० के लगभग उपसम्प्रदाय बन गये। तीन प्रधान सम्प्रदाय हैं—शिया, सुन्नी और अहमदिया। इनमें परस्पर साम्प्रदायिक झगड़े और रक्तपात होते रहते हैं। शिया-सुन्नियों के संघर्ष तो विश्वप्रसिद्ध हैं। एक-दूसरे से उनका घोर विरोध है।

आदम से उत्पत्ति और वंश का आरम्भ—मुसलमान (यहूदी और ईसाई भी) आदम (वैदिक 'आदिम'=ब्रह्मा) से अपने वंश का उद्‌भव कुरानोक्त प्रमाण से मानते हैं और उनको 'बाबा'=पितामह कहते हैं। उनके वंशज 'नूह'=वैवस्वत मनु को भी पैगम्बर मानते हैं। कुरान में बाबा आदम का सम्मान न करने वाले को शैतान और काफिर कहा गया है—''जब हमने फरिश्तों से कहा कि बाबा आदम को दण्डवत् करो, सभी ने दण्डवत् किया, परन्तु शैतान ने न माना और अभिमान किया, क्योंकि वो भी एक काफिर था।'' (सि० १, सू० २, आ० ३५) द्रष्टव्य पृष्ठ ९५० पर आयतखण्ड संख्या ११। उनके धर्मग्रन्थों के ये कथन उन्हें आर्यवंशी और वैदिकधर्मी मूल का सिद्ध करते हैं। (द्र० पृष्ठ ९४९, टि० ६)

हिजरी सम्वत्—यह माना जाता है कि जून ६२२ ईस्वी से मुसलमानों का हिजरी संवत् शुरू हुआ है। उसके अनुसार सन् २००८ में इस संवत् के १३८६ वर्ष बीते हैं। यही समय इस्लाम के आरम्भ का है। इस प्रकार इस्लाम नवीनतम विदेशी मत है जिसकी स्थापना अरब के 'मक्का' नगर में हुई थी।

३. **'अल्लाह' नाम वैदिक संस्कृत से विकसित**—अरबी भाषा में परमेश्वर के वाचक समान ध्वनि वाले दो शब्द प्रचलित हैं- इलाह और अल्लाह। दोनों का समान अर्थ है—'स्तुत्य, पूज्य या वन्दनीय परमात्मा।' ये दोनों पद वैदिक शब्द ''**ईल्यः**'' के विकसित रूप हैं। जिस प्रकार इनमें परस्पर ध्वनिसाम्य हैं उसी प्रकार अर्थसाम्य भी है। वैदिक शब्द ''ईल्-स्तुतौ (ईड्-स्तुतौ) धातु से बना है जिसका अर्थ है—'स्तुत्य'। यह ऋग्वेद के द्वितीय मन्त्र में आता है—**ईल्यः (ईड्यः) नूतनैरुत**'' (विसर्गों का ह होकर) उच्चारण विकसित हो गया और दूसरों के यहां 'अल्लाह' प्रचलित हो गया। यह भी संभव है कि पहले 'इलाह' रूप बना और उससे 'अल्लाह' रूप बन गया।

कुरान के भाष्यकार **श्री मुहम्मद फ़ारुक खाँ** का यही विचार मिलता है। वे लिखते हैं- ''वेद में '**ईल्यः**' शब्द विशेषतम ईश्वर के लिए प्रयुक्त हुआ है। 'ईल्य' का धात्वर्थ पूजनीय ही होता है। उदाहरणार्थ देखिए वेदमन्त्र ऋग्वेद १.१.२ जिसका अर्थ है- 'ईश्वर!' तू पूर्ण और नूतन या छोटे और बड़े सभी के लिए पूजनीय है।'..... अल्लाह शब्द वास्तव में 'अल-इलाह' था, जो

समीक्षक—मुसलमान लोग ऐसा कहते हैं कि **'यह '.कुरान'**[१] **ख़ुदा का कहा है'**, परन्तु इस वचन से विदित होता है कि इसका बनानेवाला कोई दूसरा है, क्योंकि जो परमेश्वर का बनाया होता तो **''आरम्भ साथ नाम अल्लाह के''** ऐसा न कहता, किन्तु **''आरम्भ वास्ते उपदेश मनुष्यों के''** ऐसा कहता। यदि मनुष्यों को शिक्षा करता है कि तुम ऐसा कहो तो भी ठीक नहीं, क्योंकि इससे पाप का आरम्भ भी ख़ुदा के नाम से होकर उसका नाम भी दूषित हो जायगा।[२]

जो वह क्षमा और दया करनेहारा है तो उसने[३] अपनी सृष्टि में मनुष्यों के सुखार्थ अन्य प्राणियों को मार, दारुण पीड़ा दिलाकर मरवाके, मांस खाने की आज्ञा क्यों दी ? क्या वे प्राणी अनपराधी और परमेश्वर के बनाये हुए नहीं हैं ?

और यह भी कहना था कि 'मैं परमेश्वर के नाम पर अच्छी बातों का आरम्भ करता हूँ, बुरी बातों का नहीं'। इस कथन में गोलमाल है। क्या चोरी, जारी, मिथ्या-भाषणादि अधर्म का भी आरम्भ परमेश्वर के नाम पर किया जाय ? इसी से देख लो, कसाई आदि मुसलमान, गाय आदि के गले काटने में भी **'बिस्मिल्लाह'**[४] इस वचन को पढ़ते हैं; जो यही इसका पूर्वोक्त अर्थ है तो बुराइयों का आरम्भ भी परमेश्वर के नाम पर मुसलमान करते हैं।[५] और मुसलमानों का 'ख़ुदा' दयालु भी न रहेगा, क्योंकि उसकी दया उन पशुओं पर न रही। और जो मुसलमान लोग इसका अर्थ नहीं जानते तो इस वचन का प्रकट होना व्यर्थ है। यदि मुसलमान लोग इसका अर्थ उलटा करते हैं तो सीधा अर्थ क्या है? इत्यादि॥ १ ॥[६]

साधारण परिवर्तन के बाद 'अल्लाह' हो गया।.....इसलिए 'अल्लाह' का अर्थ हुआ एक प्रमुख और विशिष्ट 'इलाह' (पूज्य)।'' (क़ुरआन मजीद, भाष्यकार मुहम्मद फारुक खाँ, पृ० १२२०, १२२४)

ख़ुदा—यह शब्द **'स्वयम्भू'** का अनूदित रूप है। **'स्वयम्भू'** का अर्थ है वह अनादि ईश्वर जो स्वयं सत्ता में है किसी अन्य से उत्पन्न नहीं होता। 'खुद' शब्द से विकसित 'ख़ुदा' का भी यही अर्थ है—'स्वयं उत्पन्न'।

नमाज़—नमाज का अर्थ है—'वह प्रार्थना जिसमें परमेश्वर के लिए झुकते हैं।' संस्कृत **''नमस्''** या **''नमः''** शब्द इसी अर्थ में और 'प्रणाम' अर्थ में है। 'स्' का 'ह' होकर अथवा विसर्गों का 'ह' उच्चारण बनकर फिर 'ह' का 'ज' होकर 'नमाज' बना जैसे अरबी-फारसी में—बाहु=बाजू, हस्त=जस्त, आहुति=आजुति आदि में 'ह' का 'ज' हो जाता है। इनमें भी परस्पर ध्वनि और अर्थ-साम्य है। इसी प्रकार आदिम, नूह आदि शब्द भी हैं जो अरब के लोगों को वैदिक वंश के मूल से जोड़ते हैं।

४. **आयतसंख्याओं का मिलान एवं प्रथम बार संख्या और रिक्तस्थान चिह्न**—चौदहवें समुल्लास में उद्धृत कुरान की आयतों और उनकी उद्धरण संख्याओं का मिलान **'कुरान मजीद'**, हिन्दी अनुवाद-मुहम्मद फारुक खां, प्रकाशक-मक्तबा अलहसनात, नई दिल्ली, सन् २००० से किया गया है। यह संस्करण इस समय अधिक प्रामाणिक माना जाता है। जहां से आयत अपूर्ण है वहां रिक्तस्थान बोधक चिह्न (......) दिया गया है। जहां आयत पूर्ण होती है वहां मूल कुरान से मिलान करके उसकी आयत-संख्या दी गई है। इस कार्य से आयत की पृथक्-पृथक् पहचान होने से उसका अर्थ करने-समझने में सरलता होगी। इसके विना आयतें और वाक्य घुल-मिल जाते हैं। पाठक इस परिश्रम का लाभ उठायें।

१. **क़ुरान**—क़ुरान की मूलभाषा अरबी है। 'क़ुरान' मूलतः अरबी भाषा का शब्द है जिसका शुद्ध रूप 'क़ुर्आन' और 'क़ुरआन' है। फारसी में इसे 'क़ुरान' लिखा जाता है। 'क़ुरान' का अर्थ है—'पढ़ना'। इस प्रकार इसका अर्थ है—'पठनीय पुस्तक'।

२,६. **ऋषिहस्तलेख**—दोनों रेखांकित पाठ मूलहस्तलेख में ऋषि ने स्वहस्तलेख से लिखे हैं। आगे ऋषिलेखों पर टिप्पणी नहीं दी है। इस समुल्लास में जितने भी रेखांकित पद या पाठ हैं उनको मूलहस्तलेख में ऋषि द्वारा लिखा समझें।

३-४. **उचित संशोधन**—मूलह०, मूलप्रति संस्करण में **'उसने'** त्रुटित है। द्वि० सं० में ठीक कर दिया है।

४. **बिस्मिल्लाह**—'कुरान' और प्रत्येक 'सूरा'/ सूरत के आरम्भ में पठित इस पहली आयत को 'बिस्मिल्लाह' कहा जाता है। मुसलमान प्रत्येक कार्य के आरम्भ में, यहां तक कि पशुवध करने से पूर्व भी इस आयत को पढ़ते हैं या बोलते हैं।

५. **मुद्रणलिपिकर द्वारा अपप्रयोग**—मुद्रणप्रति में मुद्रणलिपिकर ने **''कहते''** अपप्रयोग लिखा है। यही अशुद्ध द्विप्र० में छपा है।

२. सब स्तुति परमेश्वर के वास्ते है जो परवरदिगार[१] अर्थात् पालन करनेहारा है सब संसार का। १। क्षमा करनेवाला दयालु है। २। मं० १। सि० १। सूरतुल्फातिहा आयत १।२॥

समीक्षक—जो '**क़ुरान**' का ख़ुदा संसार का पालनेहारा होता और सब पर क्षमा और दया करता होता, तो अन्य मत-वालों[२] और पशु आदि को भी मुसलमानों के हाथ से मरवाने का हुक्म न देता। जो क्षमा करनेहारा है तो क्या पापियों पर भी क्षमा करेगा? और जो वैसा है तो आगे लिखेंगे कि "**काफ़िरों का क़त्ल[३] करो**"[४] अर्थात् जो '**क़ुरान**' और पैग़म्बर को न मानें वे काफ़िर हैं, ऐसा क्यों कहता? इसलिये '**क़ुरान**' ईश्वरकृत नहीं दीखता॥ २॥

३. मालिक दिन न्याय का[५]। ३। तुझ को ही हम भक्ति करते हैं और तुझसे ही साहाय्य चाहते हैं। ४। दिखा हमको सीधा रास्ता। ५।[६] मं० १। सि० १। सू० १। आ० ३।४।५॥

समीक्षक—क्या ख़ुदा नित्य न्याय नहीं करता? किसी एक दिन न्याय करता[७] है? इससे तो अंधेर विदित होता है! उसी की भक्ति करना और उसी से सहाय चाहना तो ठीक है, परन्तु क्या बुरी बात का भी सहाय चाहना [ठीक है][८] और सूधा मार्ग एक मुसलमानों का ही है वा दूसरों[९] का भी? सूधे मार्ग को मुसलमान क्यों नहीं ग्रहण करते? क्या सूधा रास्ता बुराई की ओर का तो नहीं चाहते? यदि भलाई सबकी एक है, तो फिर मुसलमानों[१०] में ही विशेष कुछ भी न रहा और जो दूसरों की भलाई नहीं मानते, तो पक्षपाती हैं॥ ३॥

---

१. **परवरदिगार (पर्वर्दगार)**=पालनकर्त्ता, परमात्मा, खुदा।

२. **अपप्रयोग**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में '**अन्य मत-वाले**' अपपाठ है। '**को**' कारक के साथ द्वितीया बहुवचन प्रयोग होगा।

३. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों संस्करणों में '**क़तल**' अपवर्तनी है। मूलतः अरबी के इस शब्द का शुद्ध रूप '**क़त्ल**' है।

४. **काफ़िरों का कत्ल करो**—इस प्रकार का बर्बर आदेश अनेक आयतों में मिलता है। देखिए—
"मार डालो तुम उनको जहां पाओ, क़त्ल से क़ुफ्र बुरा है" (आयतखण्ड संख्या ३८), "उनको पकड़ लो, जहां पाओ मार डालो।....मुसलमान को मुसलमान का मारना योग्य नहीं" (६५), "अवश्य हम क़त्ल करेंगे उनके बेटों को और उनकी बीवियों को जीवित रखेंगे" (८१), "काटें जड़ काफिरों की......मारो ऊपर गर्दनों के" (८६), "लड़ो उनसे यहां तक कि न रहे बल काफ़िरों का.....लूटो किसी वस्तु को" (८८), "लड़ो उन लोगों से पास तुम्हारे हैं काफ़िरों से" (९६), "जिसको चाहा हमने मारा" (११९), "ऐ नबी! झगड़ा करो काफ़िरों से" (१५७), "घसीटेंगे माथे के बालों से पकड़के" (१७१) तथा अन्य।

५. **न्याय का दिन**—इसे '**आखिरत**' का दिन भी कहा जाता है। इस्लामिक मान्यता के अनुसार, महाप्रलय (क़यामत) का दिन आने पर खुदा कब्र में बंद वर्तमान सृष्टि के सब मृतकों को उठाता है और उनके किये हुए अच्छे-बुरे कर्मों को उनको बताकर उनका फल देता है। उसी के अनुसार अगली सृष्टि में जीवन देता है।

६. **पुनरुक्ति**—न्याय के दिन और क़यामत की पुनरुक्तियां द्रष्टव्य हैं आयतखण्ड संख्या ३, १११, १२२, १३२, १४३, १५८, १५९ में।

७. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त० और द्विप्र० में "**कर्त्ता**" अपवर्तनी है। अन्य सभी में संशोधित है।

८. **त्रुटित आवश्यक पाठ**—इस वाक्य में बृ० कोष्ठकान्तर्गत '**ठीक है**' पाठ वाक्यरचना हेतु वांछनीय है।

९. **अपपाठ**—दोनों हस्त० और तीनों संस्करणों में "**दूसरे का भी**" अपपाठ है। बहुवचन प्रयोग अपेक्षित है।

१०. **अयोग्य लिपिकरों-शोधकों द्वारा अपवर्तनी एवं घोर अव्यवस्था**—अयोग्य लिपिकरों ने इस समुल्लास में २५ से अधिक बार "**मुसल्मान**" अपवर्तनी लिखी है जबकि पचासों बार "**मुसलमान**" शुद्ध वर्तनी लिखी है। कहीं पहली पंक्ति में एक वर्तनी है तो दूसरी में दूसरी वर्तनी। वैसी ही द्विप्र० में छपी हैं। शोधकों ने भी इस अशुद्धि और अव्यवस्था पर ध्यान नहीं दिया। अब सभी संस्करणों में संशोधित एक ही वर्तनी "**मुसलमान**" है। पाठक इससे लिपिकरों की अयोग्यता और प्रमादलीला का अनुमान लगा लें। इससे यह भी संकेत मिलता है कि आदि-शोधक भी बहुत मक्कार थे। इतनी सारी गलतियों पर भी उन्होंने ध्यान नहीं दिया। ऐसे अयोग्य और मक्कार लिपिकरों-शोधकों से महर्षि को काम लेना पड़ा था।

४. [दिखा][1] उन लोगों का रास्ता कि जिन पर तूने निआमत अर्थात् ऐश्वर्य दोनों लोकों का, वा अत्यन्त दया की। ६।[2] और उनका मार्ग मत दिखा कि जिनके ऊपर तूने ग़ज़ब अर्थात् अत्यन्त क्रोध की दृष्टि की और न[3] गुमराहों का मार्ग हमको दिखा। ७। मं० १। सि० १। सू० १। आ० ६।७॥

समीक्षक—जब मुसलमान लोग पूर्वजन्म और पूर्वकृत पुण्य-पाप[4] नहीं मानते, तो किन्हीं को दोनों लोकों के ऐश्वर्य देने और किन्हीं को न देने से ख़ुदा पक्षपाती हो जायगा,[5] क्योंकि विना पुण्य-पाप[6] के सुख-दुःख देना केवल अन्याय की बात है, और विना कारण किसी पर दया और किसी पर क्रोधदृष्टि करना भी ख़ुदा के[7] स्वभाव से बहिः है। क्योंकि विना भलाई-बुराई के[8] वह दया अथवा क्रोध नहीं कर सकता और जब उनके पूर्वसञ्चित पुण्य-पाप ही नहीं, तो किसी पर दया और किसी पर क्रोध करना नहीं हो सकता॥

और जो '**गुमराह**' शब्द का अर्थ नोट में '**क़ाफिर**', '**बेदीन**' (=जो मुसलमान नहीं है) यह लिखा है, तो वह ख़ुदा केवल मुसलमानों का ही पक्षपाती होगा, अन्य का नहीं। क्योंकि जो सब मत-मतान्तरों में धर्मात्मा और पापात्मा होते हैं, तो धर्मात्मा भी इस लेख से काफ़िर हो सकते हैं, और जो मुसलमानों में बुरे काम करते हैं, क्या वे काफ़िर नहीं हैं? **और जो काफ़िर हैं, वे सब मतों में बुरे हैं, और जो धर्मात्मा हैं वे सब मतों में उत्तम हैं, तो मुसलमानों से भिन्न मनुष्यों को काफ़िर कहना**

---

१. **त्रुटित आवश्यक पद**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में यहां '**दिखा**' कोष्ठककान्तर्गत क्रिया अपेक्षित है। क्रिया के बिना अर्थ पूर्ण नहीं होता। अगली "**मत दिखा**" क्रिया के सम्बन्ध से भी यह क्रिया अभीष्ट है। इसकी अनुवृत्ति पहली आयत से आ रही है।

२. **मुद्रणलिपिकर द्वारा प्रमाद से त्रुटित पाठ**—"**अर्थात्.....दया की**" मुद्रणप्रति में त्रुटित छोड़ा है। यह इसलिए भी आवश्यक है कि इस वाक्य की समीक्षा की गई है। **निआमत (नेमत)**=ईश्वर द्वारा प्रदत्त धन-वैभव, वरदान, अच्छी वस्तुएं आदि।

३. **द्वितीय सं० में भ्रष्ट संशोधन**—द्वि० सं० में '**न**' पद त्रुटित होने से आयत का पाठ भ्रष्ट होकर अनर्थ हो गया है—"**गुमराहों का मार्ग दिखा।**" शुद्ध पाठ '**न गुमराहों का मार्ग दिखा**' कुरान मुद्रणह०, द्विप्र० और मूलप्रति सं० में है।

४. **अपपाठ**—इस अनुच्छेद में दोनों हस्त० और तीनों संस्करणों में पहले दो बार '**पाप-पुण्य**' पाठ अपक्रम में है। तीसरी बार का '**पुण्य-पाप**' सही पाठ है। सम्पूर्ण अनुच्छेद में पुण्य का फल पहले प्रदर्शित है, उसके बाद पाप का फल है, जैसे ऐश्वर्य देना-न देना, सुख-दुःख, दया-क्रोध, भलाई-बुराई। इस क्रमानुसार '**पुण्य-पाप**' प्रयोग तर्कसंगत और शुद्ध है, यही होना चाहिए।

५. **मुद्रणप्रति में अनुचित पाठ-परिवर्तन**—मुद्रणह० में इस वाक्य के स्थान पर किसी ने यह पाठ-परिवर्तन किया गया है—"**निआमत अर्थात् फ़ज़ल वा दया करने और किन्हीं पर न करने से खुदा पक्षपाती हो जाएगा।**" निआमत के दोनों अर्थ हैं— 'ऐश्वर्य' और 'दया'। मूलप्रति सं० के महर्षिप्रोक्त पाठ में पहले दोनों लोकों का ऐश्वर्य देने-न देने का उल्लेख है और अग्रिम पंक्तियों में दया और अदया=क्रोध का। मूलप्रति सं० के महर्षिप्रोक्त पाठ में दोनों अर्थों का ग्रहण होने से अर्थव्यापकता की विशेषता है। मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० के परिवर्तन में ऊपर-नीचे एक ही अर्थ की पुनरावृत्ति होने से वह विशेषता नष्ट हो गई। महर्षिप्रोक्त पंक्तियों में इस्लाम के सैद्धान्तिक पक्ष की यह आलोचना भी है कि जो पूर्वजन्म को ही नहीं मानते वे पुण्य-पाप से प्राप्त होने वाले निआमत=ऐश्वर्य और गज़ब=अभाव-दीनता सम्बन्धी प्रार्थना कर रहे हैं। पूर्वपंक्ति में वर्णित 'पूर्वजन्म और पूर्वकृत' पुण्य-पाप का सम्बन्ध ऐश्वर्य के लिए भी हो सकते हैं जबकि ऐश्वर्य और अभाव, पूर्वकृत कर्मों के फल हैं। परिवर्तन भाव-गाम्भीर्य-रहित और अनावश्यक है, अत: मूलप्रति सं० का पाठ ग्राह्य है।

६. **मुद्रणलिपिकर द्वारा त्रुटित पद**—मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में '**के**' त्रुटित है। मूलप्रति सं० में है। उदयपुर सं० में भी त्रुटित है।

७. **मुद्रणलिपिकर द्वारा त्रुटित पद**—मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० "**खुदा के**" पद त्रुटित रह गये हैं। ये मुद्रणलिपिकर से छूटे हैं। मूलप्रति सं० में हैं। आवश्यक होने से ग्राह्य हैं। उदयपुर सं० में भी त्रुटित हैं।

८. **मुद्रणलिपिकर के प्रमाद से त्रुटित पाठ**—मुद्रणप्रति लिखते समय लिपिकर प्रमादवश "**क्योंकि विना भलाई-बुराई के**" पाठ त्रुटित छोड़ गया। यही त्रुटित पाठ द्विप्र० में छपा है। **पं० मीमांसक सं०, स्वामी वेदानन्द सं०, पं० सिद्धान्ती जी** में यह पाठ त्रुटित है। उदयपुर सं० ने इस पाठ को ग्रहण कर लिया है।

अविद्या की बात है।[१]

और इस सिपारे और इस सूर:[२] की टिप्पणी[३] पर—''**यह सूरः अल्लाह साहब[४] ने मनुष्यों के मुख से कहलाई कि सदा इस प्रकार से कहा करें**'', [लिखा है]।[५] जो यह बात है तो '**अलिफ़, बे**' आदि अक्षर भी ख़ुदा ने ही पढ़ाये होंगे! जो कहो कि नहीं, तो[६] विना अक्षरज्ञान के इस सूरः को कैसे पढ़ सके? क्या कण्ठ से ही बुलाये और बोलते गये? जो ऐसा है तो सब '**क़ुरान**' ही कण्ठ से पढ़ाया होगा।

इससे ऐसा समझना चाहिये कि जिस पुस्तक में पक्षपात की बातें पाई जायें, वह पुस्तक ईश्वरकृत नहीं हो सकता। जैसे[७] कि अरबी भाषा में उतारने से अरबवालों को तो इसका पढ़ना सुगम, अन्य भाषाओं को बोलनेवालों को कठिन होता है, इसी से ख़ुदा में पक्षपात आता है। और जैसे परमेश्वर ने सृष्टिस्थ सब देशस्थ मनुष्यों पर न्यायदृष्टि से सब देशभाषाओं से विलक्षण संस्कृत-भाषा कि जो सब देशवालों के लिये एक-से परिश्रम से विदित होती है, उसी में वेदों का प्रकाश किया है, [वैसे][८] करता तो यह दोष[९] न होता[१०] ॥ ४॥

५. यह पुस्तक कि जिसमें सन्देह नहीं, परहेज़गारों[११] को मार्ग दिखलाती है। २। जो कि ईमान[१२] लाते हैं साथ ग़ैब (परोक्ष) के, नमाज़[१३] पढ़ते, और उस वस्तु से जो हमने उनको दी, खर्च करते

---

१. **मुद्रणकाल में पाठ-निष्कासन अनुचित**—द्विप्र०, द्वि०सं० में मुद्रणकाल में यह सम्पूर्ण अनुच्छेद (''**और जो गुमराह**'' से लेकर ''**अविद्या की बात है**'' तक) निकाल दिया। महर्षि ने इसमें आयतोक्त '**गुमराह**' शब्द के अर्थ पर प्रकाश डाला है तथा अन्तिम वाक्यखण्ड की व्याख्या और समीक्षा की है। इस दृष्टि से यह महत्त्वपूर्ण अनुच्छेद था। इसको निकालने का अर्थ है समीक्षा को अपूर्ण बनाना तथा महर्षि के अभिप्राय को न समझ पाना। महर्षिप्रोक्त मूलह० का यह अनुच्छेद समीक्षा में अवश्य रखा जाना चाहिए। यह पाठ मुद्रणहस्त० में भी है। इसको मुंशी समर्थदान जी ने व्यर्थ मानकर निकाला प्रतीत होता है, क्योंकि उनके पेन से मुद्रणप्रति में काटने का चिह्न लगा हुआ है। मुंशी जी को ऋषिलेख को काटने का अधिकार नहीं था।

२-३. **उचित संशोधन**—मुद्रणहस्त० और मूलप्रति सं० में यहां ''**सूरे**'' प्रयोग है। यह या तो ''**सूरः**'' होना चाहिए जैसा कि अग्रिम पंक्तियों में दो बार प्रयुक्त है, अथवा व्यवहार में प्रचलित ''**सूरत**'' या ''**सूरा**'' होना चाहिए। द्विप्र०, द्वि०सं० में इसका ''**सूरत**'' पाठ बनाया गया है, '**सूरा**' या '**सूरः**' अधिक ग्राह्य है। ''**सूरः**'' मूल अरबी का है। इसी प्रकार आगे, मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में ''**टिप्पन**'' अप्रचलित वर्तनी है। ग्रन्थ में सर्वत्र '**टिप्पणी**' प्रचलित वर्तनी है।

४. '**साहब**' **की अव्यवस्थित वर्तनी**—सम्पूर्ण ग्रन्थ में, और विशेषत: इस समुल्लास में इस शब्द की दो वर्तनियां प्रयुक्त हुई हैं—'**साहब**', '**साहेब**'। इस शब्द का अरबी भाषा में शुद्ध रूप 'साहिब' है जो सम्मानबोधक पद है। उर्दू में 'साहिब' और 'साहब' दोनों रूप प्रचलित हैं। हिन्दी में इनका विकृत रूप 'साहेब' हो गया। भाषात्मक एकरूपता और मानकता के लिए यहां सर्वत्र शुद्ध और अधिक प्रचलित रूप '**साहब**' ग्रहण किया गया है। आगे इस पर टिप्पणी नहीं दी जायेगी।

५. **त्रुटित आवश्यक पद**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में बृहत् कोष्ठकान्तर्गत '**लिखा है**' क्रिया पद अपेक्षित हैं। इनके बिना पूर्ण व उपयुक्त वाक्यरचना नहीं हो रही है।

५. **मुद्रणलिपिकर द्वारा त्रुटित पाठ**—मूलह० से प्रतिलिपि करते समय मुद्रणलिपिकर ने प्रमादवश ''**नहीं तो**'' पाठ छोड़ दिया और यही त्रुटित पाठ द्विप्र० में छपा है। स्वामी वेदानन्द और पं० सिद्धान्ती सं० को छोड़कर सभी सं० में परिवर्धित कर लिया है।

७. **अपप्रयोग**—दोनों हस्त० और तीनों संस्करणों में '**जैसा**' विशेषण पद प्रयुक्त है, उदाहरणार्थक '**जैसे**' पद अपेक्षित है।

८,९. **त्रुटित आवश्यक पद**—दोनों हस्त० और तीनों संस्करणों में यहां '**वैसे**' पद त्रुटित है। उपर्युक्त ''**जैसे**'' के सम्बन्ध से यहां '**वैसे**' पद अपेक्षित है। आगे, तीनों सं० में ''**कुछ भी दोष**'' पाठ है। यहां '**यह दोष**' उपयुक्त पाठ है।

१०. **वेदों का प्रकाश संस्कृत में ही क्यों?**—इस विषय पर ग्रन्थकार का विशेष मत सप्तम समु० के पृ० ३६४ पर देखिए।

११. **परहेज़गार**—संयम-नियम में रहनेवाले धार्मिक व्यक्ति। इस्लाम के अनुसार, इस्लामी नियमों और मर्यादाओं का पालन करनेवाला मुसलमान।

१२. **ईमान**—विश्वास, आस्था, श्रद्धा। इस्लाम के अनुसार जो अल्लाह और उसके उपदेशों में श्रद्धापूर्वक विश्वास रखता हो।

१३. **नमाज़**—ईश-प्रार्थना या कुरान पढ़ने की विशेष पद्धति जिसमें मुसलमान झुककर पृथिवी पर माथा टिकाते हैं। अरबी का यह

हैं और वे लोग जो उस किताब पर ईमान लाते हैं जो[1] तेरी ओर वा तुझसे पहले उतारी गई, और विश्वास क़यामत[2] पर रखते हैं। ३। ये लोग अपने मालिक की शिक्षा पर हैं और ये ही छुटकारा पानेवाले हैं। ४। निश्चय जो काफ़िर[3] हुए और उन पर तेरा डराना, न डराना समान है, वे कभी ईमान न लावेंगे। ५। अल्लाह ने उनके दिलों, कानों पर मोहर कर दी[4] और उनकी आँखों पर परदा[5] है और उनके वास्ते बड़ा अज़ाब[6] है। ६।

मं० १। सि० १। सू० २। आ० २।३।४।५।६।७॥[7]

समीक्षक—क्या अपने ही मुख से अपनी किताब की प्रशंसा करना ख़ुदा की दम्भ की बात नहीं? जो[8] 'परहेज़गार' अर्थात् धार्मिक लोग हैं वे तो स्वतः सच्चे मार्ग में हैं, और जो झूठे मार्ग पर हैं, उनको यह '**क़ुरान**' मार्ग ही नहीं दिखला सकता, फिर किस काम का रहा?

क्या पाप-पुण्य और पुरुषार्थ के विना ख़ुदा अपने ही ख़जाने से खर्च करने को देता है? जो देता है तो सबको क्यों नहीं देता? और मुसलमान लोग परिश्रम क्यों करते हैं?

और जो '**बाइबल**', '**इंजील**' आदि पर विश्वास करना योग्य है तो मुसलमान '**इंजील**' आदि पर ईमान, जैसा '**क़ुरान**' पर है, वैसा क्यों नहीं लाते? और जो लाते हैं तो '**क़ुरान**' का होना किसलिये? जो कहें कि '**क़ुरान**' में अधिक बातें हैं, तो पहली[9] किताब[10] में लिखना ख़ुदा भूल गया होगा! और

शब्द मूलतः संस्कृत नमस्→नमह् (झुकना, प्रणाम करना) का विकृत रूप है जिसमें ध्वनि-परिवर्तन होकर 'ह्' का 'ज़' हो गया है। जैसे फ़ारसी में संस्कृत का 'बाहु'='बाज़ू' 'आहुति'='आजुति' और 'हस्त'='जस्त' हो गया है।

१. **मुद्रणकालीन अशुद्धि**—द्विप्र० में यहां अशुद्ध पाठ "**रखते हैं**" छपा है। यह अशुद्धि वेस, भद, युमी में विद्यमान हैं। दोनों हस्त०, मूलसं०, द्वि०सं०, उदयपुर सं० में इसको ग्रहण नहीं किया है।

२. **क़यामत (क़ियामत)**—महाप्रलय का दिन, सृष्टि के विनाश का दिन। इसे 'आख़िरत' का दिन भी कहते हैं।

३. **काफ़िर**—इस्लाम के अनुसार अल्लाह, पैगम्बर और कुरान की अवहेलना या उनको इन्कार करना। इन कामों को वे 'कुफ़्र' कहते हैं और 'कुफ़्र' करने वाले को 'काफ़िर' कहा जाता है। मुसलमान सभी विधर्मियों को 'काफ़िर' कहते हैं।

४. **पुनरुक्ति**—लोगों के दिलों और कानों पर मोहर या ताला लगाने की पुनरुक्ति आयतखण्ड संख्या ११० में भी द्रष्टव्य है।

५. **अव्यवस्थित वर्तनी**—सम्पूर्ण ग्रन्थ में और दोनों हस्त० और तीनों सं० में इस शब्द की तीन वर्तनियां पाई जाती हैं—"**पड़दा**" '**परदा**' और '**पर्दा**'। कहीं-कहीं एक ही अनुच्छेद और पंक्ति में यदि यह शब्द दो-तीन बार आया तो वहां कहीं कोई वर्तनी है, कहीं कोई। एक स्थान पर एक पंक्ति में दो बार यह शब्द आया तो लिपिकर का कमाल देखिए एक बार '**पड़दे**' लिखा तो दूसरी बार '**पर्दे**' (मूलसं० ३८१; द्वि०सं० २१८)। अन्यत्र एक ही पंक्ति में "**पर्दा**" और "**परदा**" वर्तनियां हैं (मूलसं० ७११ टिप्पणी में, ७१२; द्वि०सं० ३९६ तथा टिप्पणी में भी)। यही हाल अन्यत्र है। भाषागत व्यवस्था, एकरूपता, मानकता, प्रामाणिकता के लिए हिन्दी में प्रचलित "**परदा**" सर्वत्र ग्राह्य है। यह '**परत**' मूल पद से बना है और परत, '**पत्र**' संस्कृत पद से। '**परदा**' हिन्दी रूप में है, '**पर्दा**' फारसी का और '**पड़दा**' ग्राम्य बोली का है।

६. **अज़ाब**—पाप-फल, सजा, दण्ड, यातना, कष्ट।

७. **अशुद्ध आयत-संख्याओं का विवरण**—इस आयतखण्ड से लेकर आयतखण्ड १७२ तक मूलह०, मुद्रणप्रति और द्विप्र० में आयत संख्याएं प्रायः अशुद्ध हैं। यहां आयत संख्या १ अधिक है और ७ त्रुटित है। पं० भगवद्दत्त सं० में १। आ० १-६ संख्या अशुद्ध है। बिना किसी ना-नुकर के मूलसं०, द्वि०सं०, वेस, युमी, भद, उदयपुर सं० आदि सं० ने इनका संशोधन कर लिया है।

८. **अपप्रयोग**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में यहां "**जब**" अपपाठ है। अगले '**वे**' के साथ '**जो**' प्रयोग होना उपयुक्त है।

९. **पहली किताबें**—पहली किताबों से अभिप्राय उन किताबों से है जो इस परम्परा में पहले ही किसी पैगम्बर के हृदय में प्रेरित हो चुकी थीं, जैसे—मूसा के हृदय में '**तौरेत**', दाऊद में '**जबूर**', ईसा में '**इंजील**'। ये तीनों ही पुस्तकें बाइबल के अंश हैं। '**तौरेत**' और '**जबूर**' को '**ओल्ड टेस्टामेंट**'=पुराना धर्मनियम तथा '**इंजील**' को '**न्यू टेस्टामेंट**'=नया धर्मनियम कहा जाता है।

१०. **पहली किताब**—अर्थात् 'बाइबल'। 'बाइबल' और 'कुरान' एक ही परम्परा की पुस्तकें हैं।

जो नहीं भूला तो '**क़ुरान**' का बनाना निष्प्रयोजन है। और हम देखते हैं तो '**बाइबल**' और '**क़ुरान**' की बातें कोई-कोई नहीं मिलती होंगी, नहीं तो सब मिलती हैं। एक ही पुस्तक जैसा कि वेद है, क्यों न बनाया? क्या[१] क़यामत पर ही विश्वास रखना चाहिये, अन्य पर नहीं?॥

क्या ईसाई और मुसलमान[२] ख़ुदा की शिक्षा पर हैं, उनमें कोई भी पापी नहीं हैं? क्या जो ईसाई और मुसलमान अधर्मी हैं, वे भी छुटकारा पावें और दूसरे धर्मात्मा भी न पावें, तो यह बड़े अन्याय [और] अन्धेर की बात नहीं[३] है?

और क्या जो लोग मुसलमानी मत को न मानें, उन्हीं को क़ाफिर कहना, यह एकतरफ़ा डिगरी[४] नहीं है?॥

जो परमेश्वर ने ही उनके अन्त:करण और कानों पर मोहर लगाई और उसी से वे पाप करते हैं, तो उनका कुछ भी दोष नहीं, यह दोष ख़ुदा का ही है, फिर उन पर सुख-दु:ख वा पाप-पुण्य नहीं हो सकता। पुन: उनको सज़ा-जज़ा[५] क्यों करता है? क्योंकि उन्होंने पाप वा पुण्य स्वतन्त्रता से नहीं किया॥ ५ ॥[६]

६. वे अल्लाह और ईमानदारों को फरेब देते हैं[७]....। ९। उनके दिलों में रोग है, अल्लाह ने उनका रोग बढ़ा दिया[८]। १०। मं० १। सि० १। सू० २। आ० ९। १०॥[९]

समीक्षक—क्या ईश्वर से किसी का कपट-छल अज्ञात रहता है? यदि रहता है तो वह ख़ुदा ही नहीं। इससे ऐसा लिखना ही व्यर्थ है। भला, परमेश्वर को कौन भरमा[१०] सकता है? और जो भरमाने[११] से बहक जाता है, वह ईश्वर ही नहीं हो सकता।[१२] क्यों विना अपराध ख़ुदा ने उनका रोग बढ़ाया? दया न आई? उन बेचारों को बड़ा दु:ख हुआ होगा! क्या यह शयतान (शैतान) से बढ़कर

१-२. **मुद्रणलिपिकर द्वारा त्रुटित एवं परिवर्धित अनावश्यक पद**—मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में यहां ''**क्या**'' पद त्रुटित है, मूलह०, मूलसं० में है। द्वि०सं० में यहां ''**जो**'' पद पठित है जो निरर्थक है। इसकी वाक्य में कोई सार्थकता नहीं है। द्वि०सं० में ही ''**क्या जो ईसाई**'' में ''**जो**'' त्रुटित है, अन्य सभी में है।

३. **त्रुटित आवश्यक पद एवं विरामचिह्न**—सभी सं० में इस वाक्यखण्ड में कई पद त्रुटित हैं—''**बड़े अन्याय अन्धेर की बात है**'' यहां '**और**' योजक अपेक्षित है। दोनों हस्त० और तीनों सं० में वाक्यान्त में '**नहीं**' परिवर्धन के साथ-साथ '**प्रश्न चिह्न**' भी आवश्यक है, क्योंकि वाक्य का आरम्भ '**क्या**' से हुआ है। सम्प्रति उपयुक्त वाक्य नहीं है।

४. **एकतरफ़ा डिगरी** (डिक्री=Decree)—एकपक्षीय निर्णय। 'डिक्री' का अपभ्रंश रूप ''**डिगरी**'' बोलियों में प्रचलित है।

५. **सज़ा**=दण्ड, **जज़ा**=कर्मफल।

६. **द्वितीय सं० में अपसंख्या**—द्वि०सं० में ६५ संख्या अशुद्ध छपी है।

७,१२. **मुद्रणकाल में आयत और समीक्षा का निष्कासन अनुचित**—द्विप्र० में आयत ९ ''**वे अल्लाह और.....**'' और उसकी समीक्षा ''**क्या ईश्वर से..... हो सकता**'' निकाल दी है। इस प्रकार महर्षि के श्रम को व्यर्थ किया है मुंशी समर्थदान जी ने। यह अवांछनीय है। इस कारण यह सभी द्वि०सं० में नहीं है।

८. **आयत का कथ्य**—आयत संख्या ६,७ में यहूदियों, ईसाइयों और उन लोगों को कोसा गया है जो मदीना में हज० मुहम्मद के कहने से इस्लाम स्वीकार नहीं कर रहे थे। उन्हें अल्लाह के नाम पर डराया गया है।

९. **मुद्रणकाल में अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, भद में १० के स्थान पर आयतसंख्या ९ अशुद्ध है।

१०-११. **अव्यवस्थित वर्तनी**—आश्चर्य देखिए, महर्षि द्वारा प्रोक्त समान उच्चारण वाले, और एक ही धातु से बने, एक ही वाक्य में आये दो शब्दों की वर्तनियां, मूलह०, मुद्रणह० में अयोग्य और असावधान लिपिकरों ने भिन्न-भिन्न लिखी हैं—''**भरमा**'' और ''**भ्रमाने**''। सभी सं० में इनका संशोधन आवश्यक था। या तो हिन्दी के अनुसार दूसरा क्रियापद '**भरमाने**' होना चाहिए था अथवा संस्कृतानुकरण के अनुसार दोनों ही '**भ्रमा**' और ''**भ्रमाने**'' होने अपेक्षित थे। हिन्दी-व्याकरण में '**भरमाना**' वर्तनी ही स्वीकृत है। देखिए, कैसे लापरवाह लिपिकरों से महर्षि का पाला पड़ा था! विशेष टि० द्र० है पृ०९२६ पर।

शयतानपन (शैतानपन)[१] का काम नहीं है? किसी के मन पर मोहर लगाना,[२] किसी का रोग बढ़ाना,[३] यह खुदा का काम नहीं हो सकता, **क्योंकि रोग का बढ़ना अपने पापों से है॥** ६ ॥

७. ....उनसे अल्लाह ठट्ठा करता है। १५।[४] जिसने तुम्हारे वास्ते पृथिवी बिछौना और आसमान की छत को बनाया....। २२। मं० १। सि० १। सू० २। आ० १५। २२॥[५]

समीक्षक—जब किसी का ठट्ठा करना उत्तम पुरुष का काम नहीं, तो खुदा को ठट्ठा करना योग्य कभी नहीं हो सकता, और जो ठट्ठेबाज़ है, वह खुदा ही नहीं॥[६]

भला, आसमान छत किसी की हो सकती है? यह अविद्या की बात है। आकाश को छत के समान मानना हंसी[७] की बात है। यदि किसी प्रकार की पृथिवी को आसमान मानते हों, तो यह उनकी घर की बात है॥ ७॥

८. जो तुम उस वस्तु से सन्देह में हो जो हमने पैग़म्बर[८] के ऊपर उतारी, तो उस कैसी एक सूरत (=सूरः) ले आओ और अपने साक्षी लोगों[९] को पुकारो, अल्लाह के विना जो तुम सच्चे हो। २३। जो तुम न करो और कभी न कर सकोगे, तो उस आग से डरो कि जिसका इन्धन मनुष्य और पत्थर है, और जो काफ़िरों[१०] के वास्ते तैयार की गई है। २४।[११] मं० १। सि० १। सू० २। आ० २३, २४॥[१२]

---

१. **मुद्रणकालीन शयतान/ शैतान वर्तनी**—इस समुल्लास में दोनों हस्तलेखों में "**शैतान**" शुद्ध वर्तनी है किन्तु द्वितीय संस्करण (१८८४) में सर्वत्र "**शयतान**" वर्तनी लिखी गई है। इसका क्या कारण हो सकता है? आइये विचार करें। बिल्कुल यही स्थिति समु० १३ में पृ० ९३१ आयतखण्ड संख्या १३६ (द्वि०सं० में १२७) की है। '**शैतान**' की '**शयतान**' वर्तनी गुजराती भाषा में लिखी जाती है अत: निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि इस वर्तनी को मुद्रणकाल में प्रूफ में महर्षि ने १३वें समुल्लास में बदला था और उसी के अनुकरण पर समस्त १४वें समुल्लास में मुंशी जी द्वारा बदली गई है। इस प्रकार यह महर्षि-निर्मित वर्तनी है। शायद, इस तथ्य को न जानने के कारण अग्रिम सभी सं० में हिन्दी वर्तनी "**शैतान**" कर दी गई है। अधिक पाठान्तर न हो इस कारण से इस सं० में यहां इस तथ्य को स्पष्ट करके आगे सर्वत्र प्रचलित वर्तनी ही रखी गई है।

२. **उचित संशोधन**—मूलप्रति सं० में '**मोहर लगाना**' के स्थान पर '**ताला लगाना**' पाठ है। दोनों का अर्थ भिन्न है। पीछे आयत क्रमसंख्या ५ में "**मोहर लगाना**" मुहावरा है। वही शब्दावली समीक्षा में ठीक है। द्विप्र० व कुरान में यही पाठ है।

३. **अपप्रयोग**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में "**किसी को रोग बढ़ाना**" अपप्रयोग है।

४,६. **मुद्रणकाल में आयत और उसकी समीक्षा का निष्कासन**—द्विप्र० में आयत में "**उनसे अल्लाह ठट्ठा करता है**" आयतांश तथा उसकी समीक्षा "**जब.... ही नहीं**" को हटा दिया गया है। आयतांश और समीक्षाभाग महत्त्वपूर्ण है। हटाने का कारण अज्ञात है। यह पाठ दोनों हस्तलेखों में है। किन्तु द्विप्र० में हटाने के कारण द्वि०सं० और उस पर आधारित अन्य सं० में यह पाठ नहीं मिलता। मुंशी जी द्वारा बिना किसी उपयुक्त कारण के ऋषि के श्रम को व्यर्थ करना अवांछनीय है।

५. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र० में तथा भद में यहां आयतसंख्या २१ व मूलसं० में १४, २१ अशुद्ध हैं।

७. **अव्यवस्थित प्रयोग**—मूलप्रति सं० में '**हांसी**' बोली का प्रयोग है। शायद, यह यह लिपिकरलिखित है। हिन्दी में शुद्धरूप '**हंसी**' है। ग्रन्थ में अन्यत्र इसी शुद्धरूप का प्रयोग है। मानकता और भाषात्मक एकरूपता के लिए सर्वत्र '**हंसी**' ग्राह्य है।

८. **पैगम्बर**—ईशदूत, अल्लाह के वे दूत जिनके माध्यम से वह अपना संदेश देता है और जो उसके संदेश को मनुष्यों तक पहुँचाते हैं। इन आयतों में अल्लाह की ओर से यह कहलवाया गया है कि मैंने ही हज० मुहम्मद के मस्तिष्क में कुरान उतारी है, जिससे अल्लाह के नाम पर लोग विश्वास कर लें। लोगों को अपने विश्वास में लेने की यह चतुरतापूर्ण नीति थी।

९. **उचित परिवर्धन**—मूलह०, मूलसं० में '**साक्षी लोगों**' पाठ त्रुटित है। कुरान और द्वि० सं० में है द्विप्र० में "**साक्षियों**" है।

१०. **उचित संशोधन**—मूलह०, मूलप्रति सं० में '**काफ़िर**' एकवचनात्मक अपपाठ है। कुरान और द्विप्र०, द्वि०सं० में शुद्ध है।

११. **आयत का अशुद्ध अनुवाद**—कुरान के मूलपाठ और अरबी-फारसी के प्रसिद्ध आर्य विद्वान् **पं० रामचन्द्र जी देहलवी** के अनुसार, किसी मौलवी-अनुवादक ने इस आयत २४ का अनुवाद अशुद्ध किया है। उससे अर्थ का अनर्थ हो गया है। वह अशुद्ध अनुवाद दोनों हस्त० और तीनों सं० में यह है—"**जो तुम और कभी न करोगे तो उस आग से डरो कि जिसका इन्धन मनुष्य**

समीक्षक—भला, यह कोई बात है कि उसके सदृश कोई सूरत न बने? क्या अकबर बादशाह के समय में **मौलवी फ़ैजी** ने विना नुक़्ते[१] का '**क़ुरान**' नहीं बना लिया था?

और वह कौन-सी आग है जो दोज़ख की है? क्या इस [पृथिवी की] आग से न डरना चाहिये? इसका भी इन्धन जो कुछ पड़े, सब है। जैसे '**क़ुरान**' में लिखा है कि काफ़िरों के वास्ते दोज़ख की आग तैयार की गई है,[२] तो वैसे पुराणों में लिखा है म्लेच्छों के लिये घोर नरक बना है! अब कहिये किसकी बात सच्ची मानी जाय?

अपने-अपने वचन से दोनों स्वर्गगामी और दूसरे के मत से दोनों नरकगामी होते हैं, इसलिये यह सबका झगड़ा झूठा है। किन्तु **जो धार्मिक हैं वे सुख और जो पापी हैं वे दुःख सब मतों में पावेंगे॥ ८॥**

९. और आनन्द का संदेशा दे उन लोगों को जो कि ईमान लाये और काम किये अच्छे, यह[३] कि उनके वास्ते बहिश्तें[४] हैं जिनमें चलती हैं नहरें, जब उसमें से मेवों के भोजन दिये जावेंगे तब कहेंगे कि यह वो वस्तु है जो हम पहले इससे दिये गये थे; निश्चय और उनके लिये पवित्र बीबियाँ हैं, और वे सदैव वहाँ रहने वाले हैं। २४।[५] मं० १। सि० १। सू० २। आ० २५॥[६]

है, और काफ़िरों के वास्ते पत्थर तैयार किये गये हैं।'' श्री देहलवी जी के अनुसार यहां '**मनुष्य**' से अभिप्राय '**मूर्तिपूजक काफिर**' से है और '**पत्थर**' से अभिप्राय '**पत्थर की मूर्ति**' से है, ये लोग दोज़ख की=नरक की आग में जलेंगे। इसका यह सही अर्थ है। वाक्यारम्भ में काफ़िरों के लिए ''**आग तैयार करने**'' का उल्लेख है। बाद में '**उनके वास्ते पत्थर**' कहना असंगत अनुवाद है। इस सं० के पाठ में अनुवाद का शुद्ध पाठ दे दिया है। (द्रष्टव्य पं० रामचन्द्र देहलवी कृत—''चतुर्दश समु० में उद्धृत कुरान की आयतों का अनुवाद'', पृ० २'')

स्वामी जगदीश्वरानन्द सं० को छोड़कर सभी सं० में अपपाठ ही है। **पं० मीमांसक जी** ने टिप्पणी में संशोधित पाठ को ग्राह्य माना है किन्तु मूलपाठ में अशुद्ध ही पाठ है। उसका कोई लाभ नहीं है। **उदयपुर सं०** के सम्पादक कथित दश विद्वानों के समक्ष शुद्ध-अशुद्ध दोनों विकल्प थे किन्तु उन्होंने अशुद्ध पाठ को ही ग्रहण कर लिया। उन्होंने पाठ की अशुद्धि पर गम्भीरता से विचार नहीं किया। भ्रान्ति से 'अशुद्धि' के संरक्षण को 'मूलस्वरूप' मान लिया।

१२. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, भद में यहां आयतसंख्या २२ अशुद्ध है और २४ त्रुटित है।

१. **अपप्रयोग**—नुक़्ता=वह बिन्दु जो अरबी, फारसी, उर्दू भाषाओं में अक्षर के नीचे लगता है। मूलप्रति सं० में ''**नुक़्ता का**'' अपप्रयोग है। यह अरबी का मूल शब्द है—'**नुक़्तः**'।

२. **अशुद्ध समीक्षा का उचित संशोधन**—आयत २४ का अनुवाद अनुवादक द्वारा अशुद्ध किये के कारण समीक्षा का अशुद्ध होना भी स्वाभाविक था, सो हो गया। मूलप्रति सं० में अशुद्ध समीक्षा है—''**क्या जैसे कुरान में लिखा है कि काफ़िरों के वास्ते पत्थर तैयार किये गये हैं....**''। दोनों हस्त०, द्विप्र०, द्वि०सं० में अशुद्ध समीक्षा थी जो नये संस्करणों में शुद्ध कर दी है, किन्तु आयत का अनुवाद शुद्ध करना शोधक भूल गया। ऊपर नवीन द्वि०संस्करणों की संशोधित समीक्षा ग्रहण की गई है।

३. **उचित अनुवाद-संशोधन**—मूलप्रति सं० में आयत का प्रथम वाक्य है—''**और तू ईमानवालों को आनन्द का सन्देसा दे**'' यह अपूर्ण अनुवाद है, द्वितीय सं० का पाठ पूर्ण एवं सटीक है। द्वि०सं० में अन्तिम पंक्ति में '**निश्चय**' पद नहीं है, मूलप्रति सं० में है। यह ग्राह्य है।

४. **अशुद्ध एवं अव्यवस्थित वर्तनी**—इस आयतखण्ड और इसकी समीक्षा में कुल तीन बार यह शब्द प्रयुक्त है। दोनों हस्त० में तीनों स्थलों पर ''**बिहिश्त**'' अशुद्ध वर्तनी है। द्विप्र० में पहले और तीसरे स्थल पर यही अशुद्ध तथा दूसरे स्थल पर शुद्ध ''**बहिश्त**'' वर्तनी है। उदयपुर सहित अन्य सभी संस्करणों में संशोधित है।

५. **आयत का अशुद्ध अनुवाद**—कुरान के मूलपाठ और पं० रामचन्द्र देहलवी के अनुसार, दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**सदैव वहां रहने वाली हैं**'' अप-अनुवाद है। यह पाठ होना चाहिए—''**वे सदैव वहां रहने वाले हैं।**'' अप-अनुवाद के कारण उसकी समीक्षा भी उसी पर आधारित है। यह अनुवादक की भूल है। उदयपुर सं० सहित सभी सं० में अशुद्ध अनुवाद है।

६. **अशुद्ध अद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र० में यहां आयतसंख्या २४ अशुद्ध है।

समीक्षक—भला, यह '**क़ुरान**' का बहिश्त[१] संसार से कौन-सी उत्तम बातवाला है? क्योंकि जो पदार्थ संसार में हैं, वे ही मुसलमानों के स्वर्ग में हैं। और इतना विशेष है कि यहाँ जैसे [स्त्री-] पुरुष जन्मते-मरते और आते-जाते हैं, उसी प्रकार स्वर्ग में नहीं। किन्तु यहाँ की स्त्रियाँ सदा नहीं रहतीं और वहाँ बीबियाँ[२] अर्थात् उत्तम स्त्रियाँ [भी]सदा काल रहती हैं, तो जब तक क़यामत की रात न आवेगी, [और बहिश्त में जाने वाले पुरुषों का निर्णय होकर जब तक कि वे वहां नहीं जावेंगे] तब तक उन बेचारियों के दिन कैसे कटते होंगे?

हाँ, जो खुदा की उन पर कृपा होती होगी और खुदा के ही आश्रय समय काटती होंगी, तो ठीक है! क्योंकि यह मुसलमानों का स्वर्ग गोकुलिये गोसांइयों के गोलोक और मन्दिर के सदृश दीखता है; क्योंकि वहाँ स्त्रियों का मान्य बहुत है, पुरुषों का नहीं। वैसे ही खुदा के घर में भी स्त्रियों का मान्य अधिक है और उन पर खुदा का प्रेम भी बहुत है, उतना पुरुषों पर नहीं; क्योंकि बीबियों[३] को खुदा ने बहिश्त में सदा [के लिये पहले से ही] रक्खा है और पुरुषों को नहीं। वे बीबियाँ[४] विना ख़ुदा की मर्ज़ी स्वर्ग में कैसे ठहर सकतीं? जो यह बात ऐसी ही हो, तो ख़ुदा स्त्रियों में फस जाय॥ ९ ॥[५]

१०. आदम को सारे नाम सिखाये[६], फिर फ़रिश्तों के सामने करके कहा—"जो तुम सच्चे हो मुझे इनके[७] नाम बताओ। ३१।" फिर कहा—"हे आदम! इनको इनके[८] नाम बता दे", तब उसने बता दिये, तो खुदा ने फ़रिश्तों[९] से कहा कि "क्या मैंने तुमसे नहीं कहा था कि निश्चय मैं पृथिवी

---

१. **बहिश्त**=स्वर्ग, जन्नत। इसमें इस्लाम स्वीकार करनेवालों को स्वर्ग में प्राप्त होनेवाले लालच दिये गये हैं जिससे इनके लालच में लोग इस्लाम को स्वीकार कर लें।

२-४. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में इस आयत और इसकी समीक्षा में सर्वत्र "**बीवियां**" अपवर्तनी है, "**बीबियां**" वांछित है।

५. **समीक्षा-संशोधन आवश्यक**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में, इस आयत के अशुद्ध अनुवाद के कारण समीक्षा भी अशुद्ध हो गई है। समीक्षा की भाषा में बृ० कोष्ठकों के अन्तर्गत कुछ पाठ-परिवर्धन करने पर समीक्षा और आयत में तालमेल बन जाता है, अन्यथा पूरी समीक्षा बदलने की आवश्यकता होती है। ऋषिप्रोक्त भाषा और भाव को यथावत् रखते हुए थोड़ा परिवर्तन किया है जिससे अनुवादक की त्रुटि के कारण समीक्षा आरोप-योग्य न रहे। पाठ-संशोधन के बाद यह मूल आरोप कुरान पर बना ही हुआ है कि पुरुष तो क़यामत की रात को निर्णय होने के बाद बहिश्त में जायेंगे जबकि स्त्रियां कयामत की रात से पहले ही वहां हैं जो बहिश्त में जानेवाले पुरुषों को बीबियों के रूप में प्राप्त होंगी। वे कयामत की रात के निर्णय तक किसके सहारे रहती होंगी?

६. **आदम (Adam) नाम और वैदिक परम्परा की छाया**—यह आयत इस तथ्य का स्पष्ट प्रमाण है कि प्राचीन वैदिक मान्यताएँ किस प्रकार परम्परा से निरन्तर प्रचलित रही हैं। कुरान का '**आदम**' वैदिक '**आदिम**' अर्थात् ब्रह्मा का ही विकृत रूप है और 'खुदा' का अर्थ 'स्वयम्भू' है अर्थात् स्वयं ही उत्पन्न होने वाला। महर्षि लिखते हैं—"**आदिम से आदम इत्यादि, ऐसे अपभ्रंश कुछ नियमों के अनुकूल होते हैं....**" (उपदेश मंजरी, उपदेश ५, पृ० २५) मनुस्मृति में कहा है कि आरम्भ में पदार्थों का नामकरण और कर्मविभाजन आदि ब्रह्मा ने वेद-शब्दों के द्वारा किया। इस आयत में भी आदम द्वारा नाम सिखाने और कर्मों तथा सभी पदार्थों को प्रकट करने का कथन है। मनुस्मृति का वह श्लोक है—

सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक्-पृथक्। वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक्संस्थाश्च निर्ममे॥ मनु०॥

बाबा आदम—वैदिक परम्परा एवं वंशावली के अनुसार आदिम अर्थात् ब्रह्मा को सर्वजगत् का 'पितामह' माना जाता है। उसी प्रकार इस आयत में भी आदम को "**बाबा**"=पितामह माना गया है। यह भी वैदिक परम्परा का अवशिष्ट रूप है। शैतान द्वारा दण्डवत् न करने की पुनरुक्ति आयतखण्ड ७७ में भी द्रष्टव्य है। **बाइबल** में भी आदम का वर्णन समु० १३ में आयतखण्ड संख्या ४,५,६,७,८ और १२ में द्रष्टव्य है।

७-८. **अपप्रयोग**—द्वि०सं० में "**इनके**" शुद्ध प्रयोग है। द्विप्र०, मूलप्रति सं० में दोनों स्थलों पर "**उनके**" "**उनको उनके**" अपप्रयोग हैं। द्वि० सं० में भी दूसरे स्थान पर "**उनको उनके**" अपप्रयोग हैं। सामने उपस्थित व्यक्तियों के लिए क्रमश:

और आसमान की छिपी वस्तुओं को और प्रकट-छिपे कर्मों को जानता हूँ। ३३।''

मं० १। सि० १। सू० २। आ० ३१। ३३॥[१०]

समीक्षक—भला ऐसे, फ़रिश्तों को धोखा देकर अपनी बड़ाई करना खुदा का काम हो सकता है? यह तो एक दम्भ की बात है। इसको कोई विद्वान् नहीं मान सकता और न ऐसा अभिमान करता। क्या ऐसी बातों से ही खुदा अपनी सिद्धाई जमाना चाहता है? हां, जंगली लोगों में कोई कैसा ही पाखण्ड चला लेवे, चल सकता है; सभ्यजनों में नहीं॥ १०॥

११. जब हमने फ़रिश्तों से कहा कि ''बाबा आदम[१] को दण्डवत् करो'', देखो, सभों ने दण्डवत् किया[२] परन्तु शैतान[३] ने न माना और अभिमान किया, क्योंकि वो भी एक काफ़िर था। ३४।

मं० १। सि० १। सू० २। आ० ३४॥[४]

समीक्षक—इससे ख़ुदा सर्वज्ञ नहीं, अर्थात् भूत, भविष्यत् और वर्तमान की पूरी बातें नहीं जानता। जो जानता होता तो शैतान को पैदा ही क्यों करता?[५] और ख़ुदा में कुछ तेज भी नहीं है, क्योंकि शैतान ने ख़ुदा का हुक्म ही न माना और ख़ुदा उसका कुछ भी न कर सका। और देखिये! एक शैतान काफ़िर ने ख़ुदा के भी छक्के छुड़ा दिये,[६] तो मुसलमानों के कथनानुसार जहाँ उससे भिन्न करोड़ों[७] काफ़िर हैं, वहाँ मुसलमानों के ख़ुदा और मुसलमानों की क्या चल सकती है?

कभी-कभी ख़ुदा भी किसी का रोग बढ़ा देता है, किसी को गुमराह कर देता है।[८] ख़ुदा ने ये बातें शैतान से सीखी होंगी और शैतान ने ख़ुदा से! क्योंकि विना ख़ुदा के शैतान[९] का उस्ताद और कोई नहीं हो सकता॥ ११॥

''इनके'', ''इनको इनके'' सर्वनाम वांछनीय हैं। उदयपुर सं० सहित अन्य सभी में अपप्रयोग हैं।

९. **फरिश्ता (फिरिश्तः)**=ईशदूत, अल्लाह का दूत।

१०. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, भद में यहां आयतसंख्याएं २९ अशुद्ध है। संख्या ३३ त्रुटित है।

१. **बाबा आदम**—आदि पुरुष पितामह आदम अर्थात् आदिम=ब्रह्म (द्र० गत पृ० की टि० ६)।

२. **उचित परिवर्धन**—मूलह०, मूलसं० में **''सभों ने दण्डवत् किया''** पाठ त्रुटित है। मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में परिवर्धित है।

३. **शैतान का अर्थ**—अल्लाह की आज्ञाओं का उल्लंघन करनेवाला, अल्लाह से विमुख करनेवाला फ़रिश्ता। कुरान में यह **'जिन्न'** के लिए प्रयुक्त होता है। शैतान का उपनाम **'इब्लीस'** है। इसने आदितम फरिश्ते आदम के सामने झुकने से इन्कार किया था और अल्लाह के आदेशों को मानने से भी इन्कार किया था। इस कारण **'इब्लीस'** ही शैतान का प्रतीक बन गया।

४. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, भद में आयतसंख्या ३२ अशुद्ध है।

५. **अपपाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में यह अपपाठ है—**''जो जानता हो तो शैतान को पैदा ही क्यों किया?''** पूर्व क्रियाओं के सम्बन्ध से उपर्युक्त संशोधित वाक्य ग्राह्य है। उदयपुर सं० में यही अपवाक्य है।

६. **अपपाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में **''खुदा का भी छक्का छुड़ा दिया''** अपपाठ है। मुहावरे की शब्दावली में **''छक्के छुड़ाना''** बहुवचनात्मक प्रयोग होता है। उदयपुर सं० में यही अपवाक्य है।

७. **अव्यवस्थित वर्तनी**—लिपिकरों ने ग्रन्थ में अव्यवस्थित रूप से **'क्रोड, क्रोड़, करोड, करोड़'** चार प्रकार की वर्तनियां लिखी हैं। हिन्दी व्याकरण के अनुसार **'करोड़'** वर्तनी सही है। **'क्रोड'** शब्द **'गोद'** अर्थ में प्रयुक्त होता है। यहां दोनों हस्त० और तीनों सं० में **'क्रोड़ों'** अपवर्तनी है जबकि इसी समुल्लास में अनेकत्र **''करोड़''** शुद्ध वर्तनी है।

८. **ख़ुदा द्वारा गुमराह करने का अन्यत्र वर्णन**—देखिये आयतखण्ड संख्या ६, कुरान स्वयं यह बात खुदा के लिए कहता है।

९. **उचित संशोधन**—मूलह०, मूलप्रति संस्करण में यहां विशेष **''फरिश्तों''** अप्रासंगिक प्रयोग है। यहां शैतान का विशेष प्रसंग है। खुदा और शैतान एक दूसरे के उस्ताद हैं। क़ुरान में **'शैतान'** ही मूल पाठ है। मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में संशोधित है।

१२. हमने कहा कि ''ओ आदम! तू और तेरी जोरू बहिश्त में रहकर आनन्द से[१] जहाँ चाहो खाओ, परन्तु मत समीप जाओ उस वृक्ष के, कि पापी हो जाओगे। ३५।'' शैतान ने उनको डिगाया और उनको बहिश्त के आनन्द से खो दिया। तब हमने कहा कि ''उतरो, तुम परस्पर शत्रु होगे।[२] तुम्हारा ठिकाना पृथिवी है और एक समय तक लाभ है। ३६।'' आदम अपने मालिक की कुछ बातें सीखकर पृथिवी पर आ गया। ३७। मं० १। सि० १। सू० २। आ० ३५। ३६। ३७॥[३]

समीक्षक—अब देखिये ख़ुदा की अल्पज्ञता! अभी तो स्वर्ग में रहने का आशीर्वाद दिया और पुनः थोड़ी देर में कहा कि 'निकलो'। जो भविष्यत् [की][४] बातों को जानता होता तो वर ही क्यों देता? और बहकानेवाले शैतान को दण्ड देने में असमर्थ[५] भी दीख पड़ता है। और वह वृक्ष किसके लिये उत्पन्न किया था? क्या अपने लिये वा दूसरे के लिये? जो अपने लिये किया तो उसको क्या जरूरत थी? और[६] जो दूसरे के लिये, तो क्यों रोका? इसलिये ऐसी बातें न ख़ुदा की और न उसके बनाये पुस्तक में हो सकती हैं। आदम साहब ख़ुदा से कितनी बातें सीख आये? और जब पृथिवी पर आदम साहब आये तब किस प्रकार आये? क्या वह बहिश्त पहाड़ पर है वा आकाश पर? उससे कैसे उतर आये? अथवा पक्षी के तुल्य आये? अथवा ऊपर से पत्थर जैसे गिर पड़े?

इसमें यह विदित होता है कि जब आदम साहब मिट्टी[७] से बनाये गये, तो इनके स्वर्ग में भी मिट्टी[८] होगी। और जितने वहां और हैं वे भी वैसे ही फ़रिश्ते आदि होंगे, क्योंकि मिट्टी[९] के शरीर विना इन्द्रिय-भोग नहीं हो सकता। जब पार्थिव शरीर है, तो मृत्यु भी अवश्य होना चाहिये। यदि मृत्यु होता है, तो

---

१. **अपप्रयोग**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में '**में**' पाठ है, '**से**' या '**पूर्वक**' उपयुक्त है।

२. **अप-अनुवाद**—यहां दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**कोई परस्पर शत्रु है**'' वर्तमानवाचक अप-अनुवाद है। वस्तुतः, यहां भविष्य का कथन है कि मनुष्य और शैतान अथवा आदम-दम्पती और शैतान की परस्पर शत्रुता रहेगी। आयतोक्त भविष्यत्कालीन क्रिया के सम्बन्ध से भी यहां भविष्यत् कालीन क्रिया होनी उचित है। कुरान के मूलपाठ में भी भविष्यत् कालीन क्रिया-प्रयोग है। अतः ''**तुम परस्पर शत्रु होगे**'' कुरान का यह अनुवाद ग्राह्य है। उदयपुर सं० सहित सभी सं० में पूर्वोक्त अपपाठ है।

३. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मुलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, मूलसं० में यहां आयतसंख्याएं ३३, ३४ अशुद्ध हैं, ३६, ३७ त्रुटित हैं।

४. **त्रुटित आवश्यक पद**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में यहां '**की**' कारक प्रत्यय त्रुटित है।

५. **अपप्रयोग**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**देने से असमर्थ**'' अपप्रयोग है, ''**देने में असमर्थ**'' शुद्ध एवं ग्राह्य है।

६. **मुद्रणलिपिकर के प्रमाद से त्रुटित पाठ**—मूलह० से प्रतिलिपि करते समय प्रमादी मुद्रणलिपिकर ने यह पाठ छोड़ दिया—''**लिये? जो अपने लिये किया तो उसको क्या जरूरत थी? और**'' यही त्रुटित पाठ द्विप्र० में छपा है। यह संतोष की बात है कि अन्य सभी सं० में इसको ग्रहण कर लिया गया है।

७-९. **मुद्रण-लिपिकर की भूल में भटक गये विद्वान् सम्पादक**—द्वि०सं०, स्वामी वेदानन्द सं०, पं० सिद्धान्ती सं०, मूलसं० में संशोधित ''**मट्टी**'' पद के स्थान पर ''**मही**'' पाठ स्वीकार कर **पं० भगवद्दत्त** और **पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक** सदृश विद्वान् जहां ग्रन्थ की भाषा को एक कदम पीछे ले आये, वहीं साथ ही मुद्रण-लिपिकर की भूल-भुलैया में भटक गये। मूल हस्तलेख में यहां तीनों ही स्थानों पर '**मट्टी**' शुद्ध पाठ है। मुद्रणलिपिकर ने दृष्टिदोष से '**ट्ट**' को '**ह**' समझकर ''**मही**'' लिख दिया। द्विप्र० में भी अशुद्ध छपा। परोपकारिणी के १८ वें द्वितीय संस्करण तक ''**मही**'' अशुद्ध पाठ छपता रहा। १९वें संस्करण के प्रकाशन के समय किसी का इस अव्यावहारिक पद पर ध्यान गया होगा तो उसने मूलहस्तलेख को देखकर शुद्ध कर दिया—'**मिट्टी**'। तब से 'मिट्टी' ही छपता आ रहा है। किन्तु उक्त विद्वान् सम्पादक फिर से पुराने संस्करणों के पाठ में अटक गये। यहां तक कि पं० मीमांसक जी ने टिप्पणी में ''**मही**'' का अर्थ '**मट्टी**' देकर उसको स्पष्ट भी कर दिया, जबकि 'मही' का 'मट्टी' अर्थ करना खींचातानी है। इन्होंने इस पर भी ध्यान नहीं दिया कि सम्पूर्ण ग्रन्थ में पचासों बार '**मिट्टी**' प्रयोग का संदर्भ आया है वहां महर्षि ने कहीं भी '**मही**' का प्रयोग नहीं किया है। अतःलिपिकरकृत त्रुटि होने के कारण '**मही**' पाठ ग्राह्य नहीं है। उदयपुर सं० ने तीनों स्थलों पर संशोधित पद ले करके अच्छा किया है।

वे वहां से कहां जाते हैं? और मृत्यु नहीं होता, तो उनका जन्म भी नहीं[१] हुआ। जब जन्म है, तो मृत्यु अवश्य ही है। यदि ऐसा है, तो जो '**क़ुरान**' में लिखा है कि बीबियाँ सदैव बहिश्त[२] में रहती हैं, सो झूठा हो जायगा, क्योंकि उनका भी मृत्यु अवश्य होगा। जब ऐसा है तो बहिश्त में जानेवालों का भी मृत्यु निश्चित होगा॥ १२॥

१३. उस दिन से डरो कि जब कोई जीव किसी जीव से कुछ भरोसा न रक्खेगा, न उसकी सिफ़ारिश[३] स्वीकार की जावेगी, न उससे बदला लिया जावेगा और न वे साहाय्य पावेंगे। ४८।

मं० १। सि० १। सू० २। आ० ४८॥[४]

समीक्षक—क्या वर्तमान दिनों में न डरें? बुराई करने से[५] सब दिन डरना चाहिये। जब सिफ़ारिश न मानी जावेगी, तो फिर पैग़म्बर की गवाही वा सिफ़ारिश से ख़ुदा स्वर्ग देगा, यह बात क्योंकर सच हो सकेगी? क्या ख़ुदा बहिश्तवालों का ही सहायक है, दोज़ख़वालों का नहीं? यदि ऐसा है, तो ख़ुदा पक्षपाती है॥ १३॥

१४. हमने मूसा[६] को किताब और मोज़िजे[७] दिये....। ५३।[८]

मं० १। सि० १। सू० २। आ० ५३॥[९]

समीक्षक—जो मूसा को किताब दी तो '**क़ुरान**' का होना निरर्थक है। और उसको आश्चर्यशक्ति दी, यह '**बाइबल**' और '**क़ुरान**' में भी लिखा है, परन्तु यह बात मानने योग्य नहीं, क्योंकि जो ऐसा होता तो अब भी होता; जो अब नहीं, तो पहिले भी न था। जैसे स्वार्थी लोग आजकल भी अविद्वानों

---

१. **उचित संशोधन**—मूलह०, मूलप्रति सं० में '**नहीं**' पद त्रुटित है। द्विप्र०, द्वि०सं० में संशोधित है।

२,५. **अपप्रयोग**—मूलह०, मूलप्रति सं० में यहां ''**बिहिश्त**'' अग्राह्य वर्तनी है जबकि सर्वत्र '**बहिश्त**' पाठ है। मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में संशोधित है। आगे दोनों हस्त० सं० में ''**बुराई करने में**'' अपप्रयोग है, '**से**' कारक प्रत्यय वांछित है।

३. **अयोग्य लिपिकर-शोधक और वर्तनी की अव्यवस्था**—इस आयतखण्ड और समीक्षा में तीन बार '**सिफ़ारिश**' शब्द का प्रयोग हुआ है। मूलह० में तीनों स्थलों पर अशुद्ध वर्तनी ''**सफारिश**'' है। मुद्रणह० में पहले स्थान पर ''**शिफारिश**'' अपवर्तनी है। अन्य दोनों स्थलों पर शुद्ध है। यही अशुद्धि द्विप्र० में है। अन्य सभी सं० में संशोधित है।

४. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र० में यहां ४६ अशुद्ध संख्या है।

६. **मूसा (Moses)**—इन आयतों में यहूदी धर्म के संस्थापक मूसा को किताब देने का कथन है। बाइबल का पूर्वार्ध भाग '**तौरेत**' नाम से जाना जाता है। वह मूसा द्वारा प्रोक्त है। उक्त कथन करके यद्यपि उस पुस्तक को भी 'कुरान' ने मान्यता दी है किन्तु व्यवहार में दोनों एक-दूसरे की पुस्तकों को धर्मग्रन्थ नहीं मानते अपितु इन बातों को लेकर परस्पर भयंकर रक्तपात करते हैं। यह अवश्य है कि इस प्रकार के कथन इन्हें एक परम्परा के मत सिद्ध करते हैं। पृष्ठ ८४५ की टिप्पणी संख्या २ भी द्रष्टव्य हैं।

७. **मोजिज़े**=चमत्कार-शक्ति, आश्चर्यशक्ति या दिव्य ज्ञानदृष्टि। सभी संस्करणों में ''**मौज़िजे**'' अपपाठ है। वेस में संशोधित है। मूसा का जीवन असम्भव चमत्कारों से भरा है। मूसा और ईसा को खुदा की ओर से किताब और मोज़िजे देने की पुनरुक्ति द्रष्टव्य है आयतखण्ड संख्या २२, १२६ में भी।

८. **क्रमभ्रष्ट आयत का उचित संशोधन**—संकलनकर्त्ता की भूल से मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, मूलप्रति सं० में यहां आयतखण्ड संख्या १४ में आयत संख्या ५३, तथा आयतखण्ड संख्या १७ की आयत ६५ और ६६ को संयुक्त किया हुआ है। उससे क्रम अस्तव्यस्त हो गया है क्योंकि इसके बाद आयतखण्ड संख्या १५, १६ में ५८, ६० संख्या वाली आयतें हैं। भद, युमी, द्वितीय सं० में ५३ और ६५, ६६ संख्या वाली आयतों को पृथक् करके ६५, ६६ संख्या वाली आयतों और उनकी समीक्षा को आयत संख्या ६० के बाद उचित क्रम में रख दिया है। क्रम में संशोधन अनिवार्य है, क्योंकि यह कुरान में उचित स्थान पर पठित हैं। वेस, सिद्धान्ती और उदयपुर सं० में भ्रष्ट क्रमसंख्या है। उन्होंने संकलनकर्त्ता लेखक की भूल को न सुधार कर प्रतिष्ठापित किया है।

९. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र० में **५०** संख्या अशुद्ध है। पं० भगवद्दत्त सं० में यही अपसंख्या है।

के सामने सिद्ध[१] बन जाते हैं, वैसे उस समय भी कपट किया होगा। क्योंकि खुदा और उसके सेवक अब भी विद्यमान हैं, पुनः इस समय खुदा आश्चर्यशक्ति[२] क्यों नहीं देता और [वे आश्चर्यकर्म क्यों] नहीं कर सकते?[३] जो मूसा को किताब दी थी, तो पुनः '**क़ुरान**' का देना क्या आवश्यक था? क्योंकि जो भलाई-बुराई करने-न करने का उपदेश [होता है वह] सर्वत्र एक-सा होता है, तो पुनः भिन्न-भिन्न पुस्तक करने से पुनरुक्त दोष होता है। क्या मूसा जी आदि को दिये हुये पुस्तक में[४] खुदा [कुछ][५] भूल गया था?॥ १४॥

१५. ....और कहो कि क्षमा मांगते हैं, हम क्षमा करेंगे तुम्हारे पाप और अधिक भलाई करनेवालों के।५८।[६] मं० १। सि० १। सू० २। आ० ५८॥[७]

समीक्षक—भला, यह खुदा का उपदेश सबको पापी बनानेवाला है वा नहीं? क्योंकि जब पाप क्षमा होने का आश्रय मनुष्यों को मिलता है तब पापों से कोई भी नहीं डरता। इसलिये ऐसा कहनेवाला ख़ुदा और यह ख़ुदा का बनाया हुआ पुस्तक नहीं हो सकता; क्योंकि वह न्यायकारी है, अन्याय कभी नहीं करता, और पाप[८]-क्षमा करने में अन्यायकारी हो ही जाता है, किन्तु यथापराध दण्ड देने में ही न्यायकारी हो सकता है॥ १५॥

१६. जब मूसा ने अपनी क़ौम के लिये पानी माँगा हमने कहा कि ''अपना असा[९] पत्थर पर मार।'' उसमें से बारह[१०] चश्मे बह निकले। ६०।[११] मं० १। सि० १। सू० २। आ० ६०॥[१२]

---

१. **मुद्रणलिपिकरकृत व्यर्थ परिवर्तन**—मुद्रणह०, द्विप्र० व द्वि०सं० में ''**विद्वान्**'' अप-परिवर्तन है। मूलह० का पाठ प्रसंग की दृष्टि से अधिक सटीक है। यहां 'विद्वान्' का नहीं अवतारी था सिद्ध बनकर स्वार्थ साधने का प्रसंग है।

२. **उचित संशोधन**—मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वितीय सं० में संशोधित पाठ '**आश्चर्य शक्ति**' है। ऊपर भी '**मोजिज़े**' का यही अर्थ दिया है, अतः यही ठीक है। आयत क्रमसंख्या १४ में यही अर्थ दिया है। मूलप्रति सं० में '**आश्चर्यकर्म**' शब्दपरिवर्तन अनुपयुक्त है। यह अगले वाक्य खण्ड में प्रयुक्त होने योग्य प्रयोग है।

३. **अपपाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**और नहीं कर सकते**'' अपूर्ण और अस्पष्ट वाक्य है। प्रतीत होता है कि मूलप्रति सं० में लिखा गया '**आश्चर्य कर्म**' यहां आना चाहिए था, वह लिपिकर से शीघ्रता में '**आश्चर्यशक्ति**' के स्थान पर लिखा गया है। प्रश्नवाचक होने से '**क्यों**' भी होना अपेक्षित है। आगे बृ० कोष्ठकान्तर्गत पाठ का परिवर्धन अभीष्ट है।

४. **मुद्रणलिपिकरकृत शैलीविरुद्ध पाठ**—मूलह० में यहां ''**किताब में**'' पाठ है। मुद्रणलिपिकर ने मुद्रणप्रति बनाते समय हिन्दीकरण करके 'किताब' के स्थान पर 'पुस्तक' अनुवाद कर दिया किन्तु यह ध्यान नहीं दिया कि पुस्तक का प्रयोग, ग्रन्थकार पुंल्लिग में करते हैं। शब्द तो बदल दिया किन्तु क्रियाएं वही स्त्रीलिंग की रह गईं। द्विप्र०, द्वि०सं०, मूलसं०, उदयपुर सं० आदि में स्त्रीलिंग में प्रयोग है, जो शैलीविरुद्ध है।

५. **त्रुटित आवश्यक पद**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में '**कुछ**' पद त्रुटित है।

६,११. **क्रमविरुद्ध और स्थानभ्रष्ट आयतखण्ड**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ये दोनों १५, १६ आयतखण्ड (अर्थात् ५८, ६० आयतें) क्रमविरुद्ध रूप में हैं। ये आयत संख्याएं ९७, ९८ के बाद लिखी मिलती हैं जबकि इनका उचित क्रम आयतखण्ड संख्या ५३ और ८१ के मध्य है। **स्वामी वेदानन्द सं०, पं० सिद्धान्ती सं०** में अपक्रम है किन्तु **पं० भगवद्दत्त सं०** और **पं० मीमांसक सं०** में संशोधित है। **उदयपुर सं०** ने ''मूलस्वरूप अक्षुण्ण रखने'' के मिथ्यामोह में क्रम-विरुद्ध पाठ को ही ग्रहण किया है जबकि उसके समक्ष संशोधन का भी विकल्प था। अशुद्धि के कारण के लिए पृ० ९५२ पर टि० ८ देखिए।

७. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—द्विप्र० में यहां आयतसंख्या ५४ अशुद्ध है। मूलह०, मुद्रणह०, मूलसं० में ८५ अशुद्ध है।

८. **त्रुटित पद**—द्वि० सं० में ''**पाप**'' पद त्रुटित है। मूलह०, मूलप्रति सं० में है।

९. **असा**=लाठी। मूसा के जीवन में वर्णित यह असम्भव चमत्कार है। इससे ज्ञात होता है कि उस समय मिश्र के लोग अशिक्षित थे और वे किसी भी बात पर विश्वास कर लेते थे। इसकी पुनरुक्ति द्रष्टव्य है आयतखण्ड संख्या ८३ पर।

१०,१४,१६. **महाभ्रष्ट परिवर्तन द्वितीय सं० में**—मुद्रण-हस्तलेख, द्विप्र० के समय तक यह पाठ ठीक था। द्वि०सं० में किसी शोधक

समीक्षक—अब देखिये, इन गपोड़ों के तुल्य दूसरा कोई होगा?[१३] एक पत्थर की शिला में डंडा मारने से बारह[१४] झरने निकलना सर्वथा असम्भव है। हाँ,[१५] उस पत्थर को भीतर से पोला कर, उसमें पानी भर, बारह[१६] छिद्र करने से तो सम्भव है, अन्यथा नहीं॥[१७] १६॥

१७. ....हमने उनको कहा कि ''तुम निन्दित बन्दर हो जाओ। ६५।'' यह एक भय दिया जो उनके सामने और पीछे थे उनको, और शिक्षा ईमानदारों को। ६६।[१]

मं० १। सि० १। सू० २। आ० ६५, ६६॥[२]

समीक्षक—जो ख़ुदा ने 'निन्दित बन्दर हो जाना' केवल भय देने के लिये कहा था, तो उसका कहना मिथ्या हुआ वा छल किया। जो ऐसी बातें करता [है][३] और जिसमें ऐसी बातें हैं, वह न ख़ुदा और न यह पुस्तक ख़ुदा का बनाया हो सकता है॥ १७॥

१८. इस तरह मुर्दों को अल्लाह[४] जिलाता है और तुमको[५] अपनी निशानियाँ दिखलाता है कि तुम समझो। ७३। मं० १। सि० १। सू० २। आ० ७३॥[६]

समीक्षक—यदि[७] मुर्दों को अल्लाह[८] जिलाता था तो अब क्यों नहीं जिलाता? क्या क़यामत की रात तक क़ब्रों में पड़े रहेंगे? आजकल दौरासुपुर्द[९] हैं? क्या इतनी ही ईश्वर की निशानियाँ हैं? पृथिवी, सूर्य, चन्द्रादि निशानियाँ नहीं हैं? क्या जगत् में जो विविध रचनाविशेष प्रत्यक्ष दीखती हैं ये[१०]

ने इस आयत में और इसकी समीक्षा में तीन स्थानों पर पठित ''**बारह**'' को ''**बाहर**'' पाठ बनाकर महाभ्रष्ट कर दिया। द्वि०सं० में वही महाभ्रष्ट पाठ अब तक छपता आ रहा है। शोधक यदि कुरान को या मुद्रणप्रति को ही ध्यान से देख लेता तो उसको अपनी त्रुटि का आभास हो जाता। प्राय: सम्पादकों ने इस पाठ को शुद्ध कर लिया है। किन्तु आश्चर्य है कि हमारे कुछ सम्पादक-प्रकाशक अब तक ऐसे-ऐसे महाभ्रष्ट पाठ पाठकों को पढ़ा रहे हैं!! द्विप्र०, उदयपुर सं० में संशोधित है।

१२. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०में यहां ८८ और द्विप्र० में यहां आयतसंख्या ५६ अशुद्ध है।

१३. **मुद्रणलिपिकर द्वारा अनावश्यक पाठपरिवर्तन**—मूलह०, मूलप्रति सं० के उपर्युक्त प्रभावकारी पाठ को मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में परिवर्तित करके इस प्रकार शिथिल बनाया है—''**इन असंभव बातों के तुल्य दूसरा कोई कहेगा?**'' यह परिवर्तन अनावश्यक है। इसमें परिवर्तन से इसका अर्थवैशिष्ट्य नष्ट हुआ है। मूलप्रति सं० का पाठ अधिक सटीक है। ''**असम्भव**'' प्रयोग तो पहले से ही अगली दूसरी पंक्ति में पठित है। यह पुनरुक्ति मात्र हो गई है।

१५. **उचित संशोधन**—मूलह०, मूलप्रति सं० में ''**जो**'' अशुद्ध और अनावश्यक प्रयोग है। मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में इसके स्थान पर ''**हाँ**'' संशोधन करके उचित किया है।

१७. **मूसा के असम्भव चमत्कारों की पुनरुक्ति**—द्रष्टव्य आयतखण्ड संख्या ८०, ८३, १२८। **बाइबल में**—समु० १३ में आयत खण्ड संख्या ४० में।

१. **अपक्रम का संशोधन**—यह आयतखण्ड मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, उदयपुर सं० आदि में अपक्रम में है। उसका इस सं० में संशोधन किया गया है। द्र० पृ० ९५२ पर टि० ८।

२. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—द्विप्र० में यहां आयतसंख्या ५०, ६१ अशुद्ध है। मूलह०, मुद्रणह०, मूलसं० में यहां ५३ अशुद्ध है।

३. **त्रुटित आवश्यक पद**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में '**है**' क्रिया त्रुटित है।

४,८. **मुद्रणलिपिकर द्वारा अनावश्यक पाठान्तर**—मुद्रणह०, द्वि०सं० में '**अल्लाह**' के स्थान पर '**खुदा**' परिवर्तन किया है जो अनुचित है। कुरान के मूलपाठ में '**अल्लाह**' ही है।

५. **द्वितीय सं० में अपपाठ**—द्वि० सं० में ''**तुमे को**'' अपपाठ है। मुद्रणदोष भी हो सकता है।

६. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, मूलप्रति सं० में यहां आयतसंख्या ''**५०**'' अशुद्ध है। द्विप्र० में ६७ अशुद्ध है।

७. **अपप्रयोग**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**क्या**'' निरर्थक प्रयोग है। '**यदि**' सार्थक-शुद्ध है।

९. **अपप्रयोग**—दोनों हस्त०, द्विप्र०, द्वि०सं० और मूलप्रति सं० में ''**दौड़ासुपुर्द**'' अपप्रयोग है। '**दौरासुपुर्द**' होना अभीष्ट है। द्र० पृ० ९२१ पर टिप्पणी। भद, युमी में भी अशुद्ध है, वेस, जस, उदयपुर सं० में संशोधित है।

निशानियाँ कम हैं ?॥ १८ ॥

१९. किन्तु जो बुराई कमायें और उन्हें उनका अपराध घेर लेवे तो वे लोग सदैव आग में वास करेंगे। ८१ । ....[जो ईमान लाये और अच्छे कर्म किये] वे सदैव काल बहिश्त अर्थात् वैकुण्ठ में वास करेंगे। ८२।[१] मं० १। सि० १। सू० २। आ० ८१, ८२॥[२]

समीक्षक—कोई भी जीव अनन्त पुण्य-पाप[३] करने का सामर्थ्य नहीं रखता, इसलिये सदैव स्वर्ग-नरक में नहीं रह सकते। और जो ख़ुदा ऐसा करे तो वह अन्यायकारी और अविद्वान् हो जावे। क़यामत की रात न्याय होगा तो [उस एक रात तक के लिये] मनुष्यों के पुण्य-पाप[४] बराबर होना उचित है। जो अनन्त नहीं है उसका फल अनन्त कैसे हो सकता है ? और सृष्टि हुए सात-आठ हज़ार वर्षों से इधर ही बतलाते हैं, क्या इसके पूर्व ख़ुदा निकम्मा बैठा था, और क़यामत के पीछे भी निकम्मा रहेगा ? ये सब बातें[५] लड़कों के समान हैं, क्योंकि परमेश्वर के काम सदैव वर्तमान रहते हैं, और जितने जिसके पाप-पुण्य हैं, उतना ही उसको फल देता है। इसलिये '**क़ुरान**' की यह बात सच्ची नहीं॥ १९ ॥

२०. जब हमने तुमसे प्रतिज्ञा कराई न बहाना लोहू किसी अपने आपस में, और किसी अपने आपस के[६] घरों से न निकालना, फिर प्रतिज्ञा की तुमने,[७] इसके तुम ही साक्षी हो। ८४। फिर तुम वे लोग हो कि अपने आपस को मार डालते हो, [और] अपनों में से एक फ़िरके को उनके घरों से निकाल देते हो....। ८५।[८] मं० १। सि० १। सू० २। आ० ८४।८५॥[९]

समीक्षक—भला, प्रतिज्ञा करानी और करनी अल्पज्ञों की बात है वा परमात्मा की ? जब परमेश्वर

---

१०. **उचित संशोधन**—मूलह०, मूलसं० में ''**यह**'' एकवचन में अपप्रयोग है, बहुवचन चाहिये है। मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० संशोधित है।

१. **मुद्रणलिपिकर के प्रमाद से आयत त्रुटित अपपाठ और क्रम भंग**— मुद्रणह० में प्रतिलिपि करते समय प्रमादी मुद्रणलिपिकर ने फिर द्विप्र० और द्वितीय सं० में पहली आयत ''**किन्तु जो.....करेंगे**'' प्रमादवश त्रुटित छोड़ी है जबकि दोनों आयतें एक-दूसरी से सम्बद्ध और अन्योन्य-आश्रित हैं और मूलह० में हैं। ध्यान देने की बात यह है कि समीक्षा में अभी भी दोनों आयतों की समीक्षा विद्यमान है। पुण्य और स्वर्ग के साथ पाप और नरक का भी उल्लेख है।

मूलसं० में क्रमभंग—मूलह०, मूलप्रति सं० में **क्रमभंग** करके आयत लिखी है। पहली आयत बाद में और बाद की पहले है। इसी प्रकार भाषा अस्तव्यस्त एवं त्रुटित है। ''**उन्हें उनका**'' के स्थान पर ''**उसे उसका**'' एकवचनात्मक अशुद्ध पाठ है जबकि पूर्वापर में बहुवचनपरक प्रयोग है। ''**अपराध घेर लेवे तो**'' के स्थान पर ''**अपराध घेर लेवे**'' अपूर्णपाठ है।

बृहत् कोष्ठकान्तर्गत पाठ दोनों संस्करणों में त्रुटित हैं जबकि उसके बिना आयतवाक्य ही पूर्ण नहीं होता। कौन बहिश्त में वास करेंगे, यह आयत के पूर्वपाठ में है जो बृहत् कोष्ठकान्तर्गत है।

२. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र० में ७५ आयतसंख्या अशुद्ध है।

३-४. **अपपाठक्रम**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में दोनों स्थानों पर ''**पुण्य-पाप**'' यह क्रम होना आवश्यक है, क्योंकि इस समीक्षा की दूसरी पंक्ति में उनका फल ''**स्वर्ग-नरक**'' प्रदर्शित किया है। ''**पाप-पुण्य**'' पाठ अपक्रम से है।

५. **स्थानभ्रष्ट अपपाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**ये बातें सब लड़कों के समान हैं**'' वाक्य में ''**सब**'' विशेषण ''**लड़कों**'' से पूर्व जुड़ने से निरर्थक है। यह ''**बातें**'' का विशेषण है, अत: उससे पूर्व '**सब बातें**' प्रयोग वांछनीय है।

६. **क़ुरान में पक्षपात की पराकाष्ठा**—''**अपने आपस में**'' अर्थात् अपने मुसलमान जनों में, ''**अपने-आपस के**'' अर्थात् अपने मुसलमानों के। कुरानकार को दूसरों को मारने, तबाह करने, घसीटने, पोरी-पोरी काटने आदि के आदेश देने पर दया नहीं आई, अपने लोगों अर्थात् मुसलमानों के परस्पर मारने और उनको घर से निकालने पर भी दया आ रही है। पक्षपात देखिए!!

७-८. **त्रुटित एवं अस्त-व्यस्त पाठ**—मूलह०, मूलप्रति सं० में ''**फिर प्रतिज्ञा की तुमने**'' पाठ त्रुटित है। मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० तथा कुरान में है। द्वि०सं० में अन्तिम वाक्य अस्त-व्यस्त है—''**एक फ़िरके को आप में से घरों उनके से निकाल देते हो।**''

सर्वज्ञ है, तो ऐसा कड़ाकूट[१] संसारी मनुष्य के समान क्यों करेगा? भला, यह कौन-सी भली बात है कि आपस का लोहू न बहाना, अपने मतवालों को घर से न निकालना, अर्थात् दूसरे मतवालों का लोहू बहाना और घर से निकाल देना! यह मिथ्या, मूर्खता और पक्षपात की बात नहीं है क्या? क्या परमेश्वर प्रथम से ही नहीं जानता था कि ये प्रतिज्ञा से विरुद्ध करेंगे? इससे विदित होता है कि मुसलमानों का ख़ुदा भी ईसाइयों [के ईश्वर] की बहुत-सी उपमा रखता है।[२] और यह '**क़ुरान**' स्वतन्त्र पुस्तक[३] नहीं बन सकता, क्योंकि इसमें से थोड़ी-सी बातों को छोड़कर बाकी सब बातें '**बाइबल**' की हैं॥ २०॥

२१. ये वे लोग हैं कि जिन्होंने आख़िरत[४] के बदले जिन्दगी यहां की मोल ले ली, उनसे पाप कभी हलका न किया जावेगा और न उनको सहायता दी जावेगी। ८६।

मं० १। सि० १। सू० २। आ० ८६॥[५]

समीक्षक—भला, ऐसी ईर्ष्या-द्वेष की बातें कभी ईश्वर की ओर से[६] हो सकती हैं? 'दूसरों की कहानी और दूसरों से कहनी'[७] और किसी का पक्ष करना ख़ुदा की बात नहीं हो सकती किन्तु किसी मतावलम्बी मनुष्य की ओर से है[८]।[९] जिन लोगों के पाप हलके[१०] किये जायेंगे वा जिनको सहायता दी जावेगी वे कौन हैं? यदि वे पापी हैं और पापों का दण्ड दिये विना हलके किये जावेंगे, तो अन्याय होगा। जो सजा देकर हलके किये जावेंगे, तो जिनका बयान इस आयत में है, ये भी सजा पाके हलके हो सकते हैं। और दण्ड देकर भी हलके न किये जावेंगे, तो भी अन्याय होगा। जो पापों से हलके किये जानेवालों से प्रयोजन धर्मात्माओं से है, तो उनके पाप तो आप ही हलके हैं, ख़ुदा क्या करेगा? इससे

---

९. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह० में यहां ६६, ६७ और द्विप्र० में ७७, ७८ आयतसंख्याएं अशुद्ध हैं।

१. **कड़ाकूट**=व्यर्थ श्रम या व्यर्थ बातें करनेवाला। यह गुजराती भाषा का प्रयोग है।

२. **ईसाइयों के ईश्वर की उपमा**—जैसे कि त्रयोदश समुल्लास में आयतों की समीक्षा करते हुए यह निष्कर्ष सामने आया है कि ईसाइयों का ईश्वर मनुष्यवत्, स्वार्थी, क्रूर, अन्यायी, अत्याचारी, पक्षपाती, एकदेशी, असर्वज्ञ, कलह कराने और बढ़ानेवाला, मिथ्याचार करनेवाला, लोगों को बहकानेवाला है, उसी स्वभाव का मुसलमानों का ईश्वर है। यह ज्ञान चतुर्दश समु० में समीक्षित आयतों से हो रहा है। **त्रुटित पाठ**—कोष्ठकान्तर्गत पाठ अति-आवश्यक है। उसके बिना अनर्थ प्रकट होता है।

३. **मुद्रणलिपिकर द्वारा त्रुटित पद**—मुद्रणह०, द्विप्र० तथा सभी द्वि०सं० में '**पुस्तक**' पद त्रुटित है। मूलह०, मूलसं० में है।

४. **आखिरत**=परलोक, परिणाम, क़यामत का न्याय। कुरान के अनुसार, कयामत (महाप्रलय) के पश्चात् अल्लाह नयी सृष्टि का निर्माण करेगा। तब सभी मृतकों को उठा-जिलाकर वह कर्मफल के अनुसार नया जीवन प्रदान करेगा। अल्लाह के आज्ञाकारी बन्दों अर्थात् मुसलमानों को स्वर्ग=जन्नत मिलेगा और काफ़िरों को नरक=जहन्नुम। इस सिद्धान्त को '**आख़िरत**' कहा जाता है। **अपवर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में "**आख़रत**" अशुद्ध वर्तनी है। यह शब्द '**आख़िर**' से बना है।

६. **त्रुटित पाठ**—मूलह०, मूलप्रति सं० में "**ओर से**" पाठ त्रुटित है। मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में संशोधित करके जोड़ दिया है।

५. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह० में यहां ६९ और द्विप्र० में ७९ आयतसंख्या अशुद्ध है।

७. '**दूसरों की कहानी दूसरों से कहनी**'—इधर-उधर की बातें कहना या लगाना, ऊटपटांग बातें करना।

८. **मुद्रणलिपिकर के प्रमाद से त्रुटित पाठ**—मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में "**दूसरों की कहानी......ओर से है**" पाठ त्रुटित रह गया है। मूलप्रति सं० में है। उदयपुर सं० आदि सभी द्वि०सं० में यह पाठ त्रुटित है।

९. **मुंशी समर्थदान द्वारा परिवर्धित समीक्षा**—"**जिस लोगों......देना चाहिये**" सात पंक्तियों का पाठ मूलह० में नहीं है। मुद्रणप्रति में मुंशी जी के हस्तलेख में परिवर्धित है।

१०. **अयोग्य लिपिकर-शोधक एवं अपवर्तनी**—इस समीक्षा में छह बार इस शब्द का प्रयोग हुआ है। द्विप्र० में पहले दो स्थलों पर "**हल्के**" अपवर्तनी है, अगले चार स्थलों पर शुद्ध "**हलके**" वर्तनी छपी है। एक ही अनुच्छेद में दो-दो प्रकार की वर्तनी देखकर यह उक्ति चरितार्थ होती है 'जैसे नागनाथ, वैसे सांपनाथ।' 'हल्का' अरबी का शब्द है जिसका अर्थ 'क्षेत्रविशेष' होता है, जबकि 'हलका' हिन्दी का है जिसका अर्थ 'स्वल्प भारयुक्त' अथवा 'तनावरहित' होता है।

यह लेख विद्वान् का नहीं। और **वास्तव में धर्मात्माओं को सुख और अधर्मियों को दुःख उनके कर्मों के अनुसार सदैव देना चाहिये॥** २१ ॥

२२. निश्चय हमने मूसा को किताब दी[१] और उसके पीछे हम पैगम्बर को लाये और मरियम के पुत्र ईसा[२] को प्रकट मोज़िजे अर्थात् दैवीशक्ति और सामर्थ्य दिये उसके साथ रूहुल्कुदुस* के।[३] जब तुम्हारे पास उस वस्तुसहित पैग़म्बर आया कि जिसको तुम्हारा जी चाहता नहीं, फिर तुमने अभिमान किया, एक मत को झुठलाया और एक को[४] मार डालते हो। ८७।

मं० १। सि० १। सू० २। आ० ८७॥[५]

समीक्षक—जब '**क़ुरान**' में साक्ष्य है कि मूसा को किताब दी, तो उसका मानना मुसलमानों को आवश्यक हुआ और जो-जो उस पुस्तक में दोष हैं वे भी मुसलमानों के मत में आ गिरे। और 'मोजिज़े'[६] अर्थात् दैवीशक्ति की बातें सब अन्यथा हैं। भोले-भाले मनुष्यों को बहकाने के लिये लोगों ने झूठ-मूठ चला ली हैं, क्योंकि सृष्टिक्रम और विद्या से विरुद्ध सब बातें झूठी ही होती हैं। जो उस समय 'मोजिज़े'[७] थे, तो इस समय क्यों नहीं? जो इस समय नहीं, तो उस समय भी न थे, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं॥ २२ ॥

२३. .....और इससे पहले काफ़िरों पर विजय चाहते थे, जो कुछ पहचाना था, जब उनके पास वह आया, झट काफ़िर हो गये, काफ़िरों पर लानत है अल्लाह की। ८९।

मं० १। सि० १। सू० २। आ० ८९॥[८]

समीक्षक—क्या जैसे तुम अन्य मत-वालों को काफ़िर कहते हो, वैसे वे तुमको काफ़िर नहीं कहते हैं?[९] और उनके मत के ईश्वर की ओर से धिक्कार नहीं देते हैं? फिर कहो कौन सच्चा और कौन झूठा?

---

* 'रूहुल्कुदुस'[१०] कहते हैं जिबरईल को, जो कि हरदम मसीह के साथ रहता था।

---

१. **मूसा की किताबें**—यहूदी मत में मान्यता है कि यहूदी धर्म के प्रचार-प्रसार, उपदेश के लिए परमात्मा की ओर से जो किताब मूसा के हृदय में उतरी उसका नाम '**तौरेत**' है यह ३९ पुस्तकों का संग्रह है। बाइबल के आरम्भ में पाई जाने वाली 'तौरेत' नामक पुस्तकों को 'ओल्ड टेस्टामेंट' (Old Testament) अर्थात् 'पुराना धर्मनियम' कहा जाता है। मूसा से यहूदी मत चला। मूसा को किताब देने की पुनरुक्ति द्र० है आयतखण्ड संख्या समु० १४,१२६ में भी।

२. **पैगम्बर ईसा और उसकी पुस्तक**—मूसा के बाद मरियम पुत्र ईसा मसीह पैगम्बर के रूप में माना गया। ईसाई धर्म विषयक पुस्तक का नाम '**इंजील**' (New Testament) अर्थात् 'नया धर्मनियम' है। यह ईसाइयों की विशेष धर्मपुस्तक है जो बाइबल के उत्तरार्ध में संयुक्त है। ईसा की माता का वर्णन समु० १३ में आयतखण्ड ६३ में भी द्रष्टव्य है।

३,१०. '**रूहुल्कुदुस**' (**The holy spirit**)—इसका अर्थ '**पवित्र आत्मा**' है। अल्लाह के फरिश्ते हजरत जिबरईल का ही यह नाम है। अल्लाह ने कुछ सन्देश इसके माध्यम से ईसा मसीह को पहुँचाये थे। यह ईसा मसीह का घनिष्ठ साथी था। तीनों सं० में 'रूहुलकुद्स' और ''रूहलकुद्स'' अपवर्तनियां हैं। दोनों हस्तलेखों में ''**रुहलकुत्स**'' अपवर्तनी है।

४. **उचित परिवर्धन**—मूलह०, मूलप्रति सं० में ''**एक को**'' त्रुटित पद हैं। मुद्रणह०, द्विप्र० में परिवर्धित है।

५. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, यहां ७० और द्विप्र० में ८० आयतसंख्या अशुद्ध है।

६,७. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में दोनों स्थलों पर ''**मौजिज़े**'' अपवर्तनी है। अन्य सभी सं० में भी अपवर्तनी है।

८. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह० में यहां आयतसंख्या ७२, उदयपुर में ९२, द्विप्र० में ८२, युमी में ८८ अशुद्ध है।

९. **उचित संशोधन**—द्विप्र० में ''**वैसे वे तुमको काफ़िर कहते हैं**'' को नकारात्मक प्रश्नवाचक बनाया गया है—''**वैसे वे तुमको काफिर नहीं कहते हैं?**'' यह परिवर्तन उचित है। दोनों सं० में अगले वाक्य में भी '**नहीं देते हैं**' पाठ अपेक्षित है।

जो **विचार कर देखते हैं तो सब मत-वालों में झूठ पाया जाता है और जो सच है सो सबमें एक-सा है। ये सब लड़ाइयाँ मूर्खता की हैं॥** २३ ॥

२४. आनन्द का सन्देशा ईमानदारों को। ९७। अल्लाह, फ़रिश्तों,[1] पैग़म्बरों, ज़िबरईल और मीकाईल[2] का जो शत्रु है, अल्लाह भी ऐसे काफ़िरों का शत्रु है। ९८।

मं० १। सि० १। सू० २। आ० ९७। ९८॥[3]

समीक्षक—जब मुसलमान कहते हैं कि 'ख़ुदा लाशरीक है' फिर यह फौज की फौज 'शरीक' कहां से कर दी? क्या जो शैतान का शत्रु है वह परमेश्वर का भी शत्रु है?[4] क्या वह ख़ुदा की आज्ञा से विरुद्ध नहीं चलता? इससे ख़ुदा पक्षपाती होता है॥ २४॥

२५. ....और अल्लाह ख़ास करता है, जिसको चाहता है दया करता है। १०५।[5]

मं० १। सि० १। सू० २। आ० १०५॥[6]

समीक्षक—क्या जो मुख्य [बनाने] और दया करने योग्य न हो, उसको भी प्रधान बनाता[7] और

---

१. **अपवर्तनी**—मुद्रणहस्त० में **''संदेसा''** और **''फरिस्तों''** अपवर्तनियां हैं। द्विप्र० में पहली संशोधित कर दी किन्तु दूसरी अपवर्तनी यथावत् है। अन्य सं० में संशोधन कर दिया है।

२. **जिबरईल**=(Gabriel), जिबरील। टिप्पणी में 'जबरईल' वर्तनी है। एकरूपता के लिए आयतोक्त वर्तनी ग्रहण की है। **मीकाईल**=(Michael) ये दोनों अल्लाह के फ़रिश्ते हैं। विशेष टिप्पणी द्रष्टव्य है पृ०१०४१ पर संख्या १।

३. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह० में ८० के और द्विप्र० में आयत ९७ के स्थान पर ९० अशुद्ध है, ९८ त्रुटित है।

४. **मुद्रणकालीन भ्रष्ट परिवर्तन**—मूलह०, मुद्रणह० में शुद्ध पाठ है, किन्तु द्विप्र० में मुद्रणकाल में अशुद्ध पाठ बनाया गया है। द्विप्र० और द्वितीय सं० में यह पाठ बनाया है—**''क्या जो औरों का शत्रु है वह खुदा का भी शत्रु है?''** यह परिवर्तन महर्षि की समीक्षा को गम्भीरता से न समझने का परिणाम है। यहाँ **''औरों का''** कथन निरर्थक है, क्योंकि यह अशुद्ध प्रयोग है और न आयत में यह कथ्य है। कुरान ने कहा है कि जो अल्लाह के फ़रिश्तों का शत्रु है वह अल्लाह का शत्रु है और अल्लाह उसका भी शत्रु है। महर्षि ने इस पर व्यंग्य किया कि इस्लाम में शैतान अर्थात् इब्लीस फरिश्ता है, तो इसका अर्थ यह निकला कि जो **'शैतान'** का शत्रु है वह भी खुदा का भी शत्रु कहायेगा। शैतान का शत्रु तो स्वयं खुदा भी है।

कुरान के अनुसार, शैतान खुदा की आज्ञाओं के विरुद्ध चलता है और लोगों को खुदा तथा फरिश्तों के विरुद्ध भड़काता है, गुमराह करता है। यहां ग्रन्थकार व्यंग्य करते हैं कि क्या खुदा ऐसे शैतान के विरोधियों का भी शत्रु है? यदि इसको सही मानेंगे तो क़ुरान की यह कितनी अटपटी बात होगी! खुदा पक्षपाती भी ठहरता है, क्योंकि वह अपने फरिश्तों का इतना पक्षपात करता है कि उनके विरोधियों का भी शत्रु हो जाता है। क्या ऐसे को खुदा कहा जा सकता है?

द्विप्र०, द्वि०सं० में **'शैतान'** पद हटा देने से समीक्षा की सारी शुद्धता, व्यंग्यशक्ति और मार्मिकता ही नष्ट हो गई। यहां 'शैतान' पद पर ही सारी आलोचना केन्द्रित है। संशोधक महर्षिप्रोक्त इस तथ्य को समझ नहीं पाया। (इस्लाम या कुरान में शैतान को भी फरिश्ता माना गया है, इसकी पुष्टि के लिए देखिए आयतक्रम संख्या ११)। यही अशुद्ध समीक्षा **स्वामी वेदानन्द जी, पं० सिद्धान्ती जी, पं० भगवददत्त जी** तथा **पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक** के संस्करण में भी है। उदयपुर सं० के सामने शुद्ध और अशुद्ध दो विकल्प विद्यमान थे, फिर भी उसमें अशुद्ध पाठ को ग्रहण किया गया है। प्रतीत होता है कि कथित दश विद्वानों ने इस पाठ की गम्भीर अभिव्यक्ति पर गम्भीरता से विचार नहीं किया।

५. **कुरान के परस्परविरोधी और मनमानेपन पर आधारित कथन**—कुरान में परस्परविरुद्ध कथनों की भरमार है तथा अल्लाह के मनमानेपन का वर्णन है। कुरान एक ओर कहता है कि कयामत के समय न्याय की रात में कर्मों के अनुसार अच्छा-बुरा फल दिया जायेगा (द्र० आयतखण्ड संख्या १६४ आदि), तो दूसरी ओर कहता है कि अल्लाह जिसको चाहेगा क्षमा करेगा, जिसको चाहेगा दण्ड देगा, जिसको चाहेगा, पुण्यात्मा बनायेगा, जिसको चाहेगा पापी बनायेगा आदि (द्रष्टव्य आयतखण्ड संख्या २४, ४०, ४६, ४९, ५२, ७२, १०४, १४३ आदि)।

६. **मुद्रणप्रति में अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मुद्रणह०, द्विप्र० में यहां आयतसंख्या ९७ अशुद्ध है। भद में १०६ अशुद्ध है।

७. **उचित परिवर्धन**—मूलह०, मूलप्रति सं० में **''बनाता''** पद त्रुटित है। द्विप्र०, द्वि०सं० में है।

उस पर दया करता है? जो ऐसा है तो ख़ुदा बड़ा गड़बड़िया है; क्योंकि फिर अच्छा काम कौन करेगा[१] और बुरे कर्म को कौन छोड़ेगा? क्योंकि ख़ुदा की प्रसन्नता पर सब बातें[२] निर्भर करती हैं, कर्मफल पर नहीं। इससे सबको अनास्था होकर धर्मोच्छेदप्रसङ्ग[३] होगा॥ २५॥

२६. ....ऐसा न हो कि काफ़िर लोग ईर्ष्या करके तुमको ईमान से फेर देवें, क्योंकि उनमें से ईमानवालों के बहुत से दोस्त हैं....। १०९।[४] मं० १। सि० १। सू० २। आ० १०९॥[५]

समीक्षक—अब देखिये, ख़ुदा ही उनको चिताता है कि तुम्हारे ईमान को काफ़िर लोग न डिगा देवें, अर्थात् क्या वह सर्वज्ञ नहीं है? ऐसी बातें ख़ुदा की नहीं हो सकती हैं॥ २६॥

२७. ....तुम जिधर मुँह करो, उधर ही मुँह अल्लाह का है.....। ११५।

मं० १। सि० १। सू० २। आ० ११५॥[६]

समीक्षक—जो यह बात सच्ची है तो मुसलमान '**क़िब्ले**'[७] की ओर मुंह क्यों करते हैं? जो कहें हमको क़िब्ले[८] की ओर मुंह फेरने का हुक्म है, तो यह भी हुक्म है कि चाहे जिधर की ओर मुख करो। क्या एक बात सच्ची और दूसरी झूठी होगी? और जो अल्लाह का मुख है, तो वह सब ओर हो ही नहीं सकता, क्योंकि एक मुख एक ओर रहेगा, सब ओर क्योंकर रह सकेगा? इसलिये यह संगत नहीं॥ २७॥

२८. वो आसमान और भूमि का उत्पन्न करने वाला है, जब वो कुछ करना चाहता है यह नहीं कि उसको करना पड़ता है, किन्तु उसे कहता है कि 'हो जा'; बस हो जाता है। ११७।[९]

मं० १। सि० १। सू० २। आ० ११७॥[१०]

समीक्षक—भला, ख़ुदा ने हुक्म दिया कि ''**हो जा**'', तो हुक्म किसने सुना? और किसको सुनाया? और कौन बन गया? किस कारण से बनाया? जब यह लिखते हैं कि सृष्टि के पूर्व सिवाय ख़ुदा के कोई भी दूसरा वस्तु न था, तो यह संसार कहां से आया? विना कारण के कोई भी कार्य नहीं

---

१. **मुद्रणकालीन उचित संशोधन**—मूलह०, मूलसं० में ''**करे**'' अपक्रिया है। द्वि०सं० में संशोधित ''**करेगा**'' ठीक है।

२. **त्रुटित पद**—द्वि० सं० में ''**सब बातें**'' त्रुटित पद हैं, ''**करते हैं**'' अपक्रिया है। मूलह०, मूलप्रति सं० में शुद्ध हैं।

३. **ऋषिलेख का अनुचित संशोधन**—द्वि० सं० में ''**कर्मोच्छेद**'' पद लिखा है। मूलह०, मूलप्रति सं० में ''**धर्मोच्छेद**'' व्यापक पद है। 'धर्म' में ही सभी अच्छे कर्मों का समावेश होता है। यह ऋषि ने स्वयं लिखा है।

४. **अर्थान्तर**—अरबी-फारसी के आर्य विद्वान् पं० रामचन्द्र देहलवी ने इस आयत का स्पष्टार्थ इस प्रकार दिया है—''ऐसा न हो कि काफ़िर लोग जिनके, ईमानवालों में से (अर्थात् यहूद व नसारा में से) बहुत से दोस्त हैं, ईर्ष्या करके तुमको ईमान से फेर देवें।'' (''सत्यार्थप्रकाश १४ समुल्लास में उद्धृत कुरान की आयतों का अनुवाद'', पृ०-'ग')

५. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—द्विप्र० में १०१, मूलह०, मुद्रणह० भद में ११०, उदयपुर सं० में १०१ अशुद्ध आयतसंख्या है।

६. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—द्विप्र० में यहां आयतसंख्या १०७ अशुद्ध है। मूलह०, मुद्रणह०, मूलसं०, भद में ११६ संख्या अशुद्ध है।

७-८. **अपवर्तनी**—दोनों सं० में दोनों स्थानों पर ''**किबले**'' अपवर्तनी है, ''**क़िब्ले**'' उपयुक्त है। '**क़िब्ला**' का अर्थ है '**नमाज़ पढ़ते समय मुंह करने की दिशा या स्थान**' और '**काबा**' अरब के मक्का नगर में वह स्थान है जहां मुसलमानों की पवित्र मस्जिद मस्जिदुलहराम और उसमें स्थापित 'काला' पत्थर है। मुसलमान उसी की दिशा की ओर मुंह करके नमाज़ अदा करते हैं। (विस्तृत टिप्पणी द्र० है पृ० ९६२ पर)

९. **''हो जा'' की पुनरुक्ति**—''**हो जा**'' कहते ही सृष्टि-उत्पत्ति हो जाने की असम्भव कथा की पुनरुक्ति आयतखण्ड संख्या ५४ और १४० में भी द्रष्टव्य है।

१०. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—द्विप्र० में आयतसंख्या १०९ अशुद्ध है। मूलह०, मुद्रणह०, भद में ११८ अशुद्ध है।

होता, तो इतना बड़ा जगत् कारण के विना कहां से हुआ? यह बात केवल लड़केपन की है।

पूर्वपक्षी—ख़ुदा की इच्छा से [जगत् हुआ]।[१]

उत्तरपक्षी—क्या तुम्हारी इच्छा से मक्खी की एक टांग[२] भी बन सकती है? जो कहते हो कि ख़ुदा की इच्छा [मात्र][३] से यह सब कुछ जगत् बन गया।

पूर्वपक्षी—ख़ुदा सर्वशक्तिमान् है, इसलिये जो चाहे सो कर लेता है।

उत्तरपक्षी—सर्वशक्तिमान् शब्द का क्या अर्थ है?[४]

पूर्वपक्षी—जो चाहे सो कर सके।

उत्तरपक्षी—क्या ख़ुदा दूसरा ख़ुदा भी बना सकता है?[५] अपने आप मर सकता है? मूर्ख, रोगी और अज्ञानी भी बन सकता है?

पूर्वपक्षी—ऐसा कभी नहीं बन सकता।

उत्तरपक्षी—इसलिये परमेश्वर अपने और दूसरों के गुण, कर्म, स्वभाव के विरुद्ध कुछ भी नहीं कर सकता। जैसे, संसार में किसी वस्तु के बनने-बनाने में तीन पदार्थ प्रथम अवश्य होते हैं—एक, बनानेवाला, जैसे कुम्हार; दूसरा[६], घड़ा बननेवाली मिट्टी; और तीसरा, उसका साधन जिससे[७] घड़ा बनाया जाता है। जैसे[८] कुम्हार, मिट्टी और साधन से घड़ा बनता है और बननेवाले घड़े के पूर्व कुम्हार, मिट्टी और साधन होते हैं, वैसे ही जगत् के बनने से पूर्व परमेश्वर, जगत् का कारण प्रकृति और उनके गुण, कर्म, स्वभाव अनादि हैं। इसलिये यह '**क़ुरान**' की बात सर्वथा असम्भव[९] है॥ २८॥

२९. जब हमने लोगों के लिये काबे[१०] को पवित्र स्थान, सुख देने वाला, उपद्रव रहित बनाया, तुम नमाज़ के लिये इब्राहीम[११] के स्थान को पकड़ो। १२५। मं० १। सि० १। सू० २। आ० १२५॥[१२]

---

१. **मुद्रणलिपिकर द्वारा अनुचित परिवर्तन**—मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में इस वाक्य के आरम्भ में ''**नहीं, नहीं**'' पाठ परिवर्धित किया है, जो अनावश्यक है। प्रश्न था—''**जगत् कारण के बिना कहां से हुआ?**'' उत्तर मूलप्रति सं० में स्पष्ट था—''**ख़ुदा की इच्छा से।**'' यहां ''**नहीं, नहीं**'' पाठ की कोई प्रासंगिकता ही नहीं है। मूलप्रति सं० का पाठ ग्राह्य है। यही असंगत पाठ उदयपुर सं० में है।

२. **अपवाक्य**—दोनों सं० में ''**एक मक्खी की टांग**'' अनुपयुक्त पाठ है। '**मक्खी की एक टांग**' उपयुक्त पाठ है।

३. **त्रुटित आवश्यक पद**—दोनों सं० में ''**इच्छा से**'' पाठ है, यहां '**मात्र**' पद त्रुटित है, '**इच्छामात्र**' प्रयोग अपेक्षित है।

४. **सर्वशक्तिमान् का अन्यत्र वर्णन**—द्रष्टव्य सप्तम समुल्लास में पृ० ३२६, ३८३।

५. **त्रुटित पद**—मूलह०, मूलप्रति सं० में प्रथम दो वाक्यखण्डों के बाद '**है**' क्रिया त्रुटित है। द्वि० सं० में क्रिया का उल्लेख है।

६-८. **अपप्रयोग**—इस वाक्य में दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**दूसरी**'' अपपाठ है। ''**पदार्थ**'' पुंल्लिग के साथ पुंल्लिग प्रयोग '**दूसरा**' होना चाहिए। आगे, मूलप्रति सं० में ''**उनके साधन जिससे**'' अपपाठ है। '**उसका**' शुद्ध है। इसी प्रकार आगे, वाक्य के आरम्भ में ''**जैसा**'' अपपाठ है। द्वि० सं० में ''**जैसे**'' संशोधित ठीक है।

९. **उचित संशोधन**—मूलह०, मूलप्रति सं० में ''**मिथ्या**'' पाठ है। मुद्रणह०, द्वि०सं० में संशोधित ''**असम्भव**'' अधिक सार्थक प्रयोग है, क्योंकि यहां संभव-असंभव का ही प्रसंग है।

१०. **काबा**—अरब के मक्का नगर में स्थित वह पवित्र स्थान (मस्जिद) जिसे मुसलमान अल्लाह का सर्वोत्तम घर मानते हैं। इसकी दीवारों को हजरत अब्राहम (इब्राहीम) और हजरत इस्माईल ने अपने हाथों से चिना था। मुसलमान इसकी ओर मुंह करके नमाज़ पढ़ते हैं। इस मस्जिद को 'मस्जिदुलहराम' कहकर आदर देते हैं। अगले पृ० ९६२ की टिप्पणी संख्या १, २ भी द्रष्टव्य हैं। आयतखण्ड संख्या ३१ भी देखें।

११. **इब्राहीम** या (Abraham)=अब्राहम दोनों वर्तनियां मिलती हैं। प्रकरणानुसार दोनों शुद्ध हैं। टि०द्र०पृ० ८६२ पर।

समीक्षक—क्या **'काबा'** से पहले पवित्र स्थान खुदा ने कोई भी बनाया था वा नहीं? जो बनाया था तो **'काबा'** के बनाने की कुछ आवश्यकता नहीं थी। जो नहीं बनाया था, तो बेचारे पूर्वोत्पन्नों को पवित्र स्थान के विना ही रक्खा था। जब **'क़ुरान'** बनाया था,[१] तब ईश्वर को पहला पवित्र स्थान बनाने का स्मरण न हुआ होगा[२] ॥ २९ ॥

३०. वो कौन मनुष्य है जो इब्राहीम के दीन से फिर जावे सिवाय उसके जिसने अपनी जान को मूर्ख बनाया। और निश्चय हमने दुनिया में उसी [इब्राहीम] को पसन्द किया और निश्चय आख़िरत[३] में वो ही नेक है। १३०। मं० १। सि० १। सू० २। आ० १३० ॥[४]

समीक्षक—यह कैसे सम्भव है कि जो इब्राहीम के दीन को नहीं मानते वे सब मूर्ख हैं? इब्राहीम को ही खुदा ने पसन्द किया इसका क्या कारण है? यदि धर्मात्मा होने के कारण से किया तो धर्मात्मा और भी बहुत हो सकते हैं? यदि बिना धर्मात्मा होने के ही पसन्द किया तो अन्याय हुआ। हाँ! **यह तो ठीक है कि जो धर्मात्मा है वही ईश्वर को प्रिय होता है; अधर्मी नहीं ॥ ३० ॥**[५]

---

१२. **मुद्रणप्रति में अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—द्विप्र० में यहां आयतसंख्या ११७ अशुद्ध है। मूलह०, मुद्रणह०, भद में १२६ अशुद्ध है।

१. **शैलीविरुद्ध अपप्रयोग**—मूलह०, मूलप्रति सं० **''जब कुरान बनाई थी''** अपपाठ है। महर्षि की भाषाशैली में दर्जनों स्थानों पर इसका पुंल्लिंग में प्रयोग है। भाषात्मक एकरूपता और व्यवस्था की दृष्टि से एक ही प्रकार का प्रयोग अपेक्षित है।

मुद्रणकाल में पाठ निष्कासन अनुचित—दोनों हस्तलेखों में यहां अनवधानता से लिखा यह वाक्यांश मिलता है—**''जब बायबिल बनाई थी''**। इस असंगत वाक्यांश को देखकर मुद्रणप्रति में इसको काट दिया जबकि चाहिये था इसको प्रसंग की दृष्टि से शुद्ध करना। यहां कुरान का प्रसंग है, अत: 'कुरान' नाम आना चाहिये था। बिल्कुल काट देने से पाठसंगति भी नहीं बनती। **'तब'** प्रयोग से पूर्व **'जब'** प्रयोग अपेक्षित होता है। अत: यहां उक्त संशोधित पाठ ग्रहण करना परम आवश्यक है। द्विप्र० तथा सभी द्वि०सं० में यह त्रुटित और संगतिरहित पाठ है। उदयपुर सं० ने भी त्रुटित और संगतिरहित पाठ को ग्रहण किया है।

२. **मुद्रणप्रति में परिवर्तन**—मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में यह अपवाक्य मिलता है—**''पहिले ईश्वर को पवित्र स्थान बनाने का स्मरण न हुआ होगा''**। समीक्षा में कुरान में परिवर्तित 'काबा' नामक नये पवित्र स्थान के विषय में आलोचना है, पहले या दूसरे ईश्वरों को आधार मानकर नहीं। पहले यहूदी, ईसाई और मुसलमान इजराइल स्थित **''बैतुल-मकदिस''** नामक धार्मिक स्थान की ओर मुंह करके नमाज़ पढ़ते थे। हज० मुहम्मद ने उसको बदलकर मक्का के **'काबा'** नामक धार्मिक स्थान की ओर मुख करके नमाज़ पढ़ने का आदेश दिया है। इस परिवर्तन पर यहां प्रश्न उठाया है कि जब कुरान में दिशा बदली तब ख़ुदा यह भूल गया था क्या कि पहली पुस्तकों में मैंने पहले किसी दूसरी मस्जिद को नमाज़ पढ़ने का स्थान घोषित कर रखा है? इस अनुच्छेद में **''पहले ईश्वर को''** के स्थान पर **''ईश्वर को पहला''** पाठ संशोधन अपेक्षित है। नमाज पढ़ने की दिशा परिवर्तन करने की यह घटना शाबान सन् २ हिजरी की घटना है।

३. **अपपाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में **''आख़रत''** अपपाठ है। **आख़िरत** अर्थात् अन्तिम न्यायदिन में विश्वास करना।

४. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—द्विप्र० में यहां आयतसंख्या १२२ अशुद्ध है। मूलह०, मुद्रणह०, मूलसं० में शुद्ध है।

५. **विराम-अभाव के कारण आयत का भ्रष्ट अनुवाद और मुंशी समर्थदान द्वारा समीक्षा का संशोधन**—मूलह०, मूलप्रति-संस्करण और मुद्रणह० में आयतखण्ड संख्या ३० का अनुवाद भ्रष्ट है। अशुद्ध अनुवाद के कारण समीक्षा भी भ्रष्ट हो गई थी। इसी कारण छपते समय मुद्रणप्रति व मुंशी समर्थदान जी ने समीक्षा का संशोधन किया है। किन्तु उस समय भी भूलवश आयत का अनुवाद संशोधित करना रह गया है। आयत में **''मूर्ख को खुदा द्वारा पसन्द किया जाना''** अर्थ नहीं है। विरामचिह्न न होने से दो भिन्न कथन आपस में जुड़ गये और पाठ भ्रष्ट हो गया। इन कारणों से इस सं० में संशोधित समीक्षा ग्रहण की गई है और आयत का पाठ भी कुरान के अनुसार शुद्ध उद्धृत किया है। मूलह०, मुद्रणह०, मूलप्रति सं० का आयत अनुवाद और अशुद्ध समीक्षा इस प्रकार है—

''वो कौन मनुष्य है जो इब्राहीम के दीन से फिर जावे, परन्तु जिसने अपनी जान को मूर्ख बनाया और निश्चय हमने दुनिया में उसी को पसन्द किया। और निश्चय आख़िरत में वो ही नेक है॥'' मं० १। सि० १। सू० २। आ० १३०॥

समीक्षक—क्या मुसलमान लोग इब्राहीम के मजहब से बहुत नहीं फिर गये हैं? क्या यह खुदा की बात है कि जो उसको मूर्ख

३१. निश्चय हम तेरे मुख को आसमान में फिरता देखते हैं, अवश्य हम तुझे उस क़िब्ले[1] को फेरेंगे कि पसन्द करे उसको, बस, अपना मुख मस्जिदुलहराम[2] की ओर फेर, जहां कहीं तुम हो अपना मुख उसकी ओर फेर लो। १४४। मं० १। सि० २। सू० २। आ० १४४॥[3]

समीक्षक—क्या यह छोटी बुतपरस्ती[4] है? नहीं, किन्तु बड़ी है।

प्रश्न—हम मुसलमान लोग बुतपरस्त नहीं हैं किन्तु बुतशिकन अर्थात् बुतों=मूर्तियों[5] के तोड़नेहारे हैं, क्योंकि हम '**काबा**'[6] को ख़ुदा नहीं समझते।

उत्तर—जिनको तुम बुतपरस्त समझते हो वे भी उस-उस मूर्त्ति को ईश्वर नहीं समझते, किन्तु उसके सामने परमेश्वर की भक्ति करते हैं। **यदि बुतों के तोड़नेहारे हो तो उस मस्जिद 'काबा' के बड़े बुत को क्यों न तोड़ा?**

प्रश्न—वाह जी! हमारा तो '**काबा**' की ओर मुख फेरने का '**क़ुरान**' में हुक्म है और इनको वेद में [मूर्ति के सामने भक्ति करने का][7] हुक्म नहीं है, फिर वे बुतपरस्त क्यों नहीं? और हम क्यों? क्योंकि हमको ख़ुदा का हुक्म बजाना आवश्यक[8] है।

प्रसन्न होवें, विद्वान् नहीं? यह बात अविद्वत्ता की है अर्थात् जब इस पुस्तक के बनाने वाले ने समझा कि मैं अविद्वान् हूं और विद्वान् लोग मेरी बात को काटेंगे, तो मैं उत्तर न दे सकूंगा, इसलिये धर्मविषय में मूर्ख के समान होकर जो कुछ अण्ड-बण्ड कहै, सब कुछ मान लेना चाहिये। जो ऐसा न करता तो लोग उसके मजहब में न आते, आके न स्थिर रहते और न उसका प्रयोजन सिद्ध होता। हां, यह तो ठीक है कि जो धर्मात्मा है, वही ईश्वर को प्रिय होता है, अधर्मी नहीं॥ ३०॥''

भ्रष्ट पाठ की परम्परा—स्वामी जगदीश्वरानन्द सं० को छोड़कर वेस, जग आदि सभी सं० में आयत का भ्रष्ट अनुवाद है। **पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक** को यह पाठ भ्रष्ट प्रतीत हुआ। उन्होंने इसको शुद्ध करना चाहा किन्तु अन्यथा अशुद्ध कर बैठे। प्रश्न वाक्य बनाकर उन्होंने यह पाठ बनाया है—''वो कौन मनुष्य है जो इबराहीम के दीन से फिर जावे, परन्तु जिसने अपनी जान को मूर्ख बनाया?'' पं० जी ने आयत का ठीक भाव नहीं समझा अत: 'कौन' पद देखकर इसको प्रश्नवाक्य बना दिया। इसका अर्थ यह है कि 'कोई मनुष्य ऐसा नहीं है जो इब्राहीम के दीन से फिर जाये, सिवाय मूर्ख व्यक्ति के।' उदयपुर सं० में भी भ्रष्टपाठ है।

१. **क़िब्ला**—मुसलमान जिसकी ओर मुंह करके नमाज़ पढ़ते हैं उस दिशा को '**क़िब्ला**' कहा जाता है। कुरान के समय से वह '**मक्का**' के '**काबा**' नामक काला पत्थर '**हजरे अस्वद**' की ओर की दिशा है।

क़िब्ला को फेरना—इस्लाम के आरम्भिक इतिहास की यह एक महत्त्वपूर्ण घटना है। अब तक मुसलमान लोग '**बैतुल मक़दिस**' (मस्जिदे अक्सा) जो यरुसलेम (इजराइल) में है, उस ओर मुंह करके नमाज़ पढ़ा करते थे। यहूदी भी इसकी ओर मुंह करके प्रार्थना करते थे, क्योंकि यह यहूदियों का पवित्रतम स्थान था। शाबान (आठवां महीना) सन् २ हिजरी की घटना है कि हजरत मुहम्मद ने नमाज़ पढ़ते-पढ़ते अचानक अपना मुख उत्तर दिशा की ओर स्थित 'बैतुल मक़दिस' से फेरकर दक्षिण में काबा (मक्का) की ओर कर लिया। इसको उन्होंने अल्लाह का आदेश बताया। तबसे मुसलमानों का 'क़िबला' काबा हो गया। इस घटना से जहाँ मुसलमानों ने स्वयं को यहूदियों से पूर्णत: अलग कर लिया वहीं अपनी प्रार्थना की दिशा भी अलग और स्वतन्त्र घोषित करके इस्लाम की समान्तर धार्मिक सत्ता स्थापित कर ली। तबसे यह पूर्णत: एक पृथक् महजब बन गया (द्र० आयत संख्या २९ भी)।

२. **मस्जिदुलहराम**—यह मक्का की वह मस्जिद है जिसके बीच '**काबा**' (चौकोर काला पत्थर) स्थित है। मुसलमान लोग इस पत्थर की परिक्रमा हज के समय में करते हैं। इसे '**हजरे अस्वद**' कहा जाता है। यह विश्व में मुसलमानों की सबसे प्रतिष्ठित मस्जिद मानी जाती है।

३. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—द्विप्र० में यहां आयतसंख्या १३५ अशुद्ध है। मूलह०, मुद्रणह०, भद में १४२, १४७ अशुद्ध हैं।

४. **अपवर्तनी, अपपरिवर्तन**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में इस समीक्षा-पाठ में क्रमश: ये त्रुटियां हैं—लिपिकरों-शोधकों की अयोग्यता देखिए कि सम्पूर्ण समीक्षा में एक ही शब्द की वर्तनी को कभी कुछ लिख दिया, कभी कुछ। समीक्षा में ग्यारह बार '**बुत्परस्त**' और एक '**बुत्शिकन**' शब्द आया है। तीन बार '**बुत**' शब्द आया है। मूलप्रति सं० में नौ बार '**बुत्परस्त**' अशुद्ध वर्तनी और एक बार '**बुतपरस्त**' शुद्ध वर्तनी लिखी है। दो बार '**बुत**' शुद्ध और एक बार '**बुत्**' अशुद्ध वर्तनी लिखी है। द्विप्र०, द्वि०

उत्तर—जैसे तुम्हारे लिये '**क़ुरान**' में हुक्म है वैसे इनके लिये पुराण में आज्ञा है। जैसे तुम '**क़ुरान**' को ख़ुदा का कलाम समझते हो वैसे पुराणी भी पुराणों को ईश्वर के अवतार व्यास जी[९] का वचन समझते हैं। तुममें और इनमें बुतपरस्ती का कुछ भिन्न भाव नहीं है, प्रत्युत तुम बड़े बुतपरस्त [हो] और ये छोटे हैं, क्योंकि जब तक कोई मनुष्य अपने घर में से प्रविष्ट हुई बिल्ली को निकालने लगे, तब तक उसके घर में ऊंट प्रविष्ट हो जाय, वैसे ही मुहम्मद साहब ने छोटे बुत को मुसलमानों के मन[१०] से निकाला, परन्तु बड़ा बुत जो कि पहाड़ के सदृश मक्के की मस्जिद है, वह सब मुसलमानों के मन में प्रविष्ट करा दी; क्या यह छोटी बुतपरस्ती है?

हां, जो हम लोग वैदिक हैं वैसे ही तुम भी वैदिक हो जाओ, तो बुतपरस्ती आदि बुराइयों से बच सको, अन्यथा नहीं। तुमको, जब तक अपनी बड़ी बुतपरस्ती को न निकाल दो, तब तक, दूसरे छोटे बुतपरस्तों के खण्डन से लज्जित होके, निवृत्त रहना चाहिये और अपने को बुतपरस्ती से पृथक् करके पवित्र करना चाहिये॥ ३१ ॥

३२. जो लोग अल्लाह के मार्ग में मारे जाते हैं उनके लिये यह मत कहो कि 'ये मृतक हैं', किन्तु वे जीवित हैं.....। १४५। मं० १। सि० २। सू० २। आ० १५४॥[१]

समीक्षक—भला, ईश्वर के मार्ग में मरने-मारने की क्या आवश्यकता है? यह क्यों नहीं कहते हो कि यह बात अपना मतलब[२] सिद्ध करने के लिये है कि यह लोभ देंगे तो लोग खूब लड़ेंगे, अपना विजय होगा, मरने से न डरेंगे, लूट-मार करने[३] से ऐश्वर्य प्राप्त होगा, पश्चात् विषयानन्द करेंगे, इत्यादि स्वप्रयोजन के लिये यह विपरीत व्यवहार किया है॥ ३२ ॥

सं० में एक-आध जो शुद्ध शब्द था उसको भी अशुद्ध वर्तनी में बदल दिया अर्थात् सब वर्तनियां अशुद्ध बना दीं। उदयपुर सं० में सारी अपवर्तनियां यथावत् हैं, केवल प्रथम ''**बुत**'' वर्तनी शुद्ध है। यही दु:स्थिति अन्य संस्करणों की है।

५-८,१०. **मुद्रणलिपिकर कृत अन्य अशुद्धियां**—दोनों संस्करणों में '**क़ाबा**' के स्थान पर तीन जगह पर '**किबले**' अशुद्ध पाठ है। कोष्ठकान्तर्गत पाठ दोनों संस्करणों में आवश्यक है। उसके बिना अर्थ स्पष्ट नहीं होगा। ''**अवश्य**'' के स्थान पर '**आवश्यक**' विशेषण पद शुद्ध है। मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में ''**बुतों के**'' पाठ के स्थान पर दो बार ''**मूर्त्तों को**'' अशुद्ध परिवर्तन है। यहां ''**मूर्त्तियों को**'' होना चाहिए। इसी प्रकार ''**मन से**'' पाठ को मुद्रणह०, द्विप्र० व द्वि०सं० में ''**मत से**'' बदलकर भ्रष्ट पाठ कर दिया। मस्जिद का विचार मन में प्रविष्ट होता है, मत में नहीं। मुद्रणलिपिकरकृत ''**मत**'' प्रयोग इस कारण भी शुद्ध नहीं है, क्योंकि ''**मत**'' के साथ पूर्व प्रयुक्त ''**सब मुसलमानों या मुसलमानों**'' प्रयोग संगत नहीं बनता। यह प्रयोग 'मन' के साथ ही संगत है। अत: मुद्रणलिपिकर कृत परिवर्तन अशुद्ध है। **संशोधन-पुष्टि**—आयतखण्ड संख्या ६३ की समीक्षा में भी यही वर्णन है। वहां भी यही वाक्य है—''**मस्जिद हृदयरूपी घर में प्रविष्ट हो गई।**'' मुद्रणह० के संशोधक ने न तो महर्षिप्रोक्त पाठ की गम्भीरता पर ध्यान दिया और न पूर्वापर पाठ से तालमेल का ही ध्यान रखा। सभी द्वि०सं० और उदयपुर सं० में अशुद्ध पाठ है।

९. **अपप्रयोग**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**ख़ुदा के अवतार व्यास जी**'' अनुपयुक्त प्रयोग है, खुदा का अवतार होता ही नहीं। यहां ''**ईश्वर अथवा ब्रह्मा के अवतार व्यास जी**'' प्रयोग उपयुक्त तथा परम्परा के अनुकूल है। यही सही प्रयोग देखिए आयत ६३ की समीक्षा में—''**व्यास जी ईश्वरावतार**''।

१. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—द्विप्र० में यहा आयत संख्या १४४ अशुद्ध है। मूलह०, मुद्रणह०, भद में १५० अशुद्ध है।

२. **अपप्रयोग**—सभी संस्करणों में ''**अपने मतलब**'' के स्थान पर ''**अपना मतलब**'' अभीष्ट है।

३. **मुद्रणलिपिकर द्वारा अपपरिवर्तन**—मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में इस वाक्य में '**मरने**' के स्थान पर '**मारने**' और '**करने**' के स्थान पर '**कराने**' परिवर्तन किया है, जो अशुद्ध है। आयत के पाठ में भी मुसलमानों के मरने का कथन है तथा समीक्षा में ''**खूब लड़ने**'' का कथन है। युद्ध में मारने से तो कभी कोई डरता ही नहीं है। मूलप्रति का महर्षिप्रोक्त पाठ ठीक है। उदयपुर सं० में ''**मारने से न डरेंगे**'' अपपाठ है।

३३. इन* लोगों पर इनके मालिक की ओर से दया और दरुद हैं और ये ही मार्ग पानेवाले हैं। १५७।[१] मं० १। सि० २। सू० २। आ० १५७॥[२]

समीक्षक—अब देखिये, यह काम भी एक प्रकार की बुतपरस्ती[३] है। भला, मुर्दों पर आयतें पढ़ने से क्या होता है? क्योंकि उसका जीवात्मा तो पहले ही चला गया, पुनः पाठ कौन सुनेगा? इसलिये यह व्यर्थ कर्म है; इत्यादि से यह पुस्तक ईश्वरकृत वा विद्वत्कृत भी नहीं है॥ ३३ ॥[४]

३४. ....जो लोग छिपाते हैं उसको जो कि हमने प्रमाणों और शिक्षा से उतारा। उसके बीच में जो कुछ है अल्लाह की और धिक् देनेवालों की धिक्कार है....। १५९। परन्तु जिन्होंने तौबा[५] और भलाई करी, उनके ऊपर फिर दया करता हूं और करूंगा....। १६०। जो लोग काफ़िर हुए, और काफ़िर ही रहे, फिर मर गये,[६] उन पर खुदा, फरिश्तों और सब आदमियों की[७] धिक्कार है। १६१। वे[८] सदैव उसी में रहेंगे। उनका[९] पाप हलका न किया जायगा और न वे ढील दिये जायेंगे। १६२। तुम्हारा एक ही मालिक है और कोई नहीं। वह क्षमा करनेवाला दयालु है। १६३।[१०]

मं० १। सि० २। आ० १५९-१६३॥[११]

समीक्षक—यह बात जो कि पहले पैगम्बरों के सामने, जैसा कि इब्राहीम साहब के सामने खतनः आदि के नियम बांधे थे[१२] उनको जो नहीं करते, और शहर मक्के में 'सफ़ा' और 'मुरब्बः' दो पहाड़ हैं, अरब के लोग इब्राहीम के समय से सदैव हज करते रहे, परन्तु मुसलमानों ने किसी कारण से छोड़ दी थी, उस पर यह आयत उतरी, उन्हीं को धिक्कार दिया जाता है और जो मुसलमान तौबा करले तो माफ हो जाय, परन्तु जो काफ़िर अर्थात् मुसलमान के मज़हब में नहीं हैं, उन पर ख़ुदा बड़ा खार खाता है। भला, ऐसी बातें कभी ख़ुदा की हो सकती हैं? और जो पक्षपाती है, वह ईश्वर कभी नहीं हो सकता। क्या मुसलमानों पर क्षमा करनेवाला दयालु है, अन्य पर दयाकर्त्ता 'दयाहीन' कहा जावे?

* यह वाक्य आशीर्वाद में नहीं समझा जाता है। इसका प्रचार मुसलमानों में ही है। कब्रवासियों पर पढ़ते हैं **दरुद**[१३] और **फ़ातिहः**[१४]॥

१,४. **मुद्रणकाल में आयत पाठ और समीक्षा का निष्कासन अनुचित**—द्विप्र० से मुद्रणकाल में और फिर द्वि० सं० से यह आयतखण्ड संख्या ३३ और इसकी समीक्षा अकारण निकाल दी गई है। मुद्रणहस्त० में लिखी हुई है, जो काटी गई हैं। मुंशी समर्थदान जी ने इनको काटा है। इसी कारण द्वि०सं० पर आधारित सभी सं० में यह आयत व समीक्षा नहीं मिलती।

२. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मुद्रणह०, मूलह०, मूलप्रति सं० में आयत संख्या १५३ अशुद्ध है। वर्तमान कुरानों में १५७ है।

३. **अपवर्तनी**—मूलह०, मूलप्रति सं० में '**बुत्परस्ती**' अपवर्तनी है।

५. **तौबा (तौबः)**=किसी बुरे काम को न करने का संकल्प, पश्चात्ताप। मूलप्रति सं० में ''**तोबाः**'' अशुद्ध वर्तनी है। ''**तौबः**'' या '**तौबा**' प्रयोग शुद्ध हैं। विस्तृत टि० द्र० पृ० ९९५ पर संख्या ७।

६-९. **अप-अनुवाद**—मूलप्रति सं० में ही प्राप्त इस आयत में यह अप-अनुवाद है—''**जो लोग काफ़िर हुए, फिर मर गये और काफ़िर ही रहे**''। उपर्युक्त वाक्यरचना ठीक है। इसी प्रकार ''**आदमियों पर धिक्कार है**'' अशुद्ध है, '**आदमियों की**' पाठ ठीक है। ''**वे**'' पद त्रुटित है। ''**उनसे पाप**'' के स्थान पर ''**उनका पाप**'' सही अनुवाद है।

१०,१५. **मुद्रणकाल में आयत और समीक्षा पाठ का निष्कासन अनुचित**—द्विप्र० और द्वि०सं० में यह आयतखण्ड ३४ और इसकी समीक्षा निकाल दी हैं। निकालने का कारण अज्ञात है। मुद्रणप्रति में है।

११. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—इस आयतखण्ड में, मूलह०, मूलप्रति सं० में तीन आयतें प्रदर्शित की गई हैं जिनकी उद्धरण संख्या १५५-१५७ उल्लिखित है, जो अशुद्ध है। यह संख्या १५९-१६३ होनी चाहिए। मुद्रणह० में १५५-१५६ दो संख्याएं अशुद्ध हैं।

१२. **खतनः आदि के नियम**—इब्राहीम द्वारा बांधे गये नियम के विवरण के लिए द्रष्टव्य है बाइबल, उत्पत्ति पर्व १७, आ० ९-१४

इसी से न यह ईश्वरकृत पुस्तक और न इसमें कहा हुआ ईश्वर हो सकता है॥ ३४॥[१५]

३५. ....और यह कि अल्लाह कठोर दुःख देने वाला है। १६५। ....शैतान का अनुसरण मत करो, निश्चय वो तुम्हारा प्रत्यक्ष शत्रु है। १६८। उसके विना और कोई नहीं जो बुराई और निर्लज्जता की आज्ञा दे और यह कि तुम कहो अल्लाह पर जो नहीं जानते। १६९।

मं० १ सि० २। सू० २। आ० १६५। १६८। १६९॥[१]

समीक्षक—क्या कठोर दुःख देनेवाला ख़ुदा सब पापियों-पुण्यात्माओं पर दयालु है[२] अथवा मुसलमानों पर दयालु और अन्य पर दयाहीन है? जो ऐसा है, तो वह ईश्वर ही नहीं हो सकता। और पक्षपाती नहीं है तो जो मनुष्य जहां कहीं धर्म करेगा उस पर ईश्वर दयालु और जो अधर्म करेगा उस पर दण्डदाता होगा। तो फिर बीच में मुहम्मद साहब और '**क़ुरान**' को मानना आवश्यक न रहा। और जो सबको बुराई करानेवाला मनुष्यमात्र का शत्रु शैतान है, उसको खुदा ने उत्पन्न ही क्यों किया? क्या वह भविष्यत् की बात नहीं जानता था? जो कहो कि जानता था, परन्तु परीक्षा के लिये बनाया, तो भी नहीं बन सकता, क्योंकि परीक्षा करना अल्पज्ञ का काम है। सर्वज्ञ तो सब जीवों के अच्छे-बुरे कर्मों को सदा से ठीक-ठीक जानता है। और शैतान सबको बहकाता है, तो शैतान को किसने बहकाया? जो कहो कि शैतान आपसे-आप बहका,[३] तो अन्य भी आपसे-आप बहक सकते हैं,[४] बीच में शैतान का क्या काम? और जो ख़ुदा ने ही शैतान को बहकाया, तो ख़ुदा शैतान का भी शैतान ठहरेगा। ऐसी बात ईश्वर की नहीं हो सकती। और जो कोई बहकता[५] है वह कुसंग तथा अविद्या से भ्रमित होता है॥ ३५॥

३६. तुम पर मुर्दार, लोहू और गोश्त सुअर का हराम है और अल्लाह के विना जिस पर कुछ पुकारा जावे...। १७३।[६] मं० १। सि० २। सू० २। आ० १७३॥[७]

समीक्षक—यहां विचारना चाहिये कि मुर्दा, चाहे आपसे-आप मरे वा किसी के मारने से दोनों

तथा सत्यार्थप्रकाश १३ समुल्लास में आयतखण्ड संख्या १८। **१३. दरुद**=आशीर्वाद।

१४. फातिहः (फातिहा)=मुर्दे वा कब्र पर की जानेवाली प्रार्थना और मुर्दे या कब्र का चढ़ावा, भेंट आदि।

१. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—द्विप्र० में यहां आयत संख्याएं १५१, १५४, १५५ अशुद्ध हैं। मूलह०, मुद्रणह०, भद में १५९, १६१, १६५ संख्याएं अशुद्ध हैं।

२. **स्थानभ्रष्ट पाठ**—मूलह०, मूलप्रति में वाक्य का भ्रष्ट पाठ इस प्रकार है—"**क्या कठोर दुःख देने वाला दयालु खुदा सब पापियों-पुण्यात्माओं के ऊपर है**"। मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में कुछ इस प्रकार है—"**क्या कठोर दुःख देने वाला दयालु खुदा सब पापियों पुण्यात्माओं पर है**"। क्या कठोर दुःख देनेवाला '**दयालु**' भी होता है? यहां "**दयालु**" अस्थान में होने से पाठ भ्रष्ट हो गया है। सभी सं० में यही भ्रष्ट पाठ है। उपर्युक्त संशोधित पाठ ग्राह्य है। स्वामी जगदीश्वरानन्द सं० में संशोधित है।

३. **मुद्रणलिपिकर द्वारा अपसंशोधन**—मुद्रणह०, द्विप्र० में तथा द्वि०सं० में "**बहकाता है**" अपपरिवर्तन है। वाक्य में पूर्वप्रयुक्त भूतकाल की "**बहकाया**" क्रिया के सम्बन्ध से "**बहका**" यह मूलप्रति का पाठ ठीक है।

४. **उचित संशोधन**—मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में "**बहक सकते हैं**" संशोधन सही है। मूलह०, मूलप्रति सं० का पाठ "**बहकेंगे**" निश्चयार्थक है, यहां संभावनार्थक प्रयोग अपेक्षित है।

५. **मुद्रणलिपिकर द्वारा अपपरिवर्तन**—मूलह०, मूलप्रति सं० के सही पाठ "**जो कोई बहकता है....भ्रमित होता है**" को द्वि० सं० में "**जो कोई बहकाता है**" पाठ बनाकर अशुद्ध वाक्य बना दिया है। उपर्युक्त कथन में बहकाने वाला खुदा है उसको कुसंग कैसे होगा? यह व्यक्तियों के लिए कहा गया है। बहकनेवाले व्यक्ति ही होते हैं।

६. **अन्यत्र वर्णन**—हराम ठहराये पशुओं का पुनः कथन आयतखण्ड संख्या ७० में भी द्रष्टव्य है।

७. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मुद्रणह०, द्विप्र० में यहां आयतसंख्या १५९ अशुद्ध है। मूलह०, मुद्रणह०, भद में १६५ अशुद्ध है।

बराबर हैं। हां, इनमें कुछ भेद भी है तथापि मृतकपन में कुछ भेद नहीं। जो लोहू हराम है, तो मरे पीछे लोहू शरीर में ही जमकर मांस हो जाता है, फिर मांस खाना मुसलमानों के लिये सर्वथा हराम रहा।[१] और जब एक सुअर का निषेध किया, तो क्या मनुष्य का मांस खाना उचित है?

क्या यह बात अच्छी हो सकती है कि परमेश्वर के नाम पर पशु[२] आदि को अत्यन्त दुःख देके प्राणहत्या करनी? इससे ईश्वर का नाम कलंकित हो जाता है। **हाय![३] ईश्वर ने विना पूर्वजन्म के अपराध के[४] मुसलमानों के हाथ से दारुण दुःख क्यों दिलाया? क्या वह उन पर दयालु नहीं हैं? उनको पुत्रवत् नहीं मानता? जिस वस्तु से अधिक उपकार होवे, उन गाय आदि के मारने का निषेध न करना, जानो हत्या कराकर खुदा जगत् का हानिकारक है और हिंसारूप पाप से कलंकित भी हो जाता है। ऐसी बातें खुदा और खुदा के पुस्तक की कभी नहीं हो सकतीं॥ ३६ ॥**

३७. रोज़े[५] की रात तुम्हारे लिये हलाल की गई कि मदनोत्सव करना अपनी बीबियों से। वे तुम्हारे वास्ते परदा हैं और तुम उनके लिये परदा हो। अल्लाह ने जाना कि तुम चोरी करते हो अर्थात् व्यभिचार, बस फिर अल्लाह ने क्षमा किया तुमको। बस, उनसे मिलो और ढूंढो जो अल्लाह ने तुम्हारे लिये लिख दिया है अर्थात् सन्तान; खाओ-पीयो, यहां तक कि प्रकट हो तुम्हारे लिये काले

---

१. **मुद्रणकाल में पाठ-निष्कासन अनुचित**—द्विप्र०, द्वि०सं० से ''**जो लोहू.....हराम रहा**'' पाठ निकाल दिया है। इसको मुंशी समर्थदान जी ने मुद्रणकाल में निकाला है। शायद यह सोचकर निकाला गया हो कि लोहू जमकर मांस नहीं होता। यहां महर्षि का यह अभिप्राय है कि कोई कितना साफ़ करे किन्तु फिर भी जब पशु मरता है तो मांसान्तर्गत नसों में रक्त प्रवाह रुककर कुछ-न-कुछ वहीं रह जाता है और सूख या जम जाता है। या यों कहिए कि नसों में लगा रह जाता है। इस प्रकार क्योंकि उनके लिए लोहू हराम है तो लोहू युक्त मांस खाना भी मुसलमानों के लिए हराम सिद्ध होता है। इस प्रकार एक विशेष युक्ति होने से इस पाठ को रखना आवश्यक है।

२. **मुद्रणलिपिकर द्वारा भ्रष्ट परिवर्तन**—यहां मूलह०, मूलप्रति सं० में ''**पशु**'' अत्यन्त उचित और प्रासंगिक पाठ है, क्योंकि पूर्वापर में पशुओं के क्रूर वध करने तथा मांस खाने का प्रसंग है। मुद्रणलिपिकर ने मुद्रणप्रति बनाते समय इसके स्थान पर ''**शत्रु**'' पाठ कर दिया है, जो अत्यन्त भ्रष्ट तथा अप्रासंगिक है। यही द्विप्र० में छपा है। '**शत्रु**' का यहां कोई प्रसंग ही नहीं क्योंकि शत्रु को तो सभी मारते हैं। यही अशुद्ध पाठ **द्वि०सं०, स्वामी वेदानन्द जी, सिद्धान्ती जी, पं० भगवद्दत्त जी, पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक** आदि के सस्करणों में है। उदयपुर सं० के सम्पादक कथित दश विद्वानों के समक्ष शुद्ध और अशुद्ध दोनों पाठ विद्यमान थे। दुःख की बात यह है कि उन्होंने अशुद्ध, अप्रासंगिक पाठ को ग्रहण किया है। शायद, उन्होंने आयत के कथ्य और प्रसंग पर गम्भीरता से विचार नहीं किया।

३. **श्रवणभ्रान्ति से भ्रष्ट पाठ**—देखिए, मूललिपिकर की श्रवणभ्रान्ति से यहां क्या से क्या पाठ हो गया! पशु हत्या के दुःख को व्यक्त करने के लिए '**हाय**' पद बोला होगा, लिपिकर को '**हाँ**' सुना, वही लिख दिया। '**हाँ**' की यहां कोई संगति और अर्थ नहीं है। यह अशुद्धि दोनों हस्त० और तीनों संस्करणों में है। उदयपुर सं० में भी यही असंगत प्रयोग है।

४. **इस्लामी पुनर्जन्म के विषय में विशेष कथन**—''**यहां बिना पूर्वजन्म के अपराध के**'' कथन मुसलमानों की मान्यता की दृष्टि से है, क्योंकि वे पूर्वजन्म को नहीं मानते। जब पूर्वजन्म था ही नहीं, तो उन्होंने कोई पाप नहीं किया। फिर मुसलमान उन पशुओं की हत्या का क्रूर कार्य क्यों करते हैं? यह प्रश्न ग्रन्थकार ने उठाया है।

५,७. **रोजा और चान्द्रायण व्रत**=मुसलमानों में एक मास तक किया जाने वाला 'रोजा' व्रत भारतीय चान्द्रायण व्रत का ही एक परिवर्तित रूप है। चान्द्रायण व्रत भी एक मास तक चलता है और रोजा भी। अन्तर यह है कि चान्द्रायण व्रत में व्यक्ति पहले पन्द्रह दिनों तक भोजन में एक-एक ग्रास कम करता जाता है बाद के पन्द्रह दिनों तक एक-एक ग्रास बढ़ाकर भोजन को पूर्ण करता है। चान्द्रायण में दिन में एक बार खाया जाता है। 'रोजा' में एक मास तक दिन में न खाकर रात्रि में भोजन करते हैं। इस मास को '**रमजान**' का महीना कहा जाता है। चान्द्रायण व्रत की विधि मनुस्मृति अ० ११, श्लोक २१६-२१७ में वर्णित है।

व्रत में संयम रखा जाता है, यहाँ मुसलमानों के अल्लाह के आदेशों की उदारता देखिये, जब देखा कि रोज़े के व्रत में मुसलमान पुरुष बीबियों से समागम किये बिना नहीं रहते तो उनको स्त्री-सम्बन्ध की छूट दे डाली। धर्मादेश शीघ्र ही पलट गया!

तागे से सुफेद तागा वा रात से जब दिन निकले....।१८७। मं० १। सि० २। सू० २। आ० १८७॥[६]

समीक्षक—यहाँ यह निश्चित होता है कि जब मुसलमानों का मत चला वा उसके पहिले किसी ने किसी पौराणिक से पूछा होगा कि चान्द्रायण व्रत[७] जो एक महीने-भर का होता है उसका विधि क्या है?[१] वह शास्त्रविधि जो कि[२] चन्द्र की कला घटने-बढ़ने के अनुसार ग्रासों को घटाना-बढ़ाना, और मध्याह्न[३] में खाना लिखा है, उसको न जानकर कहा होगा कि चन्द्रमा का दर्शन करके खाना। उसको इन मुसलमान लोगों ने इस प्रकार का कर लिया। परन्तु व्रत में स्त्री-समागम का त्याग है, वह एक बात खुदा ने बढ़ाकर कह दी कि तुम स्त्रियों का भी समागम भले ही किया करो, और रात में चाहे अनेक वार खाओ। भला, यह व्रत क्या हुआ? दिन में न खाया, रात को खाते रहे। परन्तु **यह सृष्टिक्रम से विपरीत है कि दिन में न खाना और रात में खाना॥ ३७॥**

३८. अल्लाह के मार्ग में लड़ो उनसे जो तुमसे लड़ते हैं....।१९०। मार डालो तुम उनको जहां पाओ, क़त्ल[४] से कुफ्र[५] बुरा है....।१९१। यहां तक उनसे लड़ो कि कुफ्र न रहे और होवे दीन अल्लाह का।१९३। ....उन्होंने जितनी ज़ियादती करी. उतनी ही उनके साथ करो....।१९४।

मं० १। सि० २। सू० २। आ० १९०।१९१।१९३।१९४॥[६]

समीक्षक—जो **'क़ुरान'** में ऐसी बातें न होती, तो मुसलमान लोग इतना बड़ा अपराध जो कि अन्य मत-वालों पर किया है, न करते; और विना अपराधियों को मारना उन पर बड़ा पाप है। **जो मुसलमान के मत का ग्रहण न करे, उसको कुफ्र कहते हैं अर्थात् कुफ्र से क़त्ल को मुसलमान लोग अच्छा मानते हैं। अर्थात् जो हमारे दीन को न मानेगा उसको हम क़त्ल करेंगे, सो करते ही आये।** मज़हब पर लड़ते-लड़ते आप ही राज्य आदि से नष्ट हो गये।

और उनका मन अन्य मत-वालों पर अति कठोर रहता है। **क्या चोरी का बदला चोरी है कि जितना हमारा चोरी आदि अपराध चोर करें, क्या हम भी [उतनी ही][७] चोरी करें? यह सर्वथा अन्याय की बात है। क्या कोई अज्ञानी हमको गालियां दे, क्या हम भी उसको गालियां[८] देवें?** यह बात न ईश्वर, न ईश्वर के भक्त विद्वान् की और न ईश्वरोक्त पुस्तक की हो सकती है। यह तो केवल स्वार्थी, अज्ञानी मनुष्य की है॥ ३८॥

---

६. **अशुद्ध उद्धरणसख्या**—द्विप्र० में यहां आयतसंख्या १७२ अशुद्ध है। मूलह०, मुद्रणह०, भद में १७८ संख्या अशुद्ध है।

१. **त्रुटित पद**—दोनों हस्त० और तीनों संस्करणों में **'है'** क्रिया त्रुटित है।

२-३. **अपपाठ**—(४) दोनों हस्त०, द्विप्र०, द्वि०सं० में यहां **''मध्याह्न में चन्द्र की कला घटने.....''** अपपाठ है। उसको हटाना उचित है। युमी, भद, वेस, जग, उदयपुर सं० में अपपाठ है। (५) दोनों सं० में मध्याह्न के बाद **''दिन''** पद का प्रयोग व्यर्थ और पुनरुक्ति है। 'मध्याह्न' पद में दिन का पर्याय 'अह्न' आ ही गया है।

४. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों संस्करणों में, आयत और समीक्षा में तीन बार **''क़तल''** अपवर्तनी है।

५. **कुफ्र**=अल्लाह, पैगम्बर और कुरान की शिक्षाओं को न मानना, अधर्म। ऐसा करनेवाले को **'काफ़िर'** कहते हैं।

६. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—द्विप्र० में यहां आयतसंख्याएं १७४-१७९ अशुद्ध हैं। मूलह०, मुद्रणह०, भद में १८०-१८४ अशुद्ध हैं।

७. **स्थानभ्रष्ट अपपाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में यह वाक्य अपक्रम से है तथा त्रुटित है—**''हमारा अपराध चोर आदि चोरी करें''**। इसमें उपर्युक्त संशोधन एवं परिवर्धन वांछनीय है।

८. **अपप्रयोग**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में यहां **''गाली''** एकवचनात्मक प्रयोग है, बहुवचनात्मक अभीष्ट है। पूर्व वाक्यांश में बहुवचनात्मक प्रयोग है।

३९. ....अल्लाह झगड़ा करनेवालों को[१] मित्र नहीं करता। २०५। ऐ लोगो! जो ईमान लाये हो इस्लाम में प्रवेश करो....। २०८। मं० १। सि० २। सू० २। आ० २०५। २०८॥[२]

समीक्षक—जो झगड़ा करनेवालों को ख़ुदा मित्र[३] नहीं समझता तो क्यों आप ही मुसलमानों को झगड़ा करने में प्रेरणा करता है? और झगड़ालू मुसलमानों से मित्रता क्यों करता है? क्या मुसलमान के मत में मिलने में ही में ख़ुदा राज़ी है? तो वह मुसलमानों का ही पक्षपाती है, सब संसार का ईश्वर नहीं। इससे यहां यह विदित होता है कि न '**क़ुरान**' ईश्वरकृत [है] और इसमें कहा हुआ ईश्वर भी नहीं हो सकता है॥ ३९॥

४०. ....खुदा जिसको चाहे अनन्त रिज़क[४] देवे। २१२।

मं० १। सि० २। सू० २। आ० २१२॥[५]

समीक्षक—क्या विना पुण्य के ख़ुदा ऐसे ही रिज़क देता है?[६] फिर भलाई-बुराई का करना एक-सा ही हुआ, क्योंकि सुख-दुःख प्राप्त होना उसकी इच्छा पर है। इससे धर्म से विमुख होकर मुसलमान लोग यथेष्टाचार करते हैं और कोई-कोई इस '**क़ुरानोक्त**' पर विश्वास न करके धर्मात्मा भी होते हैं॥ ४०॥

४१. प्रश्न करते हैं तुझसे, रजस्वलाओं[७] को कह वो अपवित्र हैं, पृथक् रहो, ऋतु समय में उनके समीप मत जाओ, जब तक कि वे पवित्र न हों। जब नहा लेवें, उनके पास उस स्थान से जाओ ख़ुदा ने आज्ञा दी....। २२२। तुम्हारी बीबियां[८] तुम्हारे लिये खेतियां हैं, बस जाओ जिस तरह चाहो अपने खेत में....। २२३। तुमको अल्लाह लग़ब (=बेकार, व्यर्थ) शपथ के तोड़ने में नहीं पकड़ता....। २२५।

मं० १। सि० २। सू० २। आ० २२२। २२३। २२५॥[९]

समीक्षक—जो यह रजस्वला का स्पर्श-संग न करना लिखा है, यह अच्छी बात है। परन्तु जो यह स्त्रियों को खेती के तुल्य लिखा[१०] और '**जैसा जिस तरह से चाहो, जाओ**'[११] यह विषयी करने[१२] का भी कारण हो सकता है। जो ख़ुदा बेकार[१३] शपथ पर नहीं पकड़ता, तो सब झूठ बोलेंगे, शपथ तोड़ेंगे।

१,३. **मुद्रणकालीन अपपाठ**—द्विप्र०, द्वि०सं० में "**झगड़े को मित्र नहीं रखता**" आयत में अपपाठ है। आगे समीक्षा में, द्वि० सं० में "**झगड़ा करने को खुदा मित्र नहीं समझता**" तथा मूलप्रति सं० में समीक्षा में "**झगड़ा को खुदा मित्र नहीं समझता**" अपपाठ है। यही अशुद्ध पाठ वेस, जग, भद, युमी, विस, जस में विद्यमान है। मुद्रणहस्तलेख में दोनों स्थानों पर ठीक पाठ है। उदयपुर सं० में संशोधित पाठ है। मूलह०, मूलसं० में शुद्ध है।

२. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—द्विप्र० में यहां आयतसंख्याएं १९०, १९३ अशुद्ध हैं। मूलह०, मुद्रणह०, भद में १९५, १९८ और उदयपुर सं० में २०४, २०६ संख्याएं अशुद्ध हैं।

४. **मुद्रणकालीन उचित संशोधन**—मूलह०, मूलप्रति में "**आनन्द**" उचित अनुवाद नहीं है। मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में "**रिज़क**" संशोधित पाठ सही और कुरान के अनुसार है। इसका अर्थ है—रोज़ी-रोटी, जीविका, अन्न-धन, ठाठ-बाट आदि। अरबी में इसकी वर्तनी "**रिज़्क़**" है।

५. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—द्विप्र० में यहां आयतसंख्या १९७ अशुद्ध है। मूलह०, मुद्रणह०, भद में २०२ अशुद्ध है।

६. **अपपाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में यहां यह वाक्य है—"**क्या विना पाप-पुण्य के खुदा ऐसे ही रिज़क देता है?**" रिज़क (=ठाठबाट) पुण्य का फल है, पाप का नहीं, तभी तो अगले वाक्य में भलाई-बुराई में अन्तर न होने की बात कही है। यहां केवल "**पुण्य के**" पाठ वांछित है।

७-८. **अपप्रयोग**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में एकवचन "**रजस्वला**" और "**बीवियां**" अपपाठ हैं।

९. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—द्विप्र० में यहां आयतसंख्याएं २०५, २०६, २०८ अशुद्ध हैं। मूलह०, मुद्रणह०, भद में २१०, २११ और

इससे ख़ुदा झूठ का प्रवर्त्तक होगा॥ ४१ ॥[१]

४२. वो कौन मनुष्य है जो अल्लाह को उधार देवे। अच्छा, बस, अल्लाह द्विगुण करे उसके वास्ते....। २४५। मं० १। सि० २। सू० २। आ० २४५॥[२]

समीक्षक—अब देखिये, यह '**क़ुरान**' बनाने वा बनवानेवाले की मतलबसिन्धु की बात कि ईश्वर के नाम से लोगों से धन ठगके स्वप्रयोजन सिद्ध करना चाहता है! क्या ईश्वर खुद को[३] धन नहीं दे सकता था[४] और क्या उसका ख़जाना खाली हो गया था? तथा क्या वह हुंडी, पुड़िया व्यापारादि में मग्न होने से टोटे[५] में फंस गया था जो उधार* लेने लगा? और एक का दो-दो देना स्वीकार करता है, क्या यह साहूकारों का काम है?[६] किन्तु ऐसा काम तो दिवालियों[७] वा जिनके ख़र्च अधिक हों और आय न्यून हो उनको करना पड़ता है, ईश्वर को नहीं॥ ४२ ॥

* इसी आयत के भाष्य में तफ़सीर हुसैनी में लिखा है कि एक मनुष्य मुहम्मद[८] साहब के पास आया। उसने कहा कि ''ऐ रसूलल्लाह! खुदा कर्ज क्यों माँगता है?'' उन्होंने उत्तर दिया कि ''तुमको बहिश्त में ले जाने के लिये।'' उसने कहा कि ''जो आप ज़मानत लें, तो मैं दूँ।'' मुहम्मद[९] साहब ने उसकी ज़मानत ले ली। खुदा का भरोसा न हुआ, उसके दूत का हुआ।[१०]

वेस तथा उदयपुर सं० में २२५ संख्या के स्थान पर २२४ अशुद्ध है।

१०-१३. उचित संशोधन एवं अपपाठ—(१०) मूलप्रति सं० में ''**लिखना**'' के स्थान पर द्वि० सं० का ''**लिखा**'' पाठ उचित है। (११) द्वि० सं० में यहां ''**जैसा जिस तरह से चाहो, जाओ**'' पाठ-परिवर्तन आयतानुसार ठीक है। मूलप्रति सं० का पाठ ''जैसा जिस ओर से चाहो उनसे बर्तो'' सीमित अर्थवाला है। (१२) ''**विषयी करने**'' मूलह०, मूलप्रति सं० में ''**करने**'' क्रिया नहीं है, यह अपेक्षित है। यहां से आगे ''**और पुंसि-मैथुन**'' द्वि० सं० से हटा दिया है, यह उचित संशोधन है। यह आवश्यक भी है क्योंकि मूलह० का भाव आयत में नहीं है। (१३) द्वि० सं० में ''**बेकारी**'' अपपाठ है।

१. **इस्लाम में स्त्रियों की हीन दशा**—आयतसंख्या २२३ इस्लाम में स्त्रियों की हीनदशा का मुंहबोलता चित्र है। अत्यन्त हीन उपमा देते हुए उनको पुरुषों की खेतियां कहा है और कहा है कि जैसे चाहो उनका उपभोग करो। यहाँ स्त्री की न कोई स्वतन्त्र सत्ता है, न अस्मिता है, न समानता का अवसर है। यह समझिए कि केवल उपभोग की वस्तु है और वह भी खिलौने की तरह।

२. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—द्विप्र० में आयतसंख्या और २२७ और मूलह०, मुद्रणह०, भद में २२९ अशुद्ध है।

३. **अप-परिवर्तन**—मूलसं० में ''**उसको**'' के स्थान पर ''**खुद को**'' पाठ सही है। द्विप्र०, द्वि०सं० में यह पाठ अप-परिवर्तित है।

४. **मुंशी समर्थदान द्वारा व्यर्थ परिवर्तन**—द्विप्र० में ''**अब देखिये.....दे सकता था**'' तक का पाठ बदलकर यह पाठ कर दिया—''**भला, ख़ुदा को कर्ज़ उधार लेने से क्या प्रयोजन? जिसने सारे संसार को बनाया, वह मनुष्य से कर्ज़ लेता है? कदापि नहीं। ऐसा तो विना समझे कहा जा सकता है।**'' अब देखिए, ऊपर की ऋषिप्रोक्त भाषा में ख़ुदा के नाम पर ठगी करने पर जो प्रखर यथार्थ कथन था, उसका भाव और व्यंग्य संशोधन से समाप्त ही हो गया। द्विप्र० में व्यावहारिक समीक्षा न होकर शिथिल दार्शनिक समीक्षा मात्र रह गई। यह महर्षि की भाषा नहीं है, यह मुंशी जी की शिथिल भाषा है। महर्षिप्रोक्त मूलप्रति का उपर्युक्त पाठ ही ग्राह्य है।

५. **अव्यवस्थित प्रयोग**—लिपिकर ने सत्यार्थप्रकाश में कहीं ''**तोटा**'' तो कहीं ''**टोटा**'' पद लिखा है। हिन्दी के अनुसार ''**टोटा**'' पाठ ही ग्राह्य है। अनिश्चित पाठ अमानकता को प्रकट करते हैं। द्वि०सं० में यहां संशोधन कर दिया है। मूलप्रति सं० में यहां ''**तोटा**'' पाठ उपयुक्त नहीं। ''**तोटा में**'' और भी अशुद्ध है, ''**टोटे में**'' उपयुक्त पाठ है।

६. **अल्लाह को उधार देने की पुनरुक्ति**—द्र० आयतखण्ड संख्या ७१, १५५।

७. **उचित संशोधन**—मूलप्रति सं० में ''**दिवालिये वा जिनके खर्च**'' वाक्यखण्ड में ''**दिवालिये**'' अपप्रयोग तथा ''**जिनके**'' प्रयोग वाक्यरचना की दृष्टि से अनावश्यक है। द्विप्र०, द्वि०सं० में संशोधित है।

८-९. अव्यवस्थित तथा अशुद्ध वर्तनी—गत आयतखण्ड संख्या ३५ की समीक्षा में ''**मुहम्मद**'' शुद्ध वर्तनी है किन्तु द्विप्र० में यहां दोबार अशुद्ध लिखी है। अन्य सभी द्वि०सं० में संशोधित है।

१०. मुद्रणकालीन टिप्पणी एवं पाठग्रहण—यह टिप्पणी मूलह० में नहीं है। मुद्रणह० में बाद में लिखकर जोड़ी गई है। यह मुंशी समर्थदान जी द्वारा लिखित है। मूलसं० में वहीं से ग्रहण की गई है।

४३. ....उनमें से कोई ईमान लाया[१] और कोई काफ़िर हुआ। जो अल्लाह चाहता न लड़ते, जो चाहता है अल्लाह करता है। २५३। मं० १। सि० २। सू० २। आ० २५३॥[२]

समीक्षक—क्या जितनी लड़ाई होती है वह ईश्वर की ही इच्छा से [होती है] ?[३] क्या वह अधर्म करना चाहे, तो कर सकता है? जो ऐसी बात है, तो वह ख़ुदा ही नहीं, क्योंकि भले मनुष्यों का यह कर्म नहीं कि शान्तिभंग करके लड़ाई करावें। इससे विदित होता है कि यह '**क़ुरान**' न ईश्वर का बनाया और न किसी धार्मिक विद्वान् का रचित है[४] ॥ ४३ ॥

४४. ....जो कुछ आसमान और पृथिवी पर है सब उसी के लिये है।....उसकी कुर्सी ने आसमान और पृथिवी को समा लिया है[५]....। २५५। मं० १। सि० ३। सू० २। आ० २५५॥[६]

समीक्षक—जो आकाश और भूमि में पदार्थ हैं वे सब जीवों के लिये परमात्मा ने उत्पन्न किये हैं, अपने लिये नहीं; क्योंकि वह पूर्णकाम है। उसको किसी पदार्थ की अपेक्षा नहीं। जब उसकी कुर्सी[७] है, तो वह एकदेशी है।[८] जो एकदेशी होता है वह ईश्वर नहीं कहाता, क्योंकि ईश्वर तो व्यापक है॥ ४४॥

४५. .....अल्लाह[९] सूर्य को पूर्व से लाता है। बस, तू पश्चिम से ले आ। जो क़ाफिर था, हैरान

---

१. **भ्रष्टपाठ**—दोनों हस्त० और द्विप्र० में भ्रष्ट अनुवाद ''**कोई ईमान न लाया**'' पाठ है। कुरान के मूलपाठ और आयत की विकल्पात्मक भाषा के अनुसार ''**कोई ईमान लाया**'' पाठ शुद्ध है। द्वि०सं०, मूलसं०, स्वामी वेदानन्द सं० में पाठ संशोधित है। **पं० सिद्धान्ती सं०, पं० भगवद्दत्त सं०** में भ्रष्ट पाठ है। **पं० मीमांसक जी** ने मूलपाठ में अशुद्ध पाठ दिया है किन्तु टिप्पणी में ''**न**'' पद को अशुद्ध माना है। ऐसा शोधकार्य निष्फल है क्योंकि कहीं उद्धृत किया जायेगा तो मूलपाठ ही ग्रहण किया जायेगा और वह अशुद्ध ही होगा। टिप्पणी मीमांसक जी के संस्करण में ही धरी रह जायेगी।

उदयपुर संस्करण—आश्चर्य तो उदयपुर सं० पर है। उसके सामने शुद्ध-अशुद्ध दोनों पाठ उपस्थित थे किन्तु उन्होंने कुरानविरुद्ध भ्रष्टपाठ को ग्रहण किया। प्रतीत होता है कि कथित दश सम्पादक विद्वानों ने इसकी भ्रष्टता पर विचार ही नहीं किया।

२. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र० में और भद में यहां आयत संख्या २३५ अशुद्ध है।

३. **त्रुटित आवश्यक पद**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**होती है**'' क्रिया त्रुटित रह गई है। लिपिकर की असावधानी से त्रुटित रह गई यह क्रिया आवश्यक है। इसके बिना वाक्य नहीं बनता।

४. **ऋषिकृत उचित प्रयोग का अपपरिवर्तन**—मूलह०, मुद्रणह०, में ऋषि की स्थापित भाषाशैली के विरुद्ध ''**कुरान.....बनायी..... विद्वान् की**'' स्त्रीलिंग प्रयोग है। अशुद्ध-लेखन को छोड़कर सम्पूर्ण समुल्लास में पुंल्लिग का प्रयोग है। मूलहस्तलेख में ऋषि ने स्वलेख में इसको पुंल्लिंग लिखा है।

५. **उचित अनुवाद-संशोधन**—मूलह०, मूलप्रति सं० में आयत की दूसरी पंक्ति का अनुवाद अशुद्ध है जो इस प्रकार है—''**चाहे उसकी कुरसी में आसमान और पृथिवी को समा लेवे।**'' द्विप्र० और द्वि०सं० में इसका संशोधन उपर्युक्त आयत-पाठ के रूप में किया गया है। **वैदिक विद्वान् पं० रामचन्द्र देहलवी** का भी यही संशोधन है। पहली पंक्ति में भी यह जो वाक्य है कि ''**सब उसी के लिये है**'', इसके स्थान पर कुरान के वर्तमान अनुवादों में ''**सब उसी का है**'' अनुवाद मिलता है। यह अधिक ठीक अनुवाद है। ये संशोधन ग्राह्य हैं।

६. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र० और भद में यहां आयतसंख्या २३७ अशुद्ध है।

७. **अव्यवस्थित वर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों ही सं० में आयत-पाठ में ''**कुरसी**'' वर्तनी है और समीक्षा में ''**कुर्सी**'' है। '**कुर्सी**' अरबी का मूल शब्द है और '**कुरसी**' उसका हिन्दी में प्रचलित अपभ्रंश है। एक ही स्थान पर दो वर्तनियां उपयुक्त-प्रयोग नहीं कहलातीं। मानकता और एकरूपता के लिए ''**कुर्सी**'' मूल वर्तनी दोनों स्थलों पर ग्राह्य है।

८. **ग्रन्थकार की समीक्षा का आधार**—''**कुर्सी**'' शब्द के अनेक अर्थ होते हैं—'**बैठने की कुर्सी=आसन्दी, प्रतिष्ठा, प्रभुत्व**' आदि। ग्रन्थकार ने यहां जो समीक्षा की है वह बैठने की आसन्दी अर्थ को आधार बनाकर की है। जब कुरान में अल्लाह का स्थान सातवें आसमान में माना जाता है तो उसके बैठने के लिए कुर्सी भी आसमान में ही मानी जायेगी। यही व्यंग्यार्थ यहां अभिप्रेत है।

९. **मुद्रणकालीन उचित संशोधन**—मूलह०, मूलप्रति सं० में ''**मेरा मालिक**'' पाठ है। द्विप्र०, द्वि०सं० में इसका संशोधन करके

हुआ। निश्चय अल्लाह पापियों को मार्ग नहीं दिखलाता। २५८।

मं० १। सि० ३। सू० २। आ० २५८॥[१]

समीक्षक—देखिये, यह अविद्या की बात! भला **सूर्य न पूर्व से पश्चिम और न पश्चिम से पूर्व कभी आता-जाता है। वह तो अपनी परिधि में घूमता रहता है।** इससे निश्चित जाना जाता है कि '**क़ुरान**' के कर्त्ता को न '**खगोल**' और '**भूगोल विद्या**' आती थी। **जो पापियों को मार्ग नहीं बतलाता तो पुण्यात्माओं के लिये भी मुसलमानों के ख़ुदा की आवश्यकता नहीं, क्योंकि धर्मात्मा तो धर्म-मार्ग में ही होते हैं; मार्ग तो धर्म से भूले हुए मनुष्यों को बतलाना होता है।** सो कर्त्तव्य के न करने से '**क़ुरान**' के कर्त्ता की बड़ी भूल है॥ ४५॥

४६. .....कहा, चार जानवरों [में] से ले उनकी सूरत पहिचान रख, फिर हर पहाड़ पर उनमें से एक-एक टुकड़ा रख दे, फिर उनको बुला, दौड़ते तेरे पास चले आवेंगे....। २६०।

मं० १। सि० ३। सू० २। आ० २६०॥[२]

समीक्षक—वाह-वाह देखो जी! मुसलमानों का ख़ुदा भानमती के समान खेल कर रहा है! क्या ऐसी ही बातों से ख़ुदा की ख़ुदाई है? [३]बुद्धिमान् लोग ऐसे ख़ुदा को तिलाञ्जलि[४] देके दूर रहेंगे और मूर्ख लोग फसेंगे। इससे ख़ुदा को बड़ाई के बदले बुराई पल्ले पड़ेगी[५]॥ ४६॥

४७. जिसको चाहे नीति देता है....। २६९। मं० १। सि० ३। सू० २। आ० २६९॥[६]

समीक्षक—जब जिसको चाहता नीति देता है। तो जिसको नहीं चाहता है उसको अनीति देता होगा? यह बात ईश्वरता की नहीं। किन्तु जो पक्षपात छोड़ सबको नीति का उपदेश करता है, वही ईश्वर और आप्त हो सकता है, अन्य नहीं॥ ४७॥

४८. जो लोग ब्याज खाते हैं वे क़ब्र[७] से नहीं खड़े होंगे....। २७५।[८]

मं० १। सि० ३। सू० २। आ० २७५॥[९]

समीक्षक—क्या वे क़ब्रों में ही पड़े रहेंगे? और जो पड़े रहेंगे, तो कब तक? ऐसी असम्भव बात

"**अल्लाह**" पाठ रखा गया है। कुरान के मूल पाठ में भी "**अल्लाह**" ही है, अतः यही ग्राह्य है।

१. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र० और भद में आयतसंख्या २४० अशुद्ध है।

२. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र० और भद में आयतसंख्या २४२ अशुद्ध है।

३. **उचित संशोधन**—मूलह०, मूलप्रति सं० में यहां "**तो**" पद निरर्थक है। द्विप्र०, द्वि०सं० में इसको हटा दिया गया है।

४. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त०, द्विप्र० में "**तिलाञ्जली**" अपवर्तनी है। सभी सं० ने इसको शुद्ध कर लिया है।

५. **अपवाक्य**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में यह वाक्य इस प्रकार है—"**इससे ख़ुदा की बड़ाई के बदले बुराई उसके पल्ले पड़ेगी।**" यहां "**की**" के स्थान पर "**को**" कारक प्रत्यय आयेगा और "**उसके**" निरर्थक पद है। उपर्युक्त संशोधित पाठ ग्राह्य है। यही अपपाठ अन्य सभी द्वि०सं० में है।

६. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह० में २५० और द्विप्र०, भद में यहां २५१ आयतसंख्या अशुद्ध है।

७. **अपर्वतनी**—दोनों हस्त०, तीनों सं० में यहां दोनों स्थानों पर "**कबर**" वर्तनी के स्थान पर '**क़ब्र**' शुद्ध वर्तनी अपेक्षित है।

८. **मुद्रणकाल में आयत का अनुचित निष्कासन एवं पुनःग्रहण**—मुद्रणकाल में, मुंशी समर्थदान द्वारा मुद्रणप्रति में काट देने के कारण यह ४८(२७५) आयत तथा इसकी समीक्षा प्रकाशन से छूट गई थी। यह द्विप्र० में नहीं है। परोपकारिणी के द्वितीय सं० २ से ३३वें सं० तक भी नहीं छपी। ३४ वें संस्करण में इसको ग्रहण किया गया। यह कुरान के सिद्धान्त की द्योतक महत्त्वपूर्ण आयत है जिसको गलत काटा गया था।

ईश्वर के पुस्तक की तो नहीं हो सकती है, किन्तु बालबुद्धियों की तो हो सकती है॥ ४८ ॥[१०]

४९. .....वह कि जिसको चाहे क्षमा करेगा, जिसको चाहे पापी बनावेगा,[१] क्योंकि वह सब वस्तु पर बलवान् है। २८४। मं० १। सि० ३। सू० २। आ० २८४॥[२]

समीक्षक—क्या क्षमा के योग्य पर क्षमा न करना, अयोग्य पर क्षमा करना गवरगंड[३] राजा के तुल्य यह कर्म नहीं है? यदि ईश्वर जिसको चाहता पापी वा पुण्यात्मा बनाता है तो जीव को पाप-पुण्य न लगना चाहिये, क्योंकि जब ईश्वर ने ही उसको वैसा किया तो जीव को दु:ख-सुख न होना चाहिये। जैसे सेनापति की आज्ञा से किसी भृत्य ने किसी को मारा वा रक्षा की उसका फलभागी वह नहीं होता, वैसे वे भी नहीं॥ ४९ ॥

५०. कह इससे अच्छी और क्या परहेज़गारों को खबर दें कि अल्लाह की ओर से बहिश्तें हैं, जिनमें नहरें चलती हैं। उसी में सदैव रहनेवाली शुद्ध[४] बीबियाँ हैं,[५] अल्लाह की प्रसन्नता से। अल्लाह उनको देखनेवाला है साथ बन्दों के। १५[५] मं० १। सि० ३। सू० ३। आ० १५॥[७]

समीक्षक—भला, यह स्वर्ग है किंवा वेश्या-वन? इसको ईश्वर कहना [चाहिये][८] वा स्त्रैण

मुंशी समर्थदान जी ने इसको काटने का कोई कारण नहीं दर्शाया है। निश्चय ही यह उनकी भूल है। स्वामी वेदानन्द सं० में यह आयत त्रुटित है। अन्य सभी सम्पादकों द्वि॰सं०, पं० भगवद्दत्त जी, पं० मीमांसक जी, स्वामी विद्यानन्द जी, स्वामी जगदीश्वरानन्द जी आदि ने इस आयत के महत्त्व को समझते हुए इसको मूलपाठ में ग्रहण कर लिया है।

कथित दश विद्वानों द्वारा सम्पादित उदयपुर सं० ने इस्लाम के खास सिद्धान्त पर प्रकाश डालने वाली इस महत्त्वपूर्ण आयत को मूलपाठ में ग्रहण नहीं किया है। इसको टिप्पणी में दिया गया है, जो मूलपाठ की अपेक्षा से व्यर्थ कार्य है। इस प्रकार उदयपुर सं० ने मुंशी समर्थदान जी की भूल को महत्त्व दिया है और ऋषि के लेख की उपेक्षा करके उसको व्यर्थ माना है। आश्चर्य है, दस आर्यविद्वानों की दृष्टि में ऋषि की प्रतिष्ठा मुंशी जी से भी कम है।

९. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह० में इसकी आयतसंख्या २५७, भद में २४७ अशुद्ध है। द्विप्र०, उदयपुर सं० में यह महत्त्वपूर्ण आयत त्रुटित है।

१. **मुद्रणकाल में अनुवाद संशोधित किन्तु समीक्षा में विसंगति**—मूलह०, मुद्रणह०, मूलप्रति सं० में आयत की प्रथम पंक्ति का अनुवाद उपर्युक्त है। द्विप्र० में इसको संशोधित करके **''चाहे दण्ड देगा''** पाठ बना दिया है।

संशोधक मुंशी समर्थदान जी तथा द्वि०सं० पर आधारित संस्करणों के सभी सम्पादकों ने इस बिन्दु पर ध्यान नहीं दिया कि द्विप्र० का अशुद्ध परिवर्तन ग्रहण नहीं किया जा सकता। कारण यह है कि यह अनुवाद किसी मौलवी का ही किया हुआ है और सारी समीक्षा उसी अनुवाद व **'पापी-पुण्यात्मा'** पदों पर आधारित है। अत: समीक्षा में भी परिवर्तन अपेक्षित होगा। द्विप्र०/द्वि०सं० में आयत का पाठ तो बदल दिया किन्तु समीक्षा उसी पूर्व अनुवाद पर आधारित है। अत: अनुवाद के बदलने पर एक नयी विसंगति उत्पन्न हो जायेगी, जो कि सभी द्वि०सं० में हो भी गई है। इस प्रकार आयत का मूलह०, मुद्रणह० में प्रदर्शित अनुवाद ही ग्रहण करना आवश्यक है।

२. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र० और भद में यहां आयत संख्या २६६ अशुद्ध है।

३. **गवरगंड राजा**=मूर्ख राजा। इसकी कहानी ग्रन्थकार द्वारा रचित **'व्यवहारभानु'** पुस्तिका में द्रष्टव्य है।

४. **मुद्रणकालीन उचित संशोधन**—मूलह०, मूलसं० में **''शुद्ध अर्थात् गोरी-गोरी''** अनुवाद अशुद्ध है। द्विप्र० में इसको संशोधित करके हटा दिया है। कुरान में भी **'शुद्ध=पाक-साफ'** अनुवाद है। यहां द्विप्र०, द्वि०सं० का पाठ ग्राह्य है।

५. **अपवर्तनी**—इस आयत और समीक्षा में पांच बार **''बीबियाँ''** पद प्रयुक्त है। दोनों हस्त० और तीनों सं० में कई स्थानों पर **''बीवियां''** अशुद्ध वर्तनी है।

६. **मुद्रणकालीन उचित परिवर्धन**—मूलह०, मूलप्रति सं० में **''अल्लाह उनको देखनेवाला है''** इस वाक्य के साथ ही आयत पूर्ण हो जाती है। द्विप्र० में और फिर द्वि०सं० में परिवर्धन करके **''साथ बन्दों के''** पाठ और जोड़ा गया है। वह ग्राह्य है।

७. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—द्विप्र०, भद में यहां आयतसंख्या १२ अशुद्ध है। मूलह०, मुद्रणह०, युमी, मूलसं० में १४ अशुद्ध है।

८. **त्रुटित आवश्यक पद**—दोनों हस्त०, तीनों सं० में **''चाहिये''** क्रिया त्रुटित है। इसके बिना वाक्यरचना ही नहीं होती।

अर्थात् स्त्रियों में प्रसक्त ?[१] कोई भी बुद्धिमान्, ऐसी बातें जिसमें हों, उसको परमेश्वर का किया पुस्तक कभी नहीं मान सकते। यह पक्षपात क्यों करता है? जो बीबियां बहिश्त में सदा रहती हैं, वे यहां जन्म पाके वहां गई हैं वा वहीं उत्पन्न हुई हैं? यदि यहां जन्म पाकर वहां गई हैं, और क़यामत की रात से पहले ही वहां बीबियों को बुला लिया तो उनके खाविन्दों को क्यों न बुला लिया ?[२] और क़यामत की रात में सब न्याय होगा, इस नियम को क्यों तोड़ा? यदि वहीं जन्मीं हैं, तो क़यामत तक वे क्योंकर निर्वाह करती हैं? यदि फरिश्तों से निर्वाह करती हैं,[३] तो यहाँ से बहिश्त में जानेवाले मुसलमानों को ख़ुदा बीबियां कहां से देगा? क्या क्षतयोनि ही उनको देगा?[४] और जैसे बीबियां बहिश्त में सदा रहनेवाली बनाई, वैसे पुरुषों को वहां सदा रहने वाले क्यों नहीं बनाया? इसलिये मुसलमानों का ख़ुदा अन्यायकारी, बेसमझ है॥ ५० ॥

५१. निश्चय अल्लाह की ओर से दीन इस्लाम है[५]....। १९। मं० १। सि० ३। सू० ३। आ० १९॥[६]

समीक्षक—क्या अल्लाह मुसलमानों का ही है, अन्यों का नहीं? क्या तेरह-सौ वर्षों से पूर्व[७] ईश्वरीय मत था ही नहीं? इसी से यह '**क़ुरान**' ईश्वर का बनाया तो नहीं, किन्तु किसी पक्षपाती का बनाया है॥ ५१ ॥

५२. ....प्रत्येक जीव को पूरा दिया जावेगा जो कुछ उसने कमाया और वे न अन्याय किये

---

१. **मुद्रणकालीन अपपरिवर्तन**—मूलप्रति सं० में '**स्त्रैण**' का अर्थ उद्घाटित करने के लिए आगे पाठ रखा है—''**अर्थात् स्त्रियों में प्रसक्त**'' द्वि० सं० में इस पाठ को गम्भीरता से समझे बिना व्यर्थ ही हटा दिया। स्त्रैण के कई अर्थ हैं, जैसे, स्त्री-सम्बन्धी, स्त्रियों में प्रसक्त, स्त्रियों का गुलाम आदि। इनमें से यहां महर्षि को जो कहना अभिप्रेत था 'अर्थात्' कहके उसको स्पष्ट किया है। इस आवश्यक पाठ को हटाने का कोई औचित्य नहीं बनता। मूलप्रति सं० का महर्षिप्रोक्त उक्त पाठ ग्राह्य है।

२. **मुद्रणकालीन उचित संशोधन**—मूलह०, मुद्रणह०, मूलप्रति सं० में वाक्यरचना अशुद्ध है—''**वहां बीबियों को बुला ली और उनके खाविन्दों को क्यों न बुला लिये ?**'' द्विप्र०, द्वि०सं० में संशोधित कर दिया है।

३. **मुद्रणकाल में अशुद्ध पाठपरिवर्धन**—द्विप्र० में इस वाक्य के स्थान पर ''**जो उनके लिए पुरुष भी हैं**'' पाठ-परिवर्तन किया गया है, जो सर्वथा अशुद्ध है। संशोधक इस्लाम के मन्तव्य का गम्भीर ज्ञाता होता तो ऐसा न करता। ''**फरिश्तों**'' के स्थान पर ''**पुरुष**'' संशोधन इस कारण अनुचित है कि इस्लाम के अनुसार वर्तमान सृष्टि-अवधि तक तो बहिश्त में फ़रिश्ते ही निवास करते हैं। सामान्य पुरुष तो क़यामत के दिन जब उनके लिए स्वर्ग-नरक का फैसला होगा तब बहिश्त या दोज़ख में जायेंगे। मूलप्रति सं० का उक्त पाठ ग्राह्य है। द्वि०सं० पर आधारित सभी सं० में यह अपपाठ है। उदयपुर सं० में भी अपपाठ है।

४. **मुद्रणकाल में पाठनिष्कासन अनुचित**—द्विप्र०, द्वि०सं० से ''**क्या क्षतयोनि ही उनको देगा ?**'' यह वाक्य निकाल दिया है। प्रश्न मार्मिक उठाया है। यदि बहिश्त में स्थित स्त्रियां फ़रिश्तों से निर्वाह करती हैं तो सब समागम वाली ही होंगी। क्या खुदा क़यामत के बाद वहां जानेवाले पुरुषों को भोगी गई स्त्रियां ही देगा? इस गम्भीर आक्षेप से बचने के लिए कुरान के नये हिन्दी अनुवाद में ''**बीबियां हैं**'' के स्थान पर ''**पाक़-साफ़ जोड़े होंगे**'' अनुवाद कर दिया है। किन्तु वे कहां तक बचेंगे? ये कथन तो अनेक आयतों में स्पष्ट शब्दों में मिलते हैं। देखिए, अंग्रेजी अनुवाद में ''Companions''=जीवनसाथी या बीबियां, प्रयोग है। मुंशी जी को महर्षि का ऐसा महत्त्वपूर्ण तर्कयुक्त पाठ नहीं निकालना चाहिये था। यह सभी द्वि०सं० में त्रुटित है।

५. **मुद्रणकालीन उचित संशोधन**—मूलह०, मुद्रणह०, मूलप्रति सं० में यहां ''**और नहीं**'' अधिक पाठ है। कुरान में यह नहीं है, न वहां यह भाव है। सभी द्वि०सं० में इसका संशोधन कर इसको हटा दिया गया है, जो उचित है।

६. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, भद में यहां आयतसंख्या १६ अशुद्ध है। मूलसं०, युमी, वेस, उदयपुर सं० में १८ अशुद्ध है।

७. **इस्लाम के तेरह सौ वर्ष**—इस्लाम के उद्भव को सन् २००८ तक १३८६ वर्ष हुए हैं। सत्यार्थप्रकाश की रचना तक लगभग १३०० वर्ष हुए थे। विस्तृत टिप्पणी पृष्ठ ९३९ पर देखिए।

जावेंगे। २५। कह—'या अल्लाह तू ही मुल्क का मालिक है जिसको चाहे देता है जिसससे चाहे छीनता है,[1] जिसको चाहे प्रतिष्ठा देता है जिसको चाहे अप्रतिष्ठा देता है। सब कुछ तेरे ही हाथ में है, प्रत्येक वस्तु पर तू ही बलवान् है। २६। रात को दिन में और दिन को रात में पैठाता है और मृतक को जीवित से, जीवित को मृतक से निकालता है और जिसको चाहे अनन्त[2] अन्न देता है। २७।'

मुसलमानों को उचित है कि काफ़िरों को मित्र न बनावें सिवाय मुसलमानों के जो कोई यह करे, बस, वह अल्लाह की ओर से नहीं....। २८। कह—'जो तुम चाहते हो अल्लाह को, तो पक्ष करो मेरा, अल्लाह चाहेगा तुमको, और तुम्हारे पाप क्षमा करेगा। निश्चय करुणामय है। ३१।

मं० १। सि० ३। सू० ३। आ० २५। २६। २७। २८। ३१॥[3]

समीक्षक—जब प्रत्येक जीव को कर्मों का पूरा-पूरा फल दिया जावेगा तो क्षमा नहीं किया जायगा, और जो क्षमा किया जायगा तो पूरा फल नहीं दिया जायगा, और [इस प्रकार] अन्याय होगा। जब विना उत्तम कर्मों के राज्य [और][4] प्रतिष्ठा देगा, तो भी ईश्वर अन्यायी हो जायगा और विना पाप के राज्य और प्रतिष्ठा छीन लेगा,[5] तो भी अन्यायकारी हो जायगा। भला, रात में दिन, दिन में रात[6] और जीवित से मृतक और मृतक से जीवित कभी हो सकता है? क्योंकि ईश्वर की व्यवस्था अछेद्य-अभेद्य है, कभी अदल-बदल नहीं हो सकती।

अब देखिये पक्षपात की बातें! कि जो मुसलमान के मज़हब में नहीं हैं उनको '**काफ़िर**' ठहराना, उनमें श्रेष्ठों से भी मित्रता न रखने और मुसलमानों में दुष्टों से भी मित्रता रखने के उपदेश करना ईश्वर को ईश्वरता से बहिः कर देता है। इससे यह '**क़ुरान**', '**क़ुरान**' का ख़ुदा और मुसलमान लोग केवल पक्षपात, अविद्या के भरे हुए हैं, इसलिये मुसलमान लोग अन्धेरे में हैं। और देखिये मुहम्मद साहब[7]

---

१. **मुद्रणलिपिकरकृत अपपाठ**—मुद्रणह० में लिपिकर ने ''**जिसको चाहे छीनता है**'' अपपाठ लिखा है। वही द्विप्र० में छपा है। अन्य सभी में संशोधित है।

२. **मुद्रणकालीन उचित संशोधन**—द्विप्र०में यहां ''**अत्यन्त**'' के स्थान पर ''**अनन्त**'' पाठ किया है। आजकल के अनुवादों में '**बेहिसाब**' शब्द का प्रयोग है। मूलप्रति सं० के ''**अत्यन्त**'' प्रयोग की अपेक्षा '**अनन्त**' अधिक सटीक है।

३. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह० में यहां २२-२७ और द्विप्र० में यहां २१, २२, २३, २४ आयतसंखाएं अशुद्ध हैं, २८, ३१ त्रुटित हैं। भद में २१-२४; युमी, मूलसं०, उदयपुर सं० तथा वेस में २४, ३० संख्याएं अशुद्ध हैं, २८, ३१ त्रुटित हैं।

४. **त्रुटित आवश्यक पद**—दोनों सं० में '**और**' पद त्रुटित है। यहां अपेक्षित है। बृ०कोष्ठकान्तर्गत पाठ भी अत्यावश्यक है।

५. **प्रमादी मुद्रणलिपिकर द्वारा त्रुटित पाठ**—मूलह० से मुद्रणप्रति लिखते समय प्रमादी लिपिकर ने यह पाठ छोड़ दिया— ''**प्रतिष्ठा देगा, तो भी ईश्वर अन्यायी हो जायेगा और बिना पाप के राज्य और प्रतिष्ठा छीन लेगा**''। यही त्रुटित पाठ द्विप्र० में छपा है। स्वामी वेदानन्द, श्री सिद्धान्ती तथा पं० मीमांसक सं० में भी यह त्रुटित है। द्वि०सं०, उदयपुर सं० में परिवर्धित है।

६. **मुद्रणलिपिकर के प्रमाद से त्रुटित पाठ**—''**रात में दिन, दिन में रात**'' यह पाठ मूलहस्तलेख और मूलप्रति सं० दोनों में है। मुद्रणलिपिकर द्वारा पाठ त्रुटित छोड़ने से मुद्रणसमय, द्विप्र०, द्वि०सं० में त्रुटित रह गया है। यह पाठ आवश्यक है, क्योंकि यह आयत में है। उसी पर समीक्षा है।

७,९,१०. **अपवर्तनी और अयोग्य लिपिकर-शोधक**—क्या कोई बुद्धिमान् यह कल्पना कर सकता है कि कोई पढ़ा-लिखा इतने प्रसिद्ध नाम को भी अशुद्ध लिख सकता है? किन्तु इस कल्पना को साकार कर दिखाया है महर्षि के वेतनभोगी लिपिकरों-शोधकों ने। दोनों हस्तलेखों में ''**महंम्मद**'' वर्तनी यहां तीनों स्थलों पर लिखी है। शोधकों ने मुद्रणकाल में उसको ''**महुम्मद**'' बना दिया। यही अपवर्तनी द्विप्र० में छपी है। शोधकों का यह हाल तब है जबकि आयतखण्ड संख्या ३५ (द्विप्र० ३२) में शुद्ध वर्तनी ''**मुहम्मद**'' प्रकाशित है। **द्विप्र० में इस समु० में अन्यत्र भी लगभग ३५ बार यही अपवर्तनी लिखी गई है।** शुक्र है, हमारे सम्पादकों ने इस अशुद्ध पद में ''**तुह्मारा-तुह्मारे, हठाना-हठाने, गाढ़ना-गाढ़ने**'' अशुद्ध वर्तनियों को स्वीकार करने की तरह

की लीला कि जो तुम मेरा पक्ष करोगे तो ख़ुदा तुम्हारा पक्ष करेगा और जो तुम पक्षपातरूप पाप करोगे उसको[८] क्षमा भी करेगा! इससे सिद्ध होता है कि मुहम्मद साहब[९] का अन्तःकरण शुद्ध नहीं था। इसीलिये अपने मतलब सिद्ध करने के लिये मुहम्मद साहब[१०] ने '**क़ुरान**' बनाया वा बनवाया, ऐसा विदित होता है॥ ५२ ॥

५३. जिस समय कहा फरिश्तों ने कि ऐ मरियम[१]! तुझको अल्लाह ने पसन्द किया और पवित्र किया ऊपर जगत् की स्त्रियों के। ४२। मं० १। सि० ३। सू० ३। आ० ४२॥[२]

समीक्षक—भला, जब आजकल ख़ुदा के फ़रिश्ते और ख़ुदा किसी से बातें करने को नहीं आते, तो प्रथम भी नहीं आये होंगे[३]। जो कहो कि पहले के मनुष्य पुण्यात्मा थे, अब के नहीं, तो यह बात मिथ्या है। किन्तु जिस समय ईसाई और मुसलमानों का मत चला था, उस समय उन देशों में जंगली और विद्याहीन मनुष्य अधिक थे, इसीलिये ऐसे विद्याविरुद्ध मत चल गये। अब विद्वान् अधिक हैं, इसलिये नहीं चल सकते[४]। किन्तु जो-जो ऐसे पोकल[५] मज़हब हैं, वे भी अस्त होते जाते हैं, वृद्धि की तो कथा ही क्या है!॥ ५३ ॥

५४. ....उसको कहता है कि 'हो', बस हो जाता है। ४७।[६] काफ़िरों ने धोखा दिया, ख़ुदा[७] ने धोखा दिया, ख़ुदा[८] बहुत मकर करने वाला है। ५४। मं० १। सि० ३। सू० ३। आ० ४७।[९] ५४॥

समीक्षक—जब मुसलमान लोग ख़ुदा के सिवाय दूसरी चीज़ नहीं मानते तो ख़ुदा ने किससे कहा? और उसके कहने से कौन हो गया? इसका उत्तर मुसलमान सात जन्म में भी न दे सकेंगे, क्योंकि विना उपादान कारण के कार्य कभी नहीं हो सकता। विना कारण के कार्य कहना, जानो 'अपने मा-बाप के विना मेरा शरीर हो गया' ऐसी बात है। जो धोखा खाता और मकर[१०] अर्थात् छल और दम्भ करता है वह ईश्वर तो कभी नहीं हो सकता, किन्तु उत्तम मनुष्य भी ऐसा काम नहीं करता॥ ५४॥

कोई रहस्य खोजने की नहीं सोची! सभी ने इसको संशोधित कर लिया है। आगे इस पर टिप्पणी नहीं दी जायेगी। पाठकगण! ऐसे लिपिकरों-शोधकों से महर्षि का पाला पड़ा था! फिर भी कुछ विद्वान् और पाठक उनकी प्रशंसा करते नहीं अघाते!

८. **अपपाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में यहां "**उसकी**" अपपाठ है।

१. **अपपाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में "**मर्य्यम**" अपवर्तनी है। मरियम से ईसा के जन्म का यही वृत्तान्त बाइबल में भी है। देखिए, तेरहवें समु० की आयतखण्ड संख्या ६३ में। **पुनरुक्ति**—'द्रष्टव्य' आयतखण्ड संख्या ११६, १२० में।

२. **अशुद्ध उद्धरण संख्या**—वेस, युमी, उदयपुर, मूलप्रति सं० में "**४१**" संख्या अशुद्ध है। द्विप्र० में ३५, मूलह०, मुद्रणह०, भद में ३८ अशुद्ध है।

३. **अपपाठ**—मूलप्रति सं० में "**आये होंगे**" अपप्रयोग है। लगभग यही अपपाठ अन्य सभी सं० में है।

४. **अपपाठ**—दोनों सं० में "**चल सकता**" अप क्रिया-प्रयोग है। पूर्व वाक्य के अनुसार बहुवचन होगा।

५. **पोकल**=सारहीन, खोखला। यह गुजराती भाषा का शब्द है।

६. "**हो जा**" की पुनरुक्ति—द्र० आयत क्रमसंख्या २८, १४०।

७,८. **अप-अनुवाद**—क़ुरान में सटीक अनुवाद 'ख़ुदा' है। किसी मौलवीकृत 'ईश्वर' अनुवाद सटीक नहीं है।

९. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—वेस, युमी, उदयपुर, मूलप्रति सं० में आयतखण्ड की संख्या "४६,५३"; मूलह० में ४३, ५० अशुद्ध हैं, मुद्रणह०, भद में ४३, ४६; द्विप्र० में ३९,४६ अशुद्ध हैं।

१०. **प्रमादी मुद्रणलिपिकर द्वारा त्रुटित पद**—मूलह० से मुद्रणप्रति बनाते समय प्रमादी लिपिकर ने "**और मकर**" पद छोड़ दिये जिससे यह अशुद्ध पाठ बन गया—"**जो धोखा खाता अर्थात् छल और दम्भ करता है....।**" द्विप्र० में भी ये त्रुटित हैं। स्वामी वेदानन्द सं० में "**धोका करता**" तथा पं० मीमांसक सं० में "**धोखा खाता और धोखा करता**" अनुमान से पाठ बनाकर

५५. ....मत मरो, परन्तु मुसलमान हो। १०२।[१] **....क्या तुमको यह बहुत न होगा कि अल्लाह तुमको तीन हज़ार फ़रिश्तों के साथ साहाय्य देवे। १२३।** मं० १। सि० ३। सू० ३। आ० १०२। १२३॥[२]

समीक्षक—देखिये, इससे यह ठीक सिद्ध होता है कि मुसलमान न होगे तो हम तुमको मार डालेंगे। यह केवल अधर्म की बात है।[३] जो मुसलमानों को तीन हज़ार फ़रिश्तों के साथ साहाय्य देता था, तो अब मुसलमानों की बादशाही बहुत-सी नष्ट हो गई और होती जाती है, क्यों साहाय्य नहीं देता? इसलिये यह बात केवल लोभ देके मूर्खों को[४] फसाने के लिये महा-अन्याय की है॥ ५५॥

५६. ....और काफ़िरों पर हमको साहाय्य कर। १४७। अल्लाह तुम्हारा उत्तम सहायक और कारसाज़[५] है। १५०। जो तुम अल्लाह के मार्ग में मारे जाओ वा मर जाओ, अल्लाह की दया बहुत अच्छी है....। १५७। मं० १। सि० ४। सू० ३। आ० १४७। १५०। १५७॥[६]

समीक्षक—देखिये मुसलमानों की मूर्खता[७] कि जो अपने मत से भिन्न हैं उनको[८] मारने के लिये ख़ुदा से प्रार्थना[९] करते हैं! क्या परमेश्वर भोला है जो इनकी बात मान लेवे? यदि मुसलमानों का कारसाज़ अल्लाह ही है, तो फिर मुसलमानों के कार्य नष्ट क्यों होते हैं? और ख़ुदा भी मुसलमानों के साथ मोह से फसा हुआ दीख पड़ता है। जो ऐसा पक्षपाती ख़ुदा है, तो धर्मात्मा पुरुषों का उपासनीय कभी नहीं हो सकता॥ ५६॥

५७. यह लड़ाई इसलिये कि अल्लाह तुम्हारी परीक्षा लेवे......। १६६।[१०]

मं० १। सि० ४। सू० ३। आ० १६६॥[११]

समीक्षक—जो लड़ाई के विना परीक्षा नहीं कर सकता, तो वह सर्वज्ञ नहीं। इससे वह ईश्वर

संगति लगाई है। पं० भगवद्दत्त सं०, द्वि०सं०, उदयपुर सं० में मूलह० का पाठ गृहीत है।

१,३. **मुद्रणकाल में आयत पाठ-निष्कासन अनुचित**—द्विप्र० में, इस्लाम की क्रूरता का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने वाली प्रथम आयत १०२ और उसकी समीक्षा (''**देखिए.......बात है**'' तक) को हटा दिया गया है। महर्षि ने हटा देने के लिए यह समीक्षा नहीं लिखी थी। उपर्युक्त आयत मुंशी समर्थदान ने प्रकाशन के समय निकाली है। मुद्रणहस्त० में उनके द्वारा काटी हुई है।

२. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह० में ९३, ११४; द्विप्र० में आयत संख्या ११० (१२३ के स्थान पर) भद में ११४ और द्वि०सं० में १२४ अशुद्ध है। द्विप्र० में १०२ अवांछनीय रूप से निकाल दी है, मूलसं० में ९३ संख्या अशुद्ध है।

४. **मूर्ख मुद्रणलिपिकर द्वारा अपपरिवर्तन**—मूलह० में शुद्ध पाठ है। मुद्रणलिपिकर ने अपनी मूर्खबुद्धि से फिर काम लिया, शायद वाक्य में ''**लोभ**'' पद देखकर ''**मूर्खों को फसाने के लिये**'' के स्थान पर ''**भूखों को फसाने के लिए**'' पाठ बना दिया। यही पाठ द्विप्र० में भूखे वेतनभोगी शोधकों ने छापा है। शुक्र है, हमारे सभी सम्पादकों ने इस अशुद्धि में कोई रहस्य नहीं ढूंढा, सभी ने एकमत होकर इसको संशोधित कर लिया है।

५. **कारसाज**=बिगड़े हुए कामों को बनानेवाला।

६. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—उदयपुर, युमी, वेस, जग, मूलप्रति सं० में आयतों की संख्या १४६, १४९, १५६ अशुद्ध है, मूलह०, मुद्रणह०, भद में १३६, १३९, १४६; द्विप्र० में १३०, १३३, १४० अशुद्ध हैं।

७. **मुद्रणकाल में अनावश्यक पाठपरिवर्तन**—द्विप्र० में भाषा को थोड़ा नम्र करने के लिए ''**मूर्खता**'' के स्थान पर ''**भूल**'' कर दिया है, जो नितान्त अनावश्यक है। यह मुंशी समर्थदान जी ने किया है। क्या इससे वे लोग संतुष्ट हो जायेंगे? फिर व्यर्थ पाठान्तर की क्या आवश्यकता थी?

८,९. **अपप्रयोग**—मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में ''**उनके**'' तथा दोनों हस्त०, तीनों सं० में ''**की प्रार्थना**'' अपप्रयोग हैं।

१०. **मुद्रणकाल में आयत व समीक्षा पाठ निष्कासन**—द्विप्र० से इस आयतसंख्या ५७ को और इसकी समीक्षा को बिना कारण दर्शाये निकाल दिया गया है। इसको मुंशी समर्थदान जी ने निकाला है। यह मुद्रणहस्तलेख में है।

११. **त्रुटित उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, मूलप्रति सं० में आयत उद्धरणसंख्या त्रुटित है।

क्योंकर हो सके?॥ ५७॥

५८. ....और अल्लाह तुमको परोक्षज्ञ[1] नहीं करता परन्तु अपने पैग़म्बरों में से जिसको चाहे पसन्द करे, बस अल्लाह और उसके रसूल के साथ ईमान लाओ....। १७९।

मं० १। सि० ४। सू० ३। आ० १७९॥[2]

समीक्षक—क्या किसी पैग़म्बर को ख़ुदा अपने सदृश कर सकता है? जो कर सकता है, तो दूसरा 'ख़ुदा-शरीक' ख़ुदा हुआ। जो नहीं कर सकता तो इस आयत के झूठ[3] होने से ख़ुदा ने झूठ बोला।[4] जिसकी बात झूठ हो, वह स्वयं झूठा हुआ।[5] जब मुसलमान लोग सिवाय ख़ुदा के न किसी के साथ ईमान लाते, न किसी को ख़ुदा का साझी मानते हैं तो ईमान में ख़ुदा के साथ पैग़म्बर साहब को शरीक क्यों किया? अल्लाह ने पैगम्बर के साथ ईमान लाना लिखा, इसी से पैग़म्बर भी [खुदा के साथ] शरीक हो गया, पुनः [खुदा को] 'लाशरीक' कहना झूठा हुआ॥

यदि इसका अर्थ यह समझा जाय कि मुहम्मद साहब के पैग़म्बर होने पर विश्वास लाना चाहिये तो यह प्रश्न होता है कि मुहम्मद साहब के होने की क्या आवश्यकता है? यदि खुदा उनको पैग़म्बर किये विना अपना अभीष्ट कार्य नहीं कर सकता, तो अवश्य असमर्थ हुआ॥ ५८॥[6]

५९. ऐ ईमानवालो! संतोष करो,[7] परस्पर थामे रक्खो और लड़ाई में लगे रहो, अल्लाह से डरो कि तुम छुटकारा पाओ। २००। मं० १। सि० ४। सू० ३। आ० २००॥[8]

समीक्षक—यह '**क़ुरान**' का ख़ुदा और पैग़म्बर दोनों लड़ाईबाज़ थे। जो लड़ाई की आज्ञा देता है वह शान्तिभंग करनेवाला होता है। क्या ख़ुदा के नाममात्र से डरने से[9] छुटकारा पाया जाता है वा अधर्मयुक्त लड़ाई आदि से डरने से? जो प्रथम पक्ष है तो डरना-न डरना बराबर [है];[10] और जो

१. **उचित संशोधन**—मुद्रणहस्त०, द्विप्र० और द्वि०सं० में "**सर्वज्ञ**" के स्थान पर "**परोक्षज्ञ**" परिवर्तन किया गया है। यह परिवर्तन ग्राह्य है, क्योंकि कुरान में अनुसार यही प्रयोग है।

२. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—द्विप्र० में आयत संख्या १५९ अशुद्ध है। मूलह०, मुद्रणह०, भद में १६७ अशुद्ध है।

३. **अपवर्तनी**—मूलह०, मूलप्रति सं० में पांच बार "**झूंठ**" और "**झूंठा**" वर्तनी का प्रयोग है, जो अशुद्ध है। ग्रन्थ में बहुशः अन्यत्र "**झूठ**" "**झूठा**" शुद्ध प्रयोग है। द्वि०सं० से यह पाठ निष्कासित है।

४. **अपवाक्य**—दोनों हस्त०, मूलसं० में "**खुदा झूंठ बोला**" अपवाक्य है।

५. **मुद्रणकाल में पाठ-निष्कासन अनुचित**—द्विप्र० में आयत के प्रथमांश की समीक्षा ("**क्या किसी.......झूठा हुआ**" तक) अज्ञात कारणों से निकाल दी है। आयतांश होते हुए उसकी समीक्षा निकालने का औचित्य स्वीकार नहीं किया जा सकता। बिना कारण दर्शाये इस पाठ को मुंशी समर्थदान जी ने काटा है। यह मुद्रणहस्तलेख में है। इसी प्रकार आगे "**कहना झूठा हुआ**" के स्थान पर "**कहना ठीक न हुआ**" पाठ बनाया है। यह भी कोई भाषा हुई? व्यर्थ पाठान्तर किया है।

६. **मुद्रणकाल में उचित पाठ-परिवर्धन**—आयत की समीक्षा के अन्त में द्विप्र० में तीन पंक्तियां परिवर्धित की गई हैं ("**यदि इसका अर्थ......असमर्थ हुआ**" तक)। उपयोगी तथा युक्तिसंगत प्रतीत होने के कारण उन्हें पाठ में सम्मिलित किया है। मूलसं० में इनको ग्रहण नहीं किया गया है। प्रतीत होता है इनका परिवर्धन मुंशी जी ने किया है।

७. **उचित परिवर्धन**—मूलप्रति सं० में "**संतोष करो**" पाठ त्रुटित है। द्विप्र० में जोड़ दिया है। कुरान में होने से यह ग्राह्य है।

८. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—द्विप्र० में यहां आयतसंख्या १७८ अशुद्ध है। मूलह०, मुद्रणह०, भद में १८६ अशुद्ध है।

९. **अपपाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में यह वाक्य है—"**क्या नाम मात्र खुदा से डरने से**"। इसका भाव यह हुआ कि जो खुदा है नहीं, केवल जिसका नाम ही है। किन्तु ग्रन्थकार कहना चाहता है "**खुदा के केवल नाम से**"। इस प्रकार यहाँ उपर्युक्त पाठ उपयुक्त है। सभी सं० में यह शिथिल पाठ है।

१०. **त्रुटित आवश्यक क्रिया**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में यहां "**है**" क्रिया त्रुटित है। इसका होना आवश्यक है।

द्वितीय पक्ष है, तो ठीक है॥ ५९ ॥

६०. ये[१] अल्लाह की हद्दें हैं, जो अल्लाह और उसके रसूल[२] का कहा मानेगा वह बहिश्त में पहुँचेगा, जिनमें नहरें चलती हैं और यही बड़ा प्रयोजन है। १३। जो अल्लाह की और उसके रसूल की आज्ञा भंग करेगा और उसकी हद्दों से बाहर हो जायगा वो सदैव रहनेवाली दोज़ख़ की आग में जलाया जावेगा और उसके लिये ख़राब करनेवाला दुःख[३] है। १४।

मं० १। सि० ४। सू० ४। आ० १३। १४॥[४]

समीक्षक—जब ख़ुदा ने ही मुहम्मद साहब पैग़म्बर को अपना शरीक कर लिया है और खुद '**क़ुरान**' में ही लिखा है, तो मुसलमानों का ख़ुदा को 'लाशरीक' कहना व्यर्थ है।[५] और देखो, ख़ुदा पैग़म्बर साहब के साथ कैसा फसा है कि जिसने बहिश्त में रसूल का साझा कर दिया है। इस[६] एक बात में भी स्वतन्त्र न रहा। ऐसी-ऐसी बातें ईश्वरोक्त पुस्तक में नहीं हो सकतीं॥ ६०॥

६१. और एक अणु[७] के बराबर भी वह अन्याय नहीं करता और जो भलाई होवे उसको दुगुणा करेगा। ४०।[८]

मं० १। सि० ५। सू० ४। आ० ४०॥[९]

समीक्षक—जो एक अणु भी अन्याय ख़ुदा नहीं करता तो पुण्य को दुगुणा क्यों देता है? और मुसलमानों का पक्षपात क्यों करता है? जीव को आप ही पापी क्यों बनाता [है, और उसे][१०] फिर दुःख क्यों देता है? क्योंकि अधिक-न्यून करने से अधिष्ठाता को भलाई-बुराई का फल मिलता है, आधीन को नहीं; जैसे सेना की लड़ाई में राजा को जय-पराजय रूप फल होता है, भृत्यों को नहीं।[११]

---

१. **उचित संशोधन**—मूलह०, मूलसं० में यहां एकवचन "**यह**" है। बहुवचन "**ये**" अपेक्षित है। द्विप्र० में संशोधित है।

२. **रसूल**=ईश्वरदूत, नयी शरीअत (आचारशास्त्र) का, अल्लाह की ओर से प्राप्त उपदेश लोगों तक पहुंचानेवाला पैगम्बर।

३. **मुद्रणकाल में उचित संशोधन**—मूलह०, मूलप्रति सं० में यहां "**काफ़िर**" अनुवाद है। द्विप्र०, द्वि०सं० में संशोधन करके "**दुःख**" रखा है। यह संशोधन सही और ग्राह्य है।

४. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, भद में १५, १६ अशुद्ध आयत संख्याएं हैं। अन्य सभी में शुद्ध हैं।

५. **मुद्रणलिपिकर द्वारा अपपाठ-परिवर्तन**—मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में "**तो मुसलमानों........व्यर्थ है**" इस वाक्य को हटाकर "**स्वतन्त्र न रहा**" के बाद जोड़ा है। मूलह०, मूलप्रति सं० का पाठ ठीक है, क्योंकि पूर्ववाक्य खण्ड के '**शरीक**' कथन के साथ '**लाशरीक**' की संगति जुड़ती है। सभी द्वि०सं० में यही स्थानभ्रष्ट परिवर्तन है।

६. **मुद्रणकालीन अपपरिवर्तन**—द्विप्र०, द्वि०सं० में "**इस**" के स्थान पर "**किसी**" पद गलत है। दोनों हस्त० में "**इस**" पद है।

७. **अपपरिवर्तन**—द्विप्र०, द्वि०सं० में यहां "**त्रसरेणु**" कर दिया है। व्यवहार में छोटी इकाई के रूप में '**अणु**' ही प्रयुक्त होता है। मूलह० में, समीक्षा में "**अणु**" पद है जबकि आयत में "**परमाणु**" है। मुद्रणह० में दोनों स्थानों पर "**परमाणु**" पद पठित है। मूलसं० में मूलह० का पाठ है। वर्तमान हिन्दी-कुरानों में '**तनिक भी**' प्रयोग है।

८. **मुद्रणकाल में आयतपाठ-निष्कासन उचित**—द्विप्र०, द्वि०सं० से इससे आगे, तीनों सं० में प्राप्त एक आयत "**इच्छा करो अपने हाथ-मुख से पूछलो निश्चय अल्लाह क्षमा करने वाला है।**" निकाल दी है। कुरान में वह नहीं प्राप्त होती। महर्षि ने उसकी समीक्षा भी नहीं की है, अतः उसका निकालना उचित है। मुंशी समर्थदान ने इसको हटाया है।

९. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—द्विप्र० में आयत संख्या ३७ अशुद्ध है। मूलह०, मुद्रणह०, भद में ४७ अशुद्ध है।

१०. **त्रुटित आवश्यक पाठ**—बृ० कोष्ठकान्तर्गत पाठ आवश्यक है, क्योंकि उसके बिना वाक्य पूर्ण और स्पष्ट नहीं होता।

११. **मुद्रणकाल में समीक्षा-पाठनिष्कासन अनुचित**—द्विप्र०, द्वि०सं० में "**जीव को आप.......भृत्यों को नहीं**" तक समीक्षा हटा दी गई है। सम्भवतः संशोधक समर्थदान जी को यह कथन अप्रासंगिक प्रतीत हुआ हो। यह निष्कासन-योग्य नहीं है, क्योंकि इन पंक्तियों में खुदा के अन्याय का उल्लेख है जो आयत से सम्बद्ध समीक्षा है। पक्षपातपूर्ण ये कथन कुरान में आते हैं जिन पर प्रसंगवश यहां समीक्षा दे दी है। (द्रष्टव्य आयतखण्ड संख्या ४९ का पाठ व समीक्षा भी तथा आयतखण्ड संख्या ७२ और उसकी

वैसे ही द्विगुण वा न्यून फल कर्मों का जो देवे तो वह ख़ुदा भी अन्यायी[1] हो जावे॥ ६१॥

६२. ....अवश्य बहिश्त में भेजेंगे, जिनमें नहरें चलती हैं और उनके लिये पवित्र बीबियां हैं तथा सायेदार वृक्ष हैं, उसमें सदा रहेंगे। ५७।[2] मं० १। सि० ५। सू० ४। आ० ५७॥

समीक्षक—यह केवल अज्ञानियों को लोभ देकर मुहम्मद साहब ने फसाया है।[3] और आप भी स्त्रियों में आसक्त होंगे, नहीं तो ऐसी बातें क्यों कहते?॥ ६२॥[4]

६३. .....बस, उनको चाहिये ख़ुदा के मार्ग में लड़ें....। ७५। जो लोग ईमान लाये ख़ुदा के मार्ग में लड़ते हैं, जो काफ़िर हैं वे बुतों के मार्ग में लड़ते हैं। बस, शैतान के मित्रों से लड़ो, निश्चय उसका धोखा निर्बल है। ७६। जो उनको भलाई पहुंचती है, तो कहते हैं कि यह अल्लाह की ओर से है और बुराई को तेरी ओर से बतलाते हैं, कह सब अल्लाह की ओर से है....। ७९।[5]

मं० १। सि० ५। सू० ४। आ० ७५। ७६। ७९॥[6]

समीक्षक—भला, ईश्वर के मार्ग में लड़ाई का क्या काम? और जो बुतपरस्त[7] काफ़िर हैं, तो मुसलमान बड़े बुतपरस्त होने से बड़े काफ़िर होते हैं; क्योंकि ये बुतपरस्त लोग छोटी-छोटी मूर्तियों के सम्मुख नमते और भक्ति करते हैं, वैसे ही मुसलमान लोग मक्का की जो एक बड़ी मस्जिद है, उसके सामने नमते हैं। जो कहें कि हम मस्जिद को ख़ुदा नहीं समझते और '**क़ुरान**' की आज्ञा है, इससे उधर को मुखमात्र करके ख़ुदा की बन्दगी करते हैं। अच्छा, तो ये लोग भी पत्थर को ईश्वर नहीं समझते, किन्तु पत्थर में ईश्वर की भावना करके भक्ति करते हैं और इनको भी पुराण में वैसी आज्ञा व्यास जी जिनको लोग ईश्वरावतार मानते हैं, उनकी है कि तुम मूर्त्ति पूजो।

इसलिये बड़ी मस्जिद को ईश्वर की भक्ति में सामने रखनेवाले मुसलमान बड़े बुतपरस्त और ये लोग छोटे बुतपरस्त हैं।[8] जैसे कोई मनुष्य अपने घर में से बिल्ली को जब लों निकाले, तब लों उसके घर में ऊंट प्रविष्ट हो जाय, वैसी ही दशा मुहम्मद साहब आदि मुसलमानों की है। क्योंकि बिल्ली के

समीक्षा) दूसरा कथन यह है कि खुदा जब जीव को पापी बनाता है तो उसका पापफल भी खुदा को मिलना चाहिए, जैसे सेना के युद्ध-कर्म का फल सेनापति को मिलता है। इस समीक्षा को मुंशी समर्थदान ने हटाया है।

१. **उचित संशोधन**—''**अधर्मी**'' के स्थान पर द्विप्र०, द्वि०सं० का संशोधित ''**अन्यायी**'' पाठ अधिक सार्थक एवं प्रासंगिक है।

२,४. **मुद्रणकाल में आयतखण्ड-निष्कासन अनुचित**—द्विप्र०, द्वि०सं० से यह आयतखण्ड ६२ और इसकी समीक्षा हटा दी है। यह मुद्रणप्रति में है। इसको मुंशी समर्थदान ने हटाया है। कारण अज्ञात है। निष्कासन के कारण सभी द्वि०सं० में नहीं हैं।

३. **अपपाठ**—मूलह०, मूलप्रति सं० में ''**अज्ञानियों को लोभ देकर मुहम्मद साहब ने फसाये हैं**'' अपपाठ है। द्वि०सं० में यह समीक्षा-पाठ गृहीत नहीं है।

५,१०. **मुद्रणकाल में आयतखण्ड के पाठ का निष्कासन अनुचित**—द्विप्र०, द्वि०सं० में समीक्षा-सहित यह आयतखण्ड संख्या ६३ हटा दी है। यह मुद्रणप्रति में है। कारण अज्ञात है। इसको मुंशी समर्थदान ने हटाया है, निष्कासन के कारण सभी द्वि०सं० में यह गृहीत नहीं है। महर्षि के देहान्त के बाद मुंशी जी द्वारा उनके लेखन-श्रम को व्यर्थ घोषित करना अवांछनीय है।

६. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, मूलसं० में यहां आयतसंख्याएं ७५, ७७ अशुद्ध, ७९ त्रुटित है। यह द्विप्र० में नहीं है।

७,८. **अपवर्तनी**—मूलह०, मूलप्रति सं० में इस आयत की समीक्षा में आठ बार 'बुत्परस्त' पद का प्रयोग हुआ है जिसमें सात बार ''**बुत्परस्त**'' अशुद्ध वर्तनी है, केवल संख्यांक ८ पर एक बार ''**बुतपरस्त**'' ठीक है। लिपिकर की प्रमादलीला देखिए ''**इसलिये बड़ी.......बुतपरस्त हैं**'' इस वाक्य में एक ही शब्द को मूलप्रति सं० में दो तरह लिखा है—''**बुत्परस्त**'' और ''**बुतपरस्त**''। लिपिकरों ने सम्पूर्ण सत्यार्थप्रकाश में ऐसी ही लीला की है। यह पाठ मुद्रणकाल में द्विप्र० से निष्कासित है। (पृ० ९६२ पर भी टि० संख्या ३ द्रष्टव्य है) वहां भी यही अव्यवस्था है।

समान छोटी-छोटी पाषाणादि की मूर्त्तियों को तो फोड़-तोड़ के अपने घर में से निकाल दिया,[९] परन्तु ऊंट के समान मस्जिद हृदयरूपी घर में प्रविष्ट हो गई। इससे मुसलमान लोग बड़ी हानि को प्राप्त हो गये। जब ये बड़े बुतपरस्त हैं तो किस मुख से दूसरे छोटे बुतपरस्तों का खण्डन कर सकते हैं। हां! पहले आप बुतपरस्ती को छोड़ें, तो अन्य का खण्डन कर सकें॥ ६३ ॥[१०]

६४. जब तेरे पास से निकलते हैं तो तेरे [सामने कहे के] विरुद्ध सोचते[२] हैं, अल्लाह उनकी बात को लिखता है....। ८१। अल्लाह ने उनकी कमाई वस्तु के कारण से उनको उलटा किया, क्या तुम चाहते हो कि अल्लाह के गुमराह किये हुये को मार्ग पर लाओ? बस, जिसको वह गुमराह करे उसको कदाचिदपि मार्ग न पावेगा। ८८। मं० १। सि० ५। सू० ४। आ० ८१। ८८॥[३]

समीक्षक—जो अल्लाह बातों को लिख बही-खाता बनाता जाता है, तो सर्वज्ञ नहीं; और जो सर्वज्ञ है तो लिखने का क्या काम? और जो मुसलमान कहते हैं कि शैतान ही सबको बहकाने से दुष्ट हुआ है, तो जब ख़ुदा ही जीवों को गुमराह करता है, तो ख़ुदा और शैतान में क्या भेद रहा? हां, इतना भेद कह सकते हैं कि ख़ुदा बड़ा शैतान [और][४] वह फरिश्ता छोटा शैतान [है];[५] क्योंकि मुसलमानों का यही[६] कौल[७] है कि जो बहकाता है वही शैतान है, तो इस प्रतिज्ञा से ख़ुदा को भी शैतान बना दिया॥ ६४॥

६५. ....और अपने हाथों को न रोकें, तो उनको पकड़ लो और जहाँ पाओ मार डालो...। ९१। मुसलमानों को मुसलमान का मारना योग्य नहीं, जो कोई अनजाने से मार डाले....। बस, एक गर्दन मुसलमान का छोड़ना है..... और खून बहा उन लोगों की ओर साई हुई जो उस क़ौम[८] से होवें,[९]

---

९. **अपवाक्य**—मूलह०, मूलप्रति सं० में ''**मूर्त्तियों को तो......घर में से निकाल दी**'' अपवाक्य है। द्विप्र० में यह पाठ नहीं है।

१,२. **अपवर्तनी तथा त्रुटित आवश्यक पाठ**—द्विप्र०, द्वि०सं० में ''**शोचते**'' अपपाठ है। हिन्दी व्याकरण के अनुसार हिन्दी में यह क्रिया ''**शोक करने**'' अर्थ में प्रचलित हैं। अत: ''**सोचते**'' ग्राह्य है। अन्यत्र यही प्रयोग है। आयत के सही अर्थ के लिए बृ० कोष्ठकान्तर्गत पाठ जोड़ना आवश्यक है। इसके बिना आयत का सहीभाव प्रकट नहीं होता है।

३. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, भद, मूलप्रति सं० में आयतों की ८०, ८७ संख्याएं अशुद्ध हैं।

४. **त्रुटित आवश्यक पद**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में यहां वाक्यरचना की दृष्टि से ''**और**'' योजक आवश्यक है।

५. **त्रुटित आवश्यक क्रिया**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**है**'' क्रिया त्रुटित है। इसका वाक्यपूर्ति के लिए होना आवश्यक है।

६. **अपमुद्रित पद**—द्विप्र०, द्वि०सं० में ''**यही**'' के स्थान पर ''**ही**'' पाठ प्राप्त है। यह द्विप्र० में अपमुद्रण से हुई अशुद्धि है। अगले ''**वही**'' के सम्बन्ध से मूलप्रति सं० का ''**यही**'' पद ग्राह्य है। दोनों हस्तलेखों में शुद्ध प्रयोग है। द्वि०सं० पर आधारित सभी संस्करणों में यही अपप्रयोग है। किन्तु कथित दश विद्वानों द्वारा सम्पादित उदयपुर सं० पर आश्चर्य है कि उसके समक्ष शुद्ध और अपमुद्रित दोनों पाठ विचारार्थ थे किन्तु उसने अपमुद्रित ''**ही**'' पाठ को ग्रहण किया है। यहां तक कि दोनों हस्तलेखों के शुद्ध पद की भी उपेक्षा कर दी।

७. **कौल**=प्रतिज्ञा, प्रण, कथन।

८,१०. **अपवर्तनी**—दोनों हस्तस्लेखों में आयत के पहले स्थान पर ''**को**'' लिखा गया है, ''**कोम**'' त्रुटित है। दूसरे स्थान पर ''**कोम**'' अपवर्तनी है। यही द्विप्र० में है। अन्य सभी सं० में संशोधित है।

९. **भ्रष्ट पाठ-परम्परा की हास्यास्पद कहानी**—यह बात ठीक है कि जिस भी किसी मौलवी का किया यह अनुवाद है वह अस्पष्ट और अपूर्ण है। लिपिकरों और सम्पादकों के हाथ में आकर यह निरन्तर बिगड़ता गया। देखिए—

दोनों हस्तलेख—''**खून बहा उन लोगों की और सोई हुई जो उसको से होयें।**'' यह पाठ महा-अशुद्ध है।

द्विप्र०—''**खून बहा उन लोग की ओर से हुई जो उस कोम से होवे।**'' यह पाठ भी महा-अशुद्ध है।

तुम्हारे लिये दान कर देंगे, जो दुश्मन की क़ौम[१०] से हैं। ९२। और जो कोई मुसलमान को जानकर मार डाले वह सदैव काल दोज़ख़ में रहेगा। उस पर अल्लाह का क्रोध और लानत[१] है। ९३।

मं० १। सि० ५। सू० ४। आ० ९१।९२।९३॥[२]

समीक्षक—अब देखिये महा-पक्षपात की बात कि जो मुसलमान न हो, जहाँ पाओ मार डालना और मुसलमानों को न मारना!! **भूल से मुसलमानों के मारने में प्रायश्चित्त और अन्य को मारने से बहिश्त मिलेगा, ऐसे उपदेश को कुए में डालना चाहिये। ऐसे-ऐसे पुस्तकों, ऐसे-ऐसे पैग़म्बरों, ऐसे-ऐसे ख़ुदाओं और ऐसे-ऐसे मतों से सिवाय हानि के लाभ कुछ भी नहीं,[३] ऐसों का न होना अच्छा और ऐसे प्रामादिक मतों से बुद्धिमानों को अलग रहकर वेदोक्त सब बातों को मानना चाहिये, क्योंकि उसमें असत्य किञ्चिन्मात्र भी नहीं है।** और जो मुसलमान को मारे उसको दोज़ख़ मिले, लिखा है[४]; और दूसरे मतवाले कहते हैं कि मुसलमान को मारे तो स्वर्ग मिले। अब कहो, इन दोनों मतों में से किसको मानें, किसको छोड़ें? किन्तु **ऐसे मूढ़-प्रकल्पित मतों को छोड़कर वेदोक्त मत सब मनुष्यों के लिये स्वीकार करने योग्य है[५] कि जिसमें आर्य मार्ग अर्थात् श्रेष्ठ पुरुषों के मार्ग में चलना और**

स्वामी वेदानन्द जी, सिद्धान्ती जी और **पं० भगवद्दत्त जी सं०**—''**खून बहा उन लोगों की ओर से हुई जो उस कौम से होवे।**'' महाअशुद्ध है।

पं० युधिष्ठिर मीमांसक सं०—''**[जो] खून बहा उन लोगों की ओर से हुई जो [सन्धि] उस क़ौम से होवे।**'' अशुद्ध है।

वर्तमान द्वितीय संस्करण—''**खून बहा उन लोगों की ओर सौंपी हुई जो उस क़ौम से होवें।**'' (यही पाठ पं० रामचन्द्र जी देहलवी द्वारा स्वीकृत है)। **उदयपुर सं०** ने इसी संशोधित पाठ को, बिना टिप्पणी दिये ग्रहण किया है, हस्तलेखों और द्वितीय सं० के पाठ को यहां ग्रहण नहीं किया। यह उनके स्वैच्छिक सम्पादन का उदाहरण है।

अज्ञानता के कारण लिपिकरों द्वारा ''**सोई हुई**'' लिखने से यहां अनर्थ बन गया। **द्विप्र०** में ''**सोई**'' पद को ही हटा दिया। शायद, यह शोधकों के समझ में ही नहीं आया। उससे द्विप्र० में वाक्य निरर्थक बन गया। यही निरर्थकता **वेस, जग, भद सं०** में है। **पं० मीमांसक जी** का भाव ही स्पष्ट नहीं कि वे कहना क्या चाह रहे हैं। उनका संशोधन ही अटपटा है। वस्तुत: यह ''**साई हुई**'' प्रयोग है, जिसका अर्थ होता है 'वचनबद्ध होना' या 'सन्धिबद्ध होना'। जैसे आज भी व्यवहार में प्रयुक्त होता है—'**साई देना**' आदि। किन्तु इस अर्थ की संगति उपर्युक्त अनुवाद से नहीं बनती। वर्तमान अनुवादों में यही अर्थ लेकर यह अनुवाद दिया है कि 'जिस कौम से सन्धि हुई है उसका वध नहीं करना।' आयत में ''साई हुई'' का अर्थ लगेगा ''पेश की हुई'' द्वि०सं० में इस भाव को ''**सौंपी हुई**'' पाठ से स्पष्ट किया है। इस सं० में हस्तलेखों में प्राप्त प्रयोग के शुद्ध रूप को ग्रहण किया है।

१. **लानत**=फटकार, धिक्कार।

२. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र० में यहां आयतसंख्या ९० अशुद्ध है और ९३ त्रुटित है। भद में भी ९० अशुद्ध संख्या है, ९३ त्रुटित है।

३. **अपूर्ण पाठ-संशोधन**—मूलह०, मूलप्रति सं० में इस वाक्य में ''**ऐसे-ऐसे पुस्तक**'' के बाद प्रत्येक संज्ञा शब्द के पूर्व एक बार ''**ऐसे**'' पद का प्रयोग है। द्विप्र०, द्वि०सं० में सभी संज्ञा शब्दों के पूर्व दो बार ''**ऐसे-ऐसे**'' पाठ बनाया है। इस संशोधन से अर्थ में व्यापकता आई है, अत: वह ग्राह्य है, किन्तु संशोधक को यह ध्यान नहीं रहा कि इस संशोधन के बाद वाक्य की सभी संज्ञाएं बहुवचनान्त बन जायेंगी। अत: व्याकरण की दृष्टि से वह पाठ अशुद्ध बन गया। शुद्धता की दृष्टि से उपर्युक्त पाठ ग्राह्य है। देखिए, अगली ही पंक्ति में ''**ऐसे प्रामादिक मतों से**'' बहुवचन का प्रयोग है, जो शुद्ध है।

४. **लिपिकर के प्रमाद से पाठ-निष्कासन**—मूलह०, मुद्रणह०, मूलसं० में यह वाक्य इस प्रकार है—''**जो मुसलमान को मारे उसको दोज़ख मिले और दूसरे मतवाले कहते हैं कि मुसलमान को मारे तो स्वर्ग मिले, लिखा है।**'' यहां ''**लिखा है**'' अस्थान में है। द्विप्र०, द्वि०सं० वाले ने इसको अस्थान में देखकर निकाल ही दिया जो शोधकों की लापरवाही का सूचक है। यह लिपिकरों की भूल से दूसरे वाक्य, के बाद लिखा गया। उसके कारण पहला वाक्य अपूर्ण और दूसरा अटपटा बन गया।

५. **अपपाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में यह वाक्य, शायद, बोलते समय अव्यवस्थित हो गया है—''**वेदोक्त मत स्वीकार करने योग्य सब मनुष्यों के लिये है।**'' इसको ऊपर व्यवस्थित क्रम में कर दिया है जिससे यह वाक्य उपयुक्त बन गया है।

दस्यु अर्थात् दुष्टों के मार्ग से अलग रहना लिखा है, सर्वोत्तम है॥ ६५ ॥

६६. और शिक्षा प्रकट होने के पीछे जिसने रसूल से विरोध किया और मुसलमानों से विरुद्ध पक्ष किया, अवश्य हम उसको दोज़ख़ में भेजेंगे। ११५। मं० १। सि० ५। सू० ४। आ० ११५॥[१]

समीक्षक—अब देखिये ख़ुदा और रसूल की पक्षपात की बातें! मुहम्मद साहब आदि समझते थे कि जो ख़ुदा के नाम से ऐसी [बातें][२] हम न लिखेंगे तो अपना मज़हब न बढ़ेगा और पदार्थ न मिलेंगे, आनन्द भोग न होगा। इसी से विदित होता है कि वे अपने मतलब [सिद्ध][३] करने में पूरे थे और अन्य के प्रयोजन बिगाड़ने में। इससे वे अनाप्त थे। उनकी बात का प्रमाण आप्त विद्वानों के सामने कभी नहीं हो सकता॥ ६६ ॥

६७. .....जो अल्लाह, रसूलों, फरिश्तों, किताबों और क़यामत[४] के साथ कुफ़्र करे निश्चय वह गुमराह है। १३६। निश्चय जो लोग ईमान लाये फिर काफ़िर हुए फिर-फिर ईमान लाये, पुनः फिर गये[५] और कुफ़्र में अधिक बढ़े। अल्लाह उनको कभी क्षमा न करेगा और न मार्ग दिखलावेगा॥ १३७॥

मं० १। सि० ५। सू० ४। आ० १३६। १३७॥[६]

समीक्षक—क्या अब भी ख़ुदा 'लाशरीक' रह सकता है? क्या 'लाशरीक' कहते जाना और उसके साथ बहुत से 'शरीक' भी मानते जाना, यह परस्पर-विरुद्ध बात नहीं है? क्या तीन वार क्षमा के पश्चात् ख़ुदा क्षमा नहीं करता? और तीन वार कुफ़्र करने पर रास्ता दिखलाता है? वा चौथी वार से आगे नहीं दिखलाता? यदि चार-चार वार भी कुफ़्र सब लोग करें, तो कुफ़्र बहुत ही बढ़ जावे॥ ६७॥

६८. .....निश्चय अल्लाह बुरे लोगों को और काफ़िरों को जमा करेगा दोज़ख़ में। १४०। निश्चय बुरे लोग धोखा देते हैं अल्लाह को और उनको वह धोखा देता है। १४२। ऐ ईमानवालो! मुसलमानों को छोड़ काफ़िरों को मित्र मत बनाओ.....। १४४।

मं० १। सि० ५। सू० ४। आ० १४०। १४२। १४४॥[७]

समीक्षक—मुसलमानों के बहिश्त और अन्य लोगों के दोज़ख़ में जाने का क्या प्रमाण? वाह जी वाह! जो बुरे लोगों के धोखे में आता और अन्य को धोखा देता है ऐसा ख़ुदा हम से अलग रहे; किन्तु जो धोखेबाज़ हैं उनसे जाकर मेल करे और वे उससे मेल करें। क्योंकि—

''यादृशी शीतला देवी तादृशो वाहनःखरः।''[८] ='जैसे को तैसा' मिले तभी निर्वाह होता है।[९]

---

१. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, द्विप्र०, भद में यहां आयतसंख्या ११३ अशुद्ध है। मुद्रणह० में १३३ महा-अशुद्ध है।

२-३. **मुद्रणलिपिकर द्वारा त्रुटित पाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में दोनों बृ० कोष्ठक के पद त्रुटित रह गये हैं। ''**मुहम्मद साहब.....हम**'' मुद्रणलिपिकर ने छोड़ दिया। बाद में शोधक ने पूर्ण किया है।

४. **उचित परिवर्धन**—मूलह०, मूलप्रति सं० में '**क़यामत**' पद त्रुटित है। द्विप्र०, द्वि०सं० में जोड़ दिया गया है। कुरान में भी है।

५. **मुद्रणकाल में उचित संशोधन**—मूलह०, मुद्रणह०, मूलप्रति सं० में यहां यह अपूर्ण पाठ है—''**निश्चय जो काफ़िर थे और ईमान लाये, पुनः फिर गये**''। द्विप्र०, द्वि०सं० में इसको संशोधित किया है जो कुरान के अनुसार है, यहां वही गृहीत है।

६. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, भद में यहां आयतसंख्याएं १३४, १३५ अशुद्ध हैं।

७. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—द्विप्र० में यहां आयतसंख्याएं १३८, १४१, १४३; मूलह०, मुद्रणह०, भद में १३८, १४१ अशुद्ध हैं।

८. **अप-उद्धरणपाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में यहां ''**खरवाहनः**'' अपपाठ है। शुद्ध पाठ ''**वाहनः खरः**'' द्रष्टव्य है समु० ११ में पृ० ६८८ पर। वेस, जग, भद, युमी, विस, उदयपुर सं० में अशुद्ध पाठ है।

जिसका ख़ुदा धोखेबाज़ है उसके उपासक मुसलमान लोग धोखेबाज़ क्यों न हों? तभी तो मुसलमान लोग धोखा देने में तत्पर रहते हैं।[१] क्या दुष्ट मुसलमान हो उससे मित्रता और मुसलमान-भिन्न अन्य श्रेष्ठ से शत्रुता करना, किसी को उचित हो सकता है?[२] ॥ ६८ ॥

६९. ऐ लोगो! निश्चय तुम्हारे पास सत्य के साथ ख़ुदा की ओर से पैग़म्बर आया, बस, तुम उन पर ईमान लाओ। १७०। ....अल्लाह माबूद[३] अकेला है....। १७१।

मं० १। सि० ६। सू० ४। आ० १७०। १७१ ॥[४]

समीक्षक—क्या जब पैग़म्बरों पर ईमान लाना लिखा, तो ईमान में पैग़म्बर ख़ुदा का शरीक अर्थात् साझी हुआ वा नहीं? जब अल्लाह एकदेशी है, व्यापक नहीं, इसी से उसके पास से पैग़म्बर आते-जाते हैं; तो वह ईश्वर भी नहीं हो सकता। कहीं सर्वदेशी लिखते हैं, कहीं एकदेशी। **इससे विदित होता है कि 'क़ुरान' एक का बनाया नहीं, किन्तु बहुतों ने मिलके बनाया है**॥ ६९ ॥

७०. तुम पर हराम किया गया मुर्दार, लोहू, सुअर का मांस, जिस पर अल्लाह के विना कुछ और पढ़ा जावे, गला घोटे [हुए], लाठी से मारे, ऊपर से गिर पड़े, सींग से मारे [हुए] और गोश्त खाने वाले[५] [जानवर से खाये हुए][६].....। ३। मं० २। सि० ६। सू० ५। आ० ३ ॥[७]

समीक्षक—क्या इतने ही पदार्थ हराम हैं? अन्य बहुत-से पशु तथा तिर्यक् जीव कीड़ी आदि मुसलमानों को हलाल होंगे? इसलिये यह मनुष्यों की कल्पना है, ईश्वर की नहीं। इससे इसका प्रमाण भी नहीं[८] ॥ ७० ॥

७१. ....और अल्लाह को अच्छा[९] उधार दो अवश्य, मैं तुम्हारी बुराई दूर करूंगा और तुम्हें बहिश्त में भेजूंगा....। १२।[१०] मं० २। सि० ६। सू० ५। आ० १२ ॥[११]

---

९. **श्लोकार्थ**—जैसी मूर्ख शीतलादेवी है, वैसी ही उसकी सवारी **खर**=गधा है, अर्थात् दोनों एक जैसे हैं।

१. **मुद्रणकालीन त्रुटित वाक्य**—यह वाक्य मूलहस्त०, मुद्रणहस्त० तथा मूलप्रति सं० में विद्यमान है। मुद्रण-काल में यह त्रुटित रहा है। उदयपुर संस्करण में भी यह वाक्य त्रुटित है। शायद, कठोरवचन होने के कारण मुंशी समर्थदान जी ने जानबूझकर भी निकाला हो। यदि यह कारण है तो यह उचित नहीं है।

२. **अपपाठ**—दोनों हस्त० और द्विप्र० में यह रचनात्मक अपपाठ है—"**शत्रुता करना किसी को उचित हो सकती है?**" द्वि०सं०, मूलसं०, वेस, जग, जस, भद में संशोधित है किन्तु पं० मीमांसक सं० में अशुद्ध पाठ है। उदयपुर सं० में भी अशुद्ध है।

३. **माबूद**=पूज्य ईश्वर।

४. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, भद, यहां आयतसंख्याएं १६७, १६८ अशुद्ध है।

५. **मीमांसक जी का घोर अशुद्ध अर्थ**—द्वि० सं में "**गोश्त खाने वाले [जानवर से खाये हुए]**" के स्थान पर "**दरिंदे**", (द्विप्र०, द्वि०सं० में 'दरंदे' अपवर्तनी है) शब्द डाला है, जिसका अर्थ यही है। **पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक** ने टिप्पणी में "**दरिन्दे**" का अर्थ "**पक्षी**" किया है (पृ० ८७९ पर) जबकि इसका अर्थ होता है "**शरीर को फाड़कर मांस खानेवाले जंगली जानवर**"। पं० जी की इस अशुद्धि पर आश्चर्य ही किया जा सकता है।

६. **उचित परिवर्धन**—मूलप्रति सं० में बृहत् कोष्ठक का पाठ त्रुटित हैं। कुरान में हैं। द्विप्र० आदि में भी उपलब्ध है।

७. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, भद, द्विप्र० में यहां आयतसंख्या १ अशुद्ध है।

८. **पुनरुक्ति हराम पशुओं की**—यही कथन आयतखण्ड संख्या ३६ में भी द्रष्टव्य है।

९. **उचित परिवर्धन**—मूलह०, मूलप्रति सं० में यहाँ "**अच्छा**" पद त्रुटित है। कुरान और द्वि० सं० में हैं।

१०. **अल्लाह से दोगुना मिलने की पुनरुक्ति**—द्रष्टव्य आयतखण्ड संख्या ४२, १५५।

११. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, भद में यहां आयतसंख्या १० अशुद्ध लिखी है।

समीक्षक—वाह जी! मुसलमानों के खुदा के घर में कुछ भी धन-विशेष[१] नहीं रहा होगा, जो विशेष होता तो उधार क्यों मांगता? और उनको क्यों बहकाता कि तुम्हारी बुराई छुड़ाके तुमको स्वर्ग में भेजूंगा? यहां विदित होता है कि खुदा के नाम से मुहम्मद साहब ने अपना मतलब साधा है॥ ७०॥

७२. ....जिसको चाहता है पुण्यात्मा बनाता है जिसको चाहे पापात्मा बना देता है[२]...। १८। ....जो कुछ किसी को भी न दिया वह तुम्हें दिया। २०। मं० २। सि० ६। सू० ५। आ० १८। २०॥[३]

समीक्षक—जैसे शैतान जिसको चाहता पापी बनाता [है], वैसे मुसलमानों का ख़ुदा भी [विना पाप के दुःख देकर][४] शैतान का काम करता है। जो ऐसा है, तो फिर बहिश्त और दोज़ख़ में ख़ुदा जावे, क्योंकि वह पाप-पुण्य करनेवाला हुआ, जीव पराधीन है; जैसे,[५] सेना सेनापति के आधीन रक्षा करती और किसी को मारती है, उसकी भलाई-बुराई सेनापति की होती है, सेना पर नहीं॥ ७२॥

७३. काफ़िरों पर ग़म मत खा। २६।[६] मं० २। सि० ६। सू० ५। आ० २६॥[७]

समीक्षक—क्या अधर्म और पक्षपात की बात है कि जो मुसलमान न हो उस पर ग़म न खाना और मुसलमानों पर ग़म खाना! [यह] केवल अधर्म की बात है॥ ७३॥[८]

७४. आज्ञा मानो अल्लाह की और आज्ञा मानो रसूल की, ...। ९२।[९]

मं० २। सि० ७। सू० ५। आ० ९२॥[१०]

समीक्षक—देखिये, यह बात ख़ुदा के 'शरीक' होने की है, फिर ख़ुदा को 'लाशरीक' मानना व्यर्थ है॥ ७४॥

---

१. **धन-विशेष**—पर्याप्त धन।

२. **मुद्रणकाल में आयत-अनुवाद संशोधन किन्तु अशुद्ध समीक्षा से विसंगति**—मूलह०, मूलसं०, द्विप्र०, द्वि०सं० में इस आयत को शुद्ध करके सही अनुवाद दे दिया है, किन्तु समीक्षा अशुद्ध अनुवाद पर ही आधारित रह गई है **''जैसे शैतान जिसको चाहता पापी बनाता वैसे ही मुसलमानों का खुदा भी शैतान का काम करता है।''** प्रतीत होता है कि द्विप्र० में संशोधक समीक्षा का संशोधन करना भूल गया। मुद्रणहस्त० में यह आयत-अनुवाद-संशोधित नहीं है। वेस, जग, भद, युमी, विस, जस, उदयपुर में यही विसंगति है।

द्विप्र० का परिवर्तित अनुवाद—**''जिसको चाहता है क्षमा करता है जिसको चाहे दुःख देता है।''** इस आयत-अनुवाद को ग्रहण करना इसलिये संभव नहीं है क्योंकि उपलब्ध समीक्षा का इससे तालमेल नहीं है। हस्तलेखों में प्रस्तुत आयत-अनुवाद ही ग्रहण करना होगा, नहीं तो एक नयी विसंगति उत्पन्न हो जायेगी, अपितु यह विसंगति सभी द्वि०सं० में पहले से बनी हुई है। किसी सम्पादक ने इस विसंगति की ओर ध्यान नहीं दिया। वाक्यान्त में दोनों हस्त० और तीनों सं० में **''है''** क्रिया त्रुटित है।

३. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, द्विप्र० में यहां संख्या १६ अशुद्ध है और २० त्रुटित है। मुद्रणह०, भद में १६-१८ भ्रष्ट संख्या है।

४. **त्रुटित आवश्यक पाठ**—इस वाक्य में दोनों बृ० कोष्ठकों के पाठों का परिवर्धन आवश्यक है।

५. **अपप्रयोग**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में **''जैसी''** अपप्रयोग है। **''जैसे''** प्रयोग वांछित है।

६,८. **मुद्रणकाल में आयत पाठ-निष्कासन अनुचित**—द्विप्र०, द्वि०सं० में इस आयत की क्रमसंख्या ७३ को समीक्षा-सहित निकाल दिया गया है। कारण अज्ञात है। इसमें कुरान के पक्षपातपूर्ण यथार्थ का वर्णन है। मुंशी समर्थदान जी ने मुद्रण-समय में इसको हटाया है, इसी कारण सभी द्वि०सं० में यह नहीं है।

७. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह० में आयतसंख्या २३ अशुद्ध है। मूलसं० में २५ अशुद्ध है। द्विप्र० में यह नहीं है।

९. **मूलहस्तलेख में आयत का अप-अनुवाद**—मूलह०, मूलप्रति सं० में इस आयत का किसी मौलवी कृत अशुद्ध अनुवाद है— **''सेवा करो अल्लाह की और रसूल की, और रसूल का कहा मानो।''** इसके अनुवाद को द्विप्र० में एवं द्वि०सं० में उपर्युक्त भाषा में संशोधित कर दिया है। कुरान में वही पाठ है। अतः वही ग्राह्य है।

१०. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, भद में यहां आयतसंख्या ८९ अशुद्ध है।

७५. ....अल्लाह ने माफ़ किया जो हो चुका, और जो कोई फिर करेगा अल्लाह उससे बदला लेगा। ९५। मं० २। सि० ७। सू० ५। आ० ९५॥[१]

समीक्षक—किये हुए पापों का क्षमा करना जानो पापों को करने की आज्ञा देके बढ़ाना है। पाप-क्षमा करने की बात जिस पुस्तक में हो, वह न ईश्वर और न किसी विद्वान् का बनाया है, किन्तु पापवर्द्धक है। **हां, आगामी पाप छुड़वाने के लिये किसी से प्रार्थना और स्वयं छोड़ने के लिये पुरुषार्थ, पश्चात्ताप करना उचित है; परन्तु केवल पश्चात्ताप करता रहे, छोड़े नहीं, तो भी कुछ नहीं हो सकता॥ ७५॥**

७६. और उस मनुष्य से अधिक पापी कौन है जो अल्लाह पर झूठ बांध लेता है और कहता है कि मेरी ओर वही[२] की गई और जो कहता है कि मैं भी उतारूंगा कि जैसे अल्लाह उतारता है......। ९४।[३] मं० २। सि० ७। सू० ६। आ० ९४॥[४]

समीक्षक—इस बात से सिद्ध होता है कि जब मुहम्मद साहब कहते थे कि मेरे पास ख़ुदा की ओर से आयतें आती हैं तब किसी दूसरे ने भी मुहम्मद साहब के तुल्य लीला रची होगी कि मेरे पास भी आयतें उतरती हैं, मुझको भी पैगम्बर मानो; उसको हटाने के और अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिये मुहम्मद साहब ने यह उपाय किया होगा॥ ७६॥

७७. अवश्य हमने तुमको उत्पन्न किया, फिर तुम्हारी सूरतें बनाई। [फिर] फ़रिश्तों से कहा कि ''आदम को सिज्दा[५] करो।'' बस, उन्होंने सिज्दा किया परन्तु शैतान सिज्दा करनेवालों में से न हुआ। ११। कहा, ''जब मैंने तुझे आज्ञा दी फिर किसने रोका कि तूने सिज्दा न किया।'' कहा, ''मैं उससे अच्छा हूं, तूने मुझको आग से और उसको मिट्टी से उत्पन्न किया। १२।'' कहा, ''बस उसमें से उतर, यह तेरे योग्य नहीं है कि तू उसमें अभिमान करे। १३। कहा, ''उस दिन तक ढील दे कि [लोग] क़ब्रों से उठाये जावें। १४।'' कहा, ''निश्चय तू ढील दिये गयों से है। १५।'' कहा, ''बस इसकी क़सम है कि तूने मुझको गुमराह किया। अवश्य मैं उनके लिये तेरे सीधे मार्ग पर बैठूंगा। १६। .....और प्रायः तू उनको धन्यवाद करनेवाला न पावेगा। १७।'' कहा, ''उससे दुर्दशा के साथ निकल।

---

१. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, भद, द्विप्र० में यहां आयतसंख्या ९२ अशुद्ध है।

२. **वही करना** (वह्य, वह्इ)=अल्लाह की ओर से किसी पैगम्बर के हृदय में संदेश उतरना, या दिव्य वाणी होना।
पं० मीमांसक जी की विचित्र टिप्पणी—**युधिष्ठिर जी मीमांसक** ने टिप्पणी में (पृ० ८८१) '**वही**' का अर्थ '**पुस्तक**' किया है, शायद, वे ध्वनि-समानता से ऐसा लिख गये। यह कथन अस्वीकार्य है। इस्लामी मत में यह एक निश्चितार्थक पारिभाषिक शब्द है जिसका अर्थ पुस्तक नहीं अपितु '**खुदा की ओर से पैगम्बर को अन्तःकरण में प्राप्त आदेश और शिक्षा**' होता है। जैसे मुसलमान मानते हैं कि खुदा की ओर से हज० मुहम्मद को आयतें हृदय में संदेश के रूप में प्राप्त होती थीं। इसी प्रक्रिया का नाम 'वही करना या उतरना' है। उर्दू कोष में इसका अर्थ है—''ईश्वर की ओर से आया हुआ पैगम्बर के लिए आदेश'' (मुहम्मद मुस्तफा खां, पृ० ६१३)।

३. **वही की पुनरुक्ति**—द्रष्टव्य आयतखण्ड संख्या १२६ भी।

४. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—इस आयत की संख्या द्विप्र०, उदयपुर सं० में ९३ अशुद्ध लिखी है। मूलह०, मूद्रणह०, भद में ९५ लिखी है, जो अशुद्ध है।

५. **सिज़्दा (सिज्दः) की पुनरुक्ति**=ईश्वर या किसी के सामने सिर झुकाना, प्रणाम करना, या नमाज में धरती पर मस्तक नवाना। आयतखण्ड संख्या ११ में भी इसी प्रकार आदम को सिज़्दा करने का कथन है। यहाँ उसकी पुनरुक्ति है।

अवश्य जो कोई उनमें से तेरा पक्ष करेगा तुम सबसे दोज़ख़ को भरूंगा। १८।''

मं० २। सि० ८। सू० ७। आ० ११।१२।१३।१४।१५।१६।१७।१८॥[१]

समीक्षक—अब ध्यान देकर सुनो ख़ुदा और शैतान के झगड़े को! एक फ़रिश्ता जैसा कि चपरासी हो, [शैतान] था। वह भी ख़ुदा से न दबा और ख़ुदा उसके आत्मा को पवित्र भी न कर सका। फिर ऐसे बागी को, जो पापी बनाकर ग़दर करनेवाला था, उसको ख़ुदा ने छोड़ दिया। यह ख़ुदा की बड़ी भूल है। शैतान तो सबको बहकानेवाला और ख़ुदा शैतान को बहकानेवाला होने से यह सिद्ध होता है कि शैतान का भी शैतान ख़ुदा है; क्योंकि शैतान प्रत्यक्ष कहता है कि तूने मुझे गुमराह किया। इससे ख़ुदा में पवित्रता भी नहीं पाई जाती और सब बुराइयों का चलानेवाला मूल कारण ख़ुदा हुआ। ऐसा ख़ुदा मुसलमानों का ही ख़ुदा हो सकता है,अन्य श्रेष्ठ विद्वानों का नहीं। और फ़रिश्तों से मनुष्यवत् वार्तालाप करने से देहधारी, अल्पज्ञ, न्यायरहित मुसलमानों का ख़ुदा है। इसी से बुद्धिमान् लोग इस्लाम[२] के मज़हब को प्रसन्न नहीं करते॥७७॥

७८. निश्चय तुम्हारा मालिक अल्लाह है जिसने आसमानों और पृथिवी को छः दिन में उत्पन्न किया, फिर करार पकड़ा अर्श[३] पर। ५४। दीनता से अपने मालिक को पुकारो....। ५५।[४]

मं० २। सि० ८। सू० ७। आ० ५४।५५॥[५]

समीक्षक—भला, जो छः दिन में जगत् को बनावे, अर्श अर्थात् ऊपर के आकाश में सिंहासन पर आराम करे, वह ईश्वर सर्वशक्तिमान् और व्यापक कभी नहीं हो सकता। इनके न होने से वह ख़ुदा भी नहीं कहा सकता। क्या तुम्हारा ख़ुदा बधिर है जो पुकारने से सुनता है? ये[६] सब बातें अनीश्वरकृत हैं, इससे '**क़ुरान**' ईश्वरकृत नहीं हो सकता। यदि छः दिनों में जगत् बनाया, सातवें दिन अर्श पर आराम किया तो थक भी गया होगा। और अब तक सोता है वा जागा है? यदि जागता है तो अब कुछ काम करता है वा निकम्मा सैल-सपट्टा और ऐश करता फिरता है॥७८॥

७९. ....मत फिरो पृथिवी पर झगड़ा करते। ७४। मं० २। सि० ८। सू० ७। आ० ७४॥[७]

समीक्षक—यह बात तो अच्छी है, परन्तु इससे विरुद्ध जिहाद करना [और][८] काफ़िरों को मारना भी लिखा है। अब कहो, क्या यह पूर्वापरविरुद्ध[९] नहीं है? इससे यह विदित होता है कि जब मुहम्मद

---

१. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मुद्रणह०, द्विप्र०, भद में यहां आयतसंख्या १० अशुद्ध है तथा १८ त्रुटित है।

२. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में **''इसलाम''** अपवर्तनी है।

३. **अर्श**=आकाश, सिंहासन अथवा ईश्वर का सिंहासन।

४. **छह दिन में सृष्टि-उत्पत्ति की पुनरुक्ति**—द्र० आयतखण्ड संख्या ९७, १५१। बाइबल में—समु० १३ में आयत० ४५ और 'उत्पत्ति' पुस्तक में पर्व एक।

५. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, भद में यहां आयतसंख्या ५३ अशुद्ध है तथा ५५ त्रुटित है।

६. **त्रुटित पद**—द्वि० सं० में **'ये'** पद त्रुटित है। मुद्रणह०, द्विप्र०, मूलह०, मूलसं में है।

७. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, भद में यहां आयतसंख्या ७३ अशुद्ध है।

८. **त्रुटित आवश्यक पद**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में **'और'** पद त्रुटित है। यह आवश्यक है।

९. **कुरान में परस्परविरोध**—इस आयत के विरुद्ध खण्डसंख्या ३७, ५६, ५८, ६२, ६४, ८७, ९१, ९५, १२४ आयतें हैं, जिनमें मुसलमानों को काफिरों या अन्य मतवालों से खूब लड़ने का आदेश है, लड़ाई में लगे रहने और उनको मारने का आदेश है जबकि

साहब निर्बल हुए होंगे तब यह उपाय रचा होगा और जब सबल हुए होंगे, झगड़ा मचाया होगा। इसी से ये बातें झूठी हैं[१] ॥७९॥

८०. बस, एक ही वार अपना असा[२] डाल दिया और वह अजगर था प्रत्यक्ष। १०७।

मं० २। सि० ९। सू० ७। आ० १०७॥[३]

समीक्षक—अब इसके लिखने से विदित होता है कि ऐसी झूठी बातों को ख़ुदा और मुहम्मद साहब भी मानते थे। जो ऐसा है तो ये दोनों विद्वान् नहीं थे, क्योंकि जैसे आँख से देखने और कान से सुनने को अन्यथा कोई नहीं कर सकता! इसी से ये इन्द्रजाल की बातें हैं॥८०॥

८१. ....अवश्य हम क़त्ल[४] करेंगे बेटों उनके को, और जीती रक्खेंगे बीबियों[५] उनकी को। १२७।[६]

उक्त आयत में झगड़ा करने का स्पष्टतः निषेध है। इस प्रकार दोनों कथन ये परस्परविरुद्ध हैं।

१. **मुद्रणकाल में भ्रष्ट परिवर्तन**—द्विप्र० में इस वाक्य का परिवर्तन इस प्रकार किया है—**''इसी से ये बातें परस्परविरुद्ध होने से दोनों सत्य नहीं है।''** मूलह०, मुद्रणह०, मूलप्रति सं० में ग्रन्थकार का कथन है कि कुरान में इस प्रकार की परस्परविरुद्ध बातें हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि **'झगड़ा न करनेवाला कथन'** झूठा है। द्विप्र० के परिवर्तन ने झगड़ा करने और न करने के दोनों कथनों को असत्य कह दिया जबकि झगड़ा करने का कुरान का कथन सर्वथा सत्य है। यदि दोनों ही कथन असत्य हैं तो ग्रन्थकार ने जो कुरान के 'झगड़ा करने' के आदेश के विरुद्ध समीक्षाएं लिखी हैं, वे भी व्यर्थ हो गईं अर्थात् असत्य हो गईं। फिर तो उनकी समीक्षा करनी ही अवांछनीय है। इस प्रकार ग्रन्थकार के अभिप्राय के विरुद्ध होने से यह संशोधन भ्रष्ट कोटि का है। मुद्रणकाल में यह परिवर्तन शायद मुंशी जी ने किया है। लेख उन्हीं का ज्ञात होता है।

सम्पादकों द्वारा भ्रष्टपाठ का ग्रहण—द्वि०सं० और उस पर आधारित सभी संस्करणों, जैसे—वेस, जग, भद, युमी, विस, जस आदि में द्विप्र० का भ्रष्टपाठ है। कथित दश विद्वानों द्वारा सम्पादित उदयपुर सं० के समक्ष शुद्ध-अशुद्ध दोनों पाठों का विकल्प हस्तलेखों और मूलसं० में विद्यमान था किन्तु उन्होंने अशुद्ध पाठ को ग्रहण किया है। महर्षि के निर्णय के उपरान्त परिवर्तित इस पाठ के लेखक क्या महर्षि से भी महान् हो गये कि उनका परिवर्तित पाठ महर्षि के लेख से अधिक प्रामाणिक हो गया?

२. **असा**—लाठी या छड़ी। यहां 'मूसा' द्वारा किया गया यह असम्भव चमत्कार वर्णित है। मूसा और उसकी 'इब्रानी' जाति के लोग मिश्र में राजा फ़िरौन के शासन के अन्तर्गत गुलामी का जीवन बिता रहे थे। मूसा इस बात से व्यथित था। वह स्वयं को यहोवा (यह्वः=महान् ईश्वर) का अवतार घोषित करने के उपरान्त फ़िरौन के पास गया और अपनी जाति के लोगों को मिश्र से निकाल ले जाने की अनुमति मांगी। फ़िरौन ने निषेध कर दिया। तब मूसा ने फ़िरौन को डराने के लिए यह कथित चमत्कार दिखाया कि लाठी भूमि में डालते ही वह अजगर बन गया, यह वर्णन बाइबल और कुरान दोनों में है। द्रष्टव्य कुरान में आयतखण्ड संख्या १६, ८३, १२८ भी। बाइबल में समु० १३ में आयतखण्ड संख्या ४० में भी यह वर्णन है।

३. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, भद में यहां आयत संख्या १०५ अशुद्ध है।

४. **अपवर्तनी**—मूलप्रति सं० में **'क़तल'** अपवर्तनी है।

५. **बेटों को क़त्ल करने और बीबियों को जीवित रखने का बाइबल में वर्णन**—मूसा और उसकी जातिवालों की ओर से विरोध किये जाने पर अन्यायी शासक फ़िरौन का कथन है कि हम उनकी जाति में उत्पन्न बेटों और पुरुषों को तो क़त्ल करेंगे किन्तु उनकी स्त्रियों को जीवित रखेंगे। यही कथन पृ० ८८५ पर आयतखण्ड ५७ में भी है। बाइबल में भी द्रष्टव्य हैं समु० १३ की आयतखण्ड ५७। अगली आयतों में मूसा के असम्भव चमत्कारों का वर्णन है कि उसने फ़िरौन के राज्य में तूफान ला दिया। फिर वह अपनी 'इसराएल जाति' अर्थात् इस्राएल वंशियों को मिश्र से निकाल ले गया।

६. **मुद्रणकाल में आयत पाठ-निष्कासन सर्वथा अनुचित**—द्विप्र०, द्वि०सं० में **''अवश्य हम क़त्ल......उनकी को''** इस आयतखण्ड ८१ की आयतसंख्या १२७ और इसकी समीक्षा **''भला, जो.....भी होगा?''** को हटा दिया है। आर्यविद्वानों का विचार है कि यह अतिकटु आयत होने के कारण मुंशी जी के द्वारा हटाई गई है। यह कोई सन्तोषजनक कारण नहीं। ऐसी तो अनेक आयतें हैं। तेरहवें समु० में भी इसी बर्बर भाव को व्यक्त करनेवाली बाइबल की आयतखण्ड संख्या ५७ में आ चुकी है। महर्षि यही तो दिखाना चाहते थे कि इन ग्रन्थों में कितनी क्रूरता के आदेश हैं। फिर भी ये अपने पन्थ को धर्म कहते हैं। यदि इसी का नाम धर्म है तो अधर्म किसे कहा जायेगा? मुंशी समर्थदान जी ने इस पाठ को मुद्रण-समय में हटाया है। इसी कारण यह द्वि०सं० पर आधारित वर्तमान संस्करणों में नहीं मिलता। मुंशी जी द्वारा महर्षि के इस महत्त्वपूर्ण श्रम और आशय को व्यर्थ कर देना वांछनीय नहीं है। महर्षि तब जीवित होते तो मुंशी जी को ऐसा कभी नहीं करने देते।

बस, हमने उन पर[१] मेह का तूफ़ान भेजा, टिड्डी,[२] चिचड़ी और मेंढक और लोहू। १३३। बस, उनसे हमने बदला लिया और उनको डुबो दिया दरिया में....। १३६। और हमने बनी-इस्राएल को दरिया से पार उतार दिया....। १३८। निश्चय वह दीन झूठा है कि जिसमें वे हैं और उनका कार्य भी झूठा है। १३९। मं० २। सि० ९। सू० ७। आ० १२७।१३३।१३६।१३८।१३९॥[३]

समीक्षक—भला, जो लड़कों[४] को क़त्ल करे और स्त्रियों को जीता रक्खे, उससे निर्दय, राक्षस स्वभाव-युक्त, विषयासक्त मनुष्य और दुष्टमत दूसरा कोई भी होगा? और देखिये, जैसे[५] कोई पाखण्डी किसी को डरावे कि हम तुझ पर काटने के लिये[६] सर्पों को भेज देंगे, ऐसी ही यह भी बात है। भला, जो ऐसा पक्षपाती [हो][७] कि एक जाति को डुबा दे और दूसरी को पार उतारे उस पक्षपाती, अधर्मी[८] के समान ख़ुदा क्यों नहीं? जो दूसरे मत को कि जिसमें हज़ारों-करोड़ों[९] मनुष्य हों, झूठा बतलावे और अपने को सच्चा, उससे परे झूठा दूसरा मत कौन हो सकता है? क्योंकि **किसी मत में सब मनुष्य बुरे और भले नहीं हो सकते।** यह एकतरफा डिगरी[१०] करना महामूर्खों का काम[११] है। क्या **'तौरेत'** और **'ज़बूर'** का दीन, जो कि उनका था, क्योंकर अपने किये को ख़ुदा ने झूठा किया?[१२] वा उनका कोई अन्य मज़हब था कि जिसको झूठा कहा। और जो वह अन्य मज़हब था, तो कौन-सा था, कहो कि जिसका नाम **'क़ुरान'** में हो?॥ ८१॥

८२. ....बस, तू मुझको अलबत्ता देख सकेगा,[१३] जब प्रकाश किया उसके मालिक ने पहाड़

---

१. **मुद्रणलिपिकर द्वारा अपप्रयोग**—मूलह० के शुद्ध प्रयोग को मुद्रणलिपिकर ने "**उस पर**" अशुद्ध बना दिया। अशुद्ध ही द्विप्र० में छपा है। स्वामी वेदानन्द सं० और पं० सिद्धान्ती सं० को छोड़कर सभी सं० में संशोधित कर लिया गया है।

२. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों संस्करणों में "**टीढ़ी**" अपवर्तनी है। स्वामी वेदानन्द सं० में "**टिड्डि**" अपवर्तनी है।

३. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—द्विप्र० में यहां आयतसंख्याएं १३०, १३७ अशुद्ध हैं, १३९ त्रुटित है। मूलसं० में १२४, १३० संख्याएं अशुद्ध हैं, वहां भी १३९ त्रुटित है। मूलह०, मुद्रणह०, भद में १२४, १३७ अशुद्ध हैं, १३९ त्रुटित है।

४-५. **अपप्रयोग**—(४) मूलह०, मूलप्रति सं० में "**लड़काओं**" अपपाठ है। सम्पूर्ण सत्यार्थप्रकाश में अन्यत्र "**लड़कों**" शुद्ध पाठ है। (५) दोनों हस्त० और तीनों सं० में "**जैसा**" अपप्रयोग है।

६. **मुद्रणलिपिकरकृत अपप्रयोग**—मूलह० के शुद्ध पाठ को मुद्रणलिपिकर ने अनर्थव्यंजक और अशुद्ध बना दिया—"**सर्पों को मारने के लिये**"। इससे इस अर्थ का संदेह होता है कि "सर्पों को मारना" उद्देश्य है। **स्वामी वेदानन्द सं०, सिद्धान्ती सं०** और **पं० मीमांसक सं०** के अशुद्ध पाठ को छोड़कर सभी ने इस वाक्य को मूलह० के अनुसार शुद्ध कर लिया है।

७. **त्रुटित आवश्यक क्रिया**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में '**हो**' क्रिया त्रुटित है।

८. **मुद्रणकाल में उचित संशोधन**—मूलह०, मूलप्रति सं० में "**मतलबी**" पद है। द्विप्र०, द्वि०सं० में "**अधर्मी**" परिवर्तन किया है। प्रसंगानुसार यह अधिक उचित पाठ है।

९. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में "**क्रोड़ों**" अपवर्तनी है। '**करोड़ों**' शुद्ध है।

१०. **अपप्रयोग**—दोनों हस्त० और तीनों संस्करणों में "**इकतर्फी डिगरी**" अपवर्तनी है। "**डिगरी**" "**डिक्री**" का अपभ्रंश है। इस मुहावरे का अर्थ है—'**एक पक्षीय निर्णय देना**'।

११-१२. **ऋषिलेख का मुद्रणकालीन अपसंशोधन**—(११) द्विप्र०, द्वि०सं० में "**काम**" के स्थान पर "**मत**" संशोधन किया है। यह संशोधन अज्ञानतापूर्ण है। '**डिगरी करना**' मत नहीं अपितु काम होता है। द्विप्र० में "**डिगिरी**" अपवर्तनी है। (१२) द्विप्र०, द्वि०सं० में इस वाक्य के स्थान पर अपसंशोधन है—"**झूठा हो गया?**"। इस संशोधन का अभिप्राय है कि क्या पुराना धर्म झूठा हो गया? संदेह में प्रश्न है कि पता नहीं झूठा हुआ है या नहीं। मूलप्रति के वाक्य में निश्चित रूप से ऋषि कह रहे हैं कि खुदा ने अपने पुराने धर्म को स्वयं क्योंकर झूठा कर दिया? द्विप्र०, द्वि०सं० का संशोधन ऋषि के भाव के अनुकूल नहीं है।

१३. **मुद्रणकालीन भ्रष्टपाठ**—मुद्रणकाल में द्विप्र० में "**तुझको अलबत्ता देख सकेगा**" अपपाठ छपा है। **स्वामी वेदानन्द सं०, पं० सिद्धान्ती सं०** के अशुद्ध पाठ को छोड़कर सभी सं० में संशोधन कर लिया है।

की ओर, उसको परमाणु-परमाणु किया, गिर पड़ा मूसा बेहोश। १४३।

मं० २। सि० ९। सू० ७। आ० १४३॥[१]

समीक्षक—जो देखने में आता है वह व्यापक नहीं हो सकता। और ऐसे चमत्कार करता फिरता था तो ख़ुदा इस समय ऐसा चमत्कार किसी को क्यों नहीं दिखलाता? सर्वथा विद्या-विरुद्ध[२] होने से यह बात मानने योग्य नहीं॥ ८२॥

८३. यह कि मार साथ असा अपने के पत्थर को, बस फूट निकले बारह चश्मे....। १६०।[३,४]

मं० २। सि० ९। सू० ७। आ० १६०॥[५]

समीक्षक—अब देखिये, बढ़कर भानुमती के जैसी ख़ुदा की ख़ुदाई, पैग़म्बर की पैग़म्बराई। इसको कोई भी बुद्धिमान् लोग सच नहीं मान सकते, सिवाय जंगली मनुष्यों के॥ ८३॥[६]

८४. ....और अपने मालिक को दीनता, डर से मन में याद कर, धीमी आवाज़ से सुबह को और शाम को.....। २०५[७] मं० २। सि० ९। सू० ७। आ० २०५॥[८]

समीक्षक—कहीं-कहीं '**क़ुरान**' में लिखा है कि बड़ी आवाज़ से अपने मालिक को पुकार, कहीं-कहीं धीरे-धीरे मन में ईश्वर का स्मरण कर। अब कहिये कौन-सी बात सच्ची और कौन-सी झूठी? **जो एक दूसरी बात से विरोध करती है वह बात प्रमत्त गीत के समान होती है। यदि कोई बात भ्रम से विरुद्ध निकल जाय, उसको मान ले, तो कुछ चिन्ता नहीं॥** ८४॥

८५. प्रश्न करते हैं तुझको लूटों से कहें लूटें वास्ते अल्लाह के और रसूल के, और डरो अल्लाह से....। १।[९] मं० २। सि० ९। सू० ८। आ० १॥

समीक्षक—जो लूट मचावें, डाकू के कर्म करें-करावें और ख़ुदा तथा पैग़म्बर और ईमानदार भी बनें, यह बड़े आश्चर्य की बात है! और अल्लाह का डर बतलाते और डाका-आदि बुरे काम भी करते

---

१. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, भद में यहां आयतसंख्या १४२ अशुद्ध है।

२. **मुद्रणकालीन त्रुटित पद**—मुद्रणकाल में द्विप्र० में "**विद्या**" पद त्रुटित रह गया है। **स्वामी वेदानन्द सं०** को छोड़कर सभी सं० में इसको ग्रहण कर लिया है।

३. **पुनरुक्ति**—यही कथन आयतखण्ड संख्या १६ पर आ चुका है। कुरान में ऐसी अनेक पुनरुक्तियां हैं।

४,६. **मुद्रणकाल में आयतपाठ-निष्कासन**—आयतखण्ड संख्या ८३ और इसकी समीक्षा को द्वि०सं० में से निकाल दिया है। शायद पुनरुक्ति के कारण ऐसा किया है। संशोधक ने ऋषि के इस कथन पर ध्यान नहीं दिया कि "**कुरान जानो पुनरुक्ति दोषों का भंडार है**" (पृ० १०४२)। ऋषि द्वारा इस प्रकार की आयतों को पुनः-पुनः उद्धृत करने का उद्देश्य था कुरान की पुनरुक्तियां दिखाकर उसे अविद्वान् की अप्रामाणिक रचना प्रदर्शित करना। महर्षि लिखते हैं कि "**पुनरुक्त प्रमत्त वाक्य होता है**" (पृ० १०००)। मुंशी समर्थदान जी ने इस पाठ को निकाला है। इसी कारण यह द्वि०सं० पर आधारित वर्तमान संस्करणों में नहीं मिलता, जबकि यह मुद्रणप्रति में है।

५. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह० में ५९, मूलसं० में १५९ अशुद्ध आयतसंख्या है। द्विप्र०, द्वि०सं० में यह नहीं है।

७. **धीमी आवाज में मालिक को याद करो**—मुसलमान मस्जिदों में जोर-जोर से बोलकर नमाज़ पढ़ते हैं। ऐसा करना इस आयत के विरुद्ध आचरण है। इस आयत में स्पष्ट कहा है कि "**अपने रब (मालिक) को धीमी आवाज के साथ याद किया करो।**" इस प्रकार मुसलमान कुरान के आदेश की अवहेलना करते हैं।

८. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, भद, मूलसं० में यहां आयतसंख्या २०४ अशुद्ध है।

९. **उचित संशोधन**—मूलह०, मूलप्रति सं० में इस आयत के अन्त में "**डरो थप्पड़-लात से**" वाक्यांश है। मुद्रणह०, द्विप्र०,

जायें, और 'उत्तम मत हमारा है' कहते लज्जा भी नहीं [आती][१]। हठ छोड़के सत्य वेदमत का ग्रहण न करें, इससे अधिक बुराई दूसरी कौन-सी होगी?॥ ८५॥

८६. .....और काटे जड़ काफ़िरों की। ७। मैं तुमको साहाय्य दूंगा। साथ सहस्त्र फ़रिश्तों के पीछे-पीछे आनेवाले। ९। ....अवश्य मैं काफ़िरों के दिलों में भय डालूंगा। बस, मारो ऊपर गर्दनों के, मारो उनमें से हर पोरी सन्धि पर। १२। मं० २। सि० ९। सू० ८। आ० ७। ९। १२॥

समीक्षक—वाह जी वाह! कैसा ख़ुदा और कैसे पैग़म्बर दयाहीन [हैं],[२] जो मुसलमानी मत से भिन्न काफ़िरों की जड़ कटवावे। और ख़ुदा आज्ञा देवे उनकी गर्दन पर[३] मारो[४] और हाथ-पग [के][५] जोड़ों को काटने का साहाय्य और सम्मति देवे! भला, ऐसा ख़ुदा '**लंकेश**' से क्या कुछ कम है? यह सब प्रपञ्च '**क़ुरान**' के कर्त्ता[६] का है, ख़ुदा का नहीं। यदि ख़ुदा का हो, तो ऐसा ख़ुदा हमसे दूर और हम उससे दूर रहैं॥ ८६॥

८७. ....अल्लाह मुसलमानों के साथ है। १९। ऐ लोगो! जो ईमान लाये हो पुकारना स्वीकार करो, वास्ते अल्लाह के और वास्ते रसूल के। २४। ऐ लोगो जो ईमान लाये हो मत चोरी करो अल्लाह की, रसूल की; और मत चोरी करो अमानत अपनी की। २७। ....और मकर करता था अल्लाह और अल्लाह भला मकर करनेवालों का है। २०।

मं० २। सि० ९। सू० ८। आ० १९[७]। २७। २७। ३०॥

समीक्षक—क्या अल्लाह मुसलमानों का पक्षपाती है? जो ऐसा है तो अधर्म करता है। नहीं तो ईश्वर सब सृष्टि-भर का है। क्या ख़ुदा विना पुकारे नहीं सुन सकता? बधिर है? और उसके साथ रसूल को 'शरीक' करना [क्या][८] बहुत बुरी बात नहीं है? अल्लाह का कौन-सा खज़ाना भरा है जो चोरी करेगा [कोई][९]? क्या रसूल और अपनी अमानत[१०] की चोरी छोड़कर अन्य सबकी चोरी किया करे? ऐसा उपदेश अविद्वान् और अधर्मियों का हो सकता है। भला, जो मकर करता और जो मकर करनेवालों का संगी है, वह ख़ुदा कपटी-छली और अधर्मी क्यों नहीं? इसीलिये यह '**क़ुरान**' ख़ुदा का बनाया हुआ

द्वि०सं० में इसको हटा दिया गया है। यह संशोधन उचित है, क्योंकि यह पाठ कुरान में भी नहीं है।

१. **त्रुटित आवश्यक क्रिया**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में "**आती**" क्रिया त्रुटित है। वाक्यपूर्ति के लिए आवश्यक है।

२-५. **त्रुटित आवश्यक पद व अपवाक्य**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में "**हैं**" क्रिया और "**पर**" पद त्रुटित हैं। दोनों हस्त० और तीनों सं० में समीक्षा में संख्यांक ४ पर "**उसको गर्दन मारो**" अपवाक्य है जबकि आयत में शुद्ध पाठ है। मूलप्रति सं० में "**के**" विभक्ति पद त्रुटित है।

६. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त० और द्विप्र० में "**करता**" अपवर्तनी है। सभी सं० में संशोधित है।

७. **मुद्रणलिपिकर का प्रमाद और अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मुद्रणह० में मुद्रणलिपिकर ने १९ संख्या त्रुटित छोड़ दी है। भद में भी यह संख्या त्रुटित है।

८-९. **त्रुटित आवश्यक पद**—दोनों हस्त०, तीनों सं० में "**क्या**" और "**कोई**" पद त्रुटित हैं। इनके बिना वाक्य पूर्ण नहीं होता।

१०. **मुद्रणलिपिकरकृत अपपरिवर्तन**—मूलह० के शुद्ध प्रयोग को मुद्रणलिपिकर ने "**अपने अमानत**" अशुद्ध बना दिया। मुद्रणलिपिकर की लापरवाही देखिए कि आयत में स्पष्टत: "**अपनी अमानत**" शुद्ध प्रयोग है किन्तु उसे वह भी दिखाई नहीं दिया। मुद्रण लिपिकर के ही बड़े भाई शोधक निकले। उन्होंने भी लापरवाही बरती जिसके कारण द्विप्र० में यही अशुद्ध प्रयोग छपा।

सम्पादक विद्वानों द्वारा अशुद्धि लीला का विस्तार—लिपिकरों-शोधकों ने तो लापरवाही की ही, विद्वान् सम्पादक भी उनके अनुयायी निकले। पं० मीमांसक सं० और मूलसं० को छोड़कर सभी ने इस अशुद्धि को आगे बढ़ाया है। विद्वानों को भी न तो अशुद्ध प्रयोग दिखाई दिया और न आयतोक्त शुद्ध प्रयोग। स्वामी वेदानन्द जी, सिद्धान्ती जी, पं० भगवद्दत्त जी, द्वि०सं० चारों ने

नहीं है, किसी कपटी-छली का बनाया होगा, नहीं तो ऐसी अन्यथा बातें लिखी ही क्यों होतीं?॥ ८७॥

८८. और लड़ो उनसे यहां तक कि न रहे फ़ितना अर्थात् बल काफ़िरों का और होवे दीन तमाम वास्ते अल्लाह के....। ३९। और जानो तुम यह कि जो कुछ तुम लूटो, किसी वस्तु से निश्चय वास्ते अल्लाह के है पांचवां हिस्सा उसका[१], और वास्ते रसूल के.....। ४१।..... निश्चय मैं तुम्हारा पक्षी हूं....। ४८।[२] मं० २। सि० ९। सू० ८। आ० ३९।४१।४८॥

समीक्षक—ऐसा अन्याय से लड़ाका अर्थात्[३] लड़ने-लड़ानेवाला मुसलमानों के ख़ुदा से भिन्न शान्तिभंगकर्त्ता दूसरा कौन होगा? अब देखिये, यह मज़हब कि अल्लाह और रसूल के लिये सब जगत् को लूटना-लुटवाना, क्या लुटेरों का-सा काम नहीं है? और लूट के माल में ख़ुदा का हिस्सेदार बनना जानो डाकू बनना है। और ऐसे लुटेरों का पक्षपाती बनकर[४], ख़ुदा अपनी ख़ुदाई में बट्टा लगाता है। **बड़े आश्चर्य की बात है, ऐसा पुस्तक, और ऐसा ख़ुदा, ऐसे ख़ुदा की ओर के पैग़म्बर और ऐसा उपाधिखोर मज़हब[५-६] संसार में महाशान्तिभंग करके मनुष्यों के लिए दुःखदायी कहां से हुआ[७]?**

यही अपप्रयोग किया है। उदयपुर सं० के सम्पादकों के समक्ष तो शुद्ध-अशुद्ध दोनों पाठ विद्यमान थे किन्तु उन्होंने भी इस अशुद्ध प्रयोग पर विचार नहीं किया और अशुद्ध पाठ को ग्रहण कर लिया। '**अमानत**' अरबी भाषा का स्त्रीलिंग शब्द है।

१. **पं० मीमांसक जी द्वारा अपसंशोधन**—पं० जी ने उपर्युक्त पाठ को बदलकर इस प्रकार बनाया है—''**जो कुछ तुम लूटो किसी वस्तु को निश्चय वास्ते अल्लाह के है पांचवां हिस्सा उसका....।**'' पं० जी ने ''**वस्तु से**'' के स्थान पर ''**वस्तु को**'' अपपाठ कर दिया। पहले वाक्यांश में ''कुछ'' पद आने के बाद ''किसी वस्तु को'' प्रयोग उससे नहीं जुड़ता। यहां यह भाव है कि 'जो कुछ तुम लूटो उसमें से पांचवां हिस्सा अल्लाह का है।' यही भाव कुरान में है। उदयपुर सं० में ''**अल्लाह के है**'' के बाद अल्पविराम अशुद्ध है। यह वाक्यखण्ड ''**उसका**'' पद पर समाप्त होता है।

२. **मुंशी जी द्वारा अनुचित पाठ-निष्कासन**—मूलह०, मुद्रणह०, मूलसं० में यहां ''**निश्चय मैं तुम्हारा पक्षी हूं**'' आयत ४८ भी है जो संगत है, क्योंकि समीक्षा भाग में इसकी समीक्षा ''**ऐसे लुटेरों का पक्षपाती बनकर**'' शब्दों में की है। मुद्रणह० में मुंशी जी ने इस आयत को गलत काटा है। द्विप्र०, द्वि०सं०, उदयपुर सं० आदि में इसको हटा दिया है जो अनुचित है।

३. **मुद्रणकालीन पाठ-निष्कासन**—द्विप्र०, द्वि०सं० में से ये दोनों पद निकाल दिये हैं। शायद यह समझा गया कि '**लड़ाका और लड़ने-लड़ाने वाला**' एक ही अर्थवाले शब्द हैं। महर्षि की यह शैली है कि वे किसी विशेष पद या नाम का प्रयोग करके अर्थात् लिखकर उसका अर्थ स्पष्ट करते हैं। ज्ञात होता है कि मूलह० में श्रवणभ्रान्ति से लिपिकर ने ''**और**'' पद अशुद्ध लिख डाला है। यहां '**अर्थात्**' पद को निकालने की आवश्यकता नहीं है। उदयपुर सं० आदि में भी यह पद हटा दिया है।

४. **अपपाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**पक्षपाती बनना खुदा अपनी खुदाई में बट्टा लगाता है**'' व्याकरणिक अपपाठ है।

५. **भ्रष्टपाठ और उसकी लीला का विस्तार**—कभी-कभी कोई पाठ बिगड़ता है तो बिगड़ता चला जाता है। लिपिकरों ने जो भ्रष्टलीला की उसको न तो शोधकों ने ठीक किया है और न सम्पादक आर्य विद्वानों ने। सवा सौ वर्ष तक निरन्तर बिगड़ता यह पाठ इसका ज्वलन्त उदाहरण है, देखिए—

दोनों हस्तलेखों का महाभ्रष्ट पाठ—''**ऐसा पुस्तक और ऐसे खुदा को ईश्वर ऐसे खुदा की ओर के पैगम्बर और ऐसी उपाधीखोर मजहब संसार में महाशान्तिभंग करके दुःखदायी कहां से हुआ।**'' (प्रतिलिपि करते समय इसमें मुद्रणलिपिकर ने दो अशुद्धियां और बढ़ा दीं—''**ओर**'' को ''**और**'', ''**दुःखदायी**'' को ''**दुःखदाई**'' लिखा है।

द्विप्र० का भ्रष्टपाठ—''**ऐसा पुस्तक ऐसा खुदा और ऐसा पैगम्बर संसार में ऐसी उपाधि और शान्तिभंग करके मनुष्यों का दुःख देने के लिये कहां से आया?**'' इसमें कुछ जोड़ दिया, कुछ हटा दिया, कुछ और बिगाड़ दिया।

द्वितीय संस्करण का अशुद्ध पाठ—''**मनुष्यों को**'' परिवर्तन कर दिया, शेष यथावत् अशुद्ध है। यही भ्रष्ट पाठ वेस, जग, भद, युमी, विस, जस, उदयपुर सं० में है। विद्वानों ने नहीं सोचा कि ''उपाधि करना'' वाक्यांश का क्या अर्थ है, शुद्ध प्रयोग 'उपाधिखोर' है। ''**कहां से आया**'' संशोधन भी असंगत है। सभी को पता है कहां से आया है। यहां ग्रन्थकार का भाव है कि क्यों उत्पन्न हुआ।

मूलसं० का अपपाठ—''**.....और ऐसे खुदा, ऐसे खुदा की ओर के पैगम्बर.....कहां से हुआ**'' अपपाठ है। ''**उपाधिखोर**''

जो ऐसे-ऐसे मत जगत् में प्रचलित न होते तो सब जगत् आनन्द में बना रहता॥ ८८॥

८९. और कभी देखे जब काफ़िरों को फ़रिश्ते कब्ज करते हैं, मारते हैं, मुख उनके और पीठें उनकी और कहते—''चखो अ़ज़ाब जलने का। ५०। हमने उनके पाप से उनको मारा और हमने फ़िरौन[१] की क़ौम को डुबो दिया....। ५४।'' और तैयारी करो वास्ते उनके जो कुछ तुम कर सको....। ६०। मं० २। सि० १०। सू० ८। आ० ५०। ५४। ६०॥[२]

समीक्षक—क्यों जी! आजकल रूस ने रूम[३] आदि और इंगलैण्ड[४] ने मिश्र[५] की दुर्दशा कर डाली, फ़रिश्ते कहां सो गये? और अपने सेवकों के शत्रुओं को ख़ुदा पूर्व मारता-डुबाता था, यह बात सच्ची हो, तो आजकल भी ऐसा करे। जिससे ऐसा नहीं होता, इसलिये यह बात मानने योग्य नहीं। अब देखिये, यह कैसी बुरी आज्ञा है कि जो कुछ तुम कर सको वह भिन्न मत-वालों के लिये दु:खदायक कर्म करो, ऐसी आज्ञा विद्वान् और धार्मिक-दयालु की नहीं हो सकती। फिर लिखते हैं कि ख़ुदा दयालु और न्यायकारी है। ऐसी बातों से मुसलमानों के ख़ुदा से न्याय और दयादि सद्गुण दूर बसते हैं॥ ८९॥

९०. ऐ नबी! किफ़ायत है तुझको अल्लाह और उनको जिन्होंने मुसलमानों से तेरा पक्ष किया। ६४। ऐ नबी! रग़बत अर्थात् चाह-चस्का दे मुसलमानों को ऊपर लड़ाई के। जो हों तुम में से वीस आदमी जमे रहनेवाले लड़ाई में,[६] तो पराजय करें दो सौ का। ६५। बस, खाओ उस वस्तु से कि लूटा है

ठीक है। ''**मजहब**'', ''**दु:खदायी**'' संशोधित पद हैं।

पाठकगण! सवा-सौ वर्षों में यह दु:स्थिति बनी है सत्यार्थप्रकाश की। अब आर्य विद्वानों की असावधानी पर भी क्या कहें?

६. **उपाधिखोर**= छल, कपट, उपद्रव और मिथ्यापन से युक्त नक़ली मजहब।

७. **मुद्रणकालीन अपपरिवर्तन**—द्विप्र०, द्वि०सं० में ''**हुआ**'' के स्थान पर ''**आया**'' परिवर्तन है। '**हुआ**' ही सही प्रयोग है जिस का भाव है कि क्यों उत्पन्न हुआ? '**कहाँ से आया**' तो कोई प्रश्न ही नहीं है, क्योंकि सबको पता है कि अरब से आया है।

१. **फ़िरौन**—यह मिश्र का राजा था, जिसको बाइबल व क़ुरान में अत्याचारी वर्णित किया है। कहा गया है कि हजरत मूसा के प्रकोप (शायद आक्रमण) के कारण यह मारा गया था। मूलप्रति सं० व द्वि० सं० में '**फिराओन**' वर्तनी अग्राह्य है। इसका अन्यत्र वर्णन द्र० पृ० ८७४, ८७७, १०१० पर।

२. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, भद में यहां आयतसंख्या ६० के स्थान पर ५९ अशुद्ध है।

३. **अव्यवस्थित वर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में यहां ''**रूम**'' वर्तनी है। अन्यत्र अनेक स्थानों पर '**रोम**' वर्तनी (मू०सं० पृ० ३२७)। दोनों में से वर्तमान में '**रोम**' प्रचलित वर्तनी है। ग्रन्थ में ''**रूम**'' का ही प्रयोग है।

४. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त०, द्विप्र०, मूलप्रति सं० में यहां '**इङ्गलेण्ड**' अपवर्तनी है। इसका संशोधन अपेक्षित है। ग्रन्थ में दोनों हस्त० और तीनों सं० में दो वर्तनियां उपलब्ध हैं— १. **इङ्गलैण्ड** (द्वि० सं० पृ०-१३६), २. **इंगलैण्ड** (मूलसं० पृ०-२३६, द्वि०सं० ३८०)। इनमें महर्षि के काल में संस्कृत-प्रभावित '**इङ्गलैण्ड**' वर्तनी चलती थी। आजकल यह '**इंगलैंड**' लिखा जाने लगा है।

५. **अव्यवस्थित वर्तनी**—सम्पूर्ण ग्रन्थ में, इस देश-नाम की विशेषत: १४ समु० में दो वर्तनियां मिलती हैं—'**मिश्र, मिस्त्र**'। महर्षि-कालीन भाषिक वातावरण की दृष्टि से '**मिश्र**' वर्तनी ग्राह्य है। विस्तृत टिप्पणी पृ० ८६१ पर द्रष्टव्य है।

६. **भ्रष्ट अनुवाद**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में यहां किसी मौलवी कृत भ्रष्ट अनुवाद है अर्थात् तीनों सं० में ''**बीस आदमी सन्तोष करनेवाले तो पराजय करें**'' विपरीत एवं अप्रासंगिक अर्थ है। यहां कुरान के मूल पाठ और युद्ध के प्रसंग के अनुसार यह पाठ होना चाहिए—''**बीस आदमी हों जमे रहनेवाले लड़ाई में तो पराजय करें**''। युद्ध में 'संतोष करना' गुण नहीं, अवगुण है। 'जमे रहना' गुण है, अत: यही पाठ शुद्ध है।

स्वामी वेदानन्द जी, सिद्धान्ती जी, पं० भगवद्दत्त जी के **संस्करण** में यही अपपाठ है जबकि **पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक** ने संशोधन का प्रस्ताव टिप्पणी में किया है। उदयपुर संस्करण में बिना विचारे अशुद्ध पाठ ही ग्रहण कर लिया है।

तुमने हलाल=पवित्र और डरो अल्लाह से। वह क्षमा करने वाला दयालु है। ६९।

मं० २। सि० १०। सू० ८। आ० ६४। ६५। ६९॥[१]

समीक्षक—भला, यह कौन-सी न्याय, विद्वत्ता और धर्मात्मता की बात है कि जो अपना पक्ष करे और चाहे अन्याय भी करे, उसी का पक्ष [करे] और लाभ ख़ुदा पहुंचावे? और जो प्रजा में शान्तिभंग करके लड़ाई करे-करावे और लूट-मार के पदार्थों को हलाल बतलावे और फिर उसी का नाम 'क्षमावान्' 'दयालु' लिखे; यह बात ख़ुदा की तो क्या किन्तु किसी भले आदमी की भी नहीं हो सकती। ऐसी-ऐसी बातों से '**क़ुरान**' ईश्वरवाक्य कभी नहीं हो सकता॥ ९०॥

९१. सदा रहेंगे बीच उसके, अल्लाह समीप है उसके पुण्य बड़ा। २२। ऐ लोगो! जो ईमान लाये हो तो मत पकड़ो [मित्र बनाओ] बापों अपने को, और भाइयों अपने को, मित्र जो दोस्त रक्खें कुफ्र को ऊपर ईमान के [जो कोई उनसे मित्रता का नाता जोड़ेगा, वे ज़ालिम होंगे][२]। २३। फिर उतारी अल्लाह ने तसल्ली अपनी ऊपर रसूल अपने के और ऊपर मुसलमानों के, और उतारे लश्कर, नहीं देखा तुमने उनको और अज़ाब किया उन लोगों को, और यही सजा है काफ़िरों को। २६। फिर-फिर आवेगा अल्लाह पीछे उसके ऊपर [जिसको चाहे]। २७। और लड़ाई करो उन लोगों से जो ईमान नहीं लाते.....। २९। मं० २। सि० १०। सू० ९। आ० २२। २३। २६। २७। २९॥[३]

समीक्षक—भला, जो बहिश्तवालों के समीप अल्लाह रहता है, तो सर्वव्यापक नहीं हो सकता। जो सर्वव्यापक नहीं तो सृष्टिकर्त्ता[४] और न्यायाधीश नहीं हो सकता। और अपने मा, बाप, भाई और मित्र को छुड़वाना केवल अन्याय की बात है। हां, **जो वे बुरा उपदेश करें, [तो उसको] न मानना; परन्तु उनकी सेवा सदा करनी चाहिये।** जो पहले ख़ुदा मुसलमानों पर सन्तोषी था और उनके साहाय्य के लिये लश्कर उतारता था, [यदि यह][५] सच हो, तो अब ऐसा क्यों नहीं करता? और जो प्रथम काफ़िरों को दण्ड देता और पुनः-पुनः उसके ऊपर आता था, तो अब कहां गया? क्या ख़ुदा विना लड़ाई के ईमान नहीं बना सकता? ऐसे ख़ुदा को हमारी ओर से सदा तिलांजलि[६] है। ख़ुदा क्या है, एक खिलाड़ी है!॥ ९१॥

९२. ....बस, मत अन्याय करो बीच उसके आपस में, और लड़ो मुश्‌रिकों[७] से इकट्ठे, जैसा लड़ते हैं। ३६।[८] और हम बाट देखनेवाले हैं[९] वास्ते तुम्हारे यह कि पहुंचावे तुम को अल्लाह अज़ाब

---

१. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, भद में यहां आयत संख्याएं ६३, ६८ अशुद्ध हैं, ६५, ६९ त्रुटित हैं।

२. **त्रुटित आवश्यक पाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में बृ० कोष्ठान्तर्गत पाठ त्रुटित है। इसके बिना दूसरी आयत का कथन अधूरा रहता है। कुरान में ये वाक्य प्राप्त हैं। यह पाठ आवश्यक है।

३. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, भद में यहां आयतसंख्याएं २१, २५, २८ अशुद्ध हैं, २९ त्रुटित है।

४. **मुद्रणकालीन अपवर्तनी**—द्विप्र० में ''**सृष्टि करता**'' अपवर्तनी है। अन्य सभी सं० में संशोधित है।

५. **त्रुटित आवश्यक पद**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**यदि यह**'' पद त्रुटित हैं। वाक्यरचना के लिए आवश्यक हैं।

६. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त० और द्विप्र० में ''**तिलांजली**'' अप वर्तनी है। अन्य सभी में संशोधित है।

७. **मुश्‌रिक**=बहुत देवी-देवताओं को माननेवाले। अरबी में शुद्ध वर्तनी ''**मुश्रिक**'' है। सभी सं० में ''**मुशरिक**'' अशुद्ध है।

८,९. **मुद्रणकाल में आयत पाठ-निष्कासन अनुचित**—द्विप्र० में आयतखण्ड संख्या ९२ में से प्रथम आयत ३६ और इसकी समीक्षा ''**क्या मुसलमान......मूर्तियां हैं**'' तक मुंशी समर्थदान जी ने निकाल दी है। यदि लड़ाई का आदेश पढ़कर निकाली है तो यह

अपने पास से वा हमारे हाथों से। ५२। मं० २। सि० १०। सू० ९। आ० ३६।५२॥

समीक्षक—क्या मुसलमान लोग आपस में न्याय और दूसरों पर अन्याय करना धर्म समझते हैं? और ऐसा है, तो मुसलमान लोग अन्याय की मूर्त्तियाँ हैं।[१]

क्या मुसलमान ही अल्लाह[२] की पुलिस बन गये हैं कि वह अपने हाथ वा मुसलमानों के हाथों[३] से अन्य किन्हीं मत-वालों को दण्ड देता है? क्या दूसरे करोड़ों मनुष्य अल्लाह[४] को अप्रिय हैं? [और][५] मुसलमानों में पापी भी प्रिय हैं? इसलिये[६] **अन्धेर नगरी गवरगण्ड राजा**[७] की- सी व्यवस्था दीखती है। आश्चर्य है कि जो बुद्धिमान् मुसलमान हैं, वे भी इस निर्मूल, अयुक्त मत को मानते हैं॥ ९२ ॥

९३. प्रतिज्ञा की है अल्लाह ने ईमानवालों से और ईमानवालियों से, बहिश्तें चलती हैं नीचे उनके से नहरें, सदैव रहनेवाली बीच उसके; और घर पवित्र बीच बहिश्तों अदन के और प्रसन्नता अल्लाह की और सबसे बड़ी है और यह कि वह है मुराद-पाना[८] बड़ा। ७२। ....बस जो ठट्ठा करते हैं उनसे, ठट्ठा किया है अल्लाह ने उनसे। ७९। मं० २। सि० १०। सू० ९। आ० ७२।७९॥[९]

समीक्षक—यह ख़ुदा की ओर से स्त्री-पुरुषों को लोभ देना है[१०] अपने मतलब के लिये; क्योंकि जो ऐसा प्रलोभन न देते तो कोई मुहम्मद साहब के जाल में न फसता। ऐसे ही अन्य मत-वाले भी किया करते हैं। भला, मनुष्य लोग तो आपस में ठट्ठा किया ही करते हैं, परन्तु ख़ुदा को किसी से ठट्ठा करना उचित नहीं है। यह **'क़ुरान'** ग्रन्थ क्या है, बड़ा खेल है॥ ९३ ॥

९४. परन्तु रसूल और जो लोग कि साथ उसके ईमान लाये जिहाद[११] किया उन्होंने साथ धन

कोई उचित कारण नहीं है। कुरान का यथार्थ चित्र तो इसी प्रकार के आदेशों से सामने आता है। यह दोनों हस्तलेखों में भी है। द्विप्र० में न होने के कारण यह किसी भी द्वि०सं० में नहीं है। मुंशी जी द्वारा इसको अकारण निकालना और महर्षि के श्रम तथा आशय को व्यर्थ करना अवांछनीय है।

९. **मुद्रणलिपिकरकृत अपपाठ**—मूलह० के शुद्धपाठ को मुद्रणलिपिकर ने अशुद्ध बना दिया—**''हम वार देखने वाले हैं''**। यही अशुद्ध द्विप्र० में छपा है। अब अन्य संभी सं० में संशोधित है।

१-५. **अपपाठ**—(१) मूलह०, मूलप्रति सं० में **''दूसरों में अन्याय करना''** वाक्यांश में **''में''** अपप्रयोग है, **''पर''** शुद्ध है। (२, ४) **''ईश्वर की पुलिस बन गई हैं''** मूलह०, मूलप्रति सं० में अपवाक्य है। द्विप्र०, द्वि०सं० में संशोधित है। समीक्षा में **'अल्लाह'** का **'ईश्वर'** अनुवाद कर दिया है। मुसलमानों के कथनों के सन्दर्भ में **'अल्लाह'** या **'खुदा'** नाम ही सटीक प्रयोग हैं। अत: आयत के मूल **'अल्लाह'** शब्द का प्रयोग होना चाहिए। (३) **'हाथों'** प्रयोग सही है, **'हाथ'** प्रयोग अशुद्ध है। (५) **''और''** पद होना आवश्यक है। दोनों सं० में नहीं है।

६. **मुद्रणकाल में अपसंशोधन**—द्विप्र०, द्वि०सं० में **''इसलिये''** के स्थान पर **''यदि ऐसा है''** अशुद्ध-असंगत संशोधन है। दोनों हस्त० में ''~~इसलिये~~'' सटीक प्रयोग है। ऋषि तो निश्चयपूर्वक ही वर्णित बातों को कह रहे हैं कि मुसलमानों में ऐसा है। **''यदि ऐसा है तो''** संभावनात्मक संशोधन ऋषि के कथन में सन्देह उत्पन्न करके उनकी समीक्षा को अप्रामाणिक बनाता है। अत: अवांछनीय है।

७. **गवरगंड राजा**—मूर्ख राजा। इसकी कथा ग्रन्थकार रचित **'व्यवहारभानु'** पुस्तिका में द्रष्टव्य है।

८. **अपपाठ**—मूलह०, मूलप्रति सं० में **''मुरादखाना''** अशुद्ध पाठ है। **मुराद-पाना**=मनोकामनाओं का पूर्ण होना।

९. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, भद में यहां आयतसंख्या ८० अशुद्ध है।

१०. **अपपाठ**—मूलह०, मूलप्रति सं० में यह अपपाठ है—**''यह खुदा की और से स्त्री-पुरुषों का लोभ देना है।''**

११. **जिहाद**=धर्मयुद्ध। अल्लाह और कुरान के प्रचार-प्रसार करने या इस्लामिक राज्य के लिए किया जानेवाला युद्ध।

अपने के तथा जान अपनी के और इन्हीं लोगों के लिये भलाई है। ८८। ....और मोहर रक्खी अल्लाह ने ऊपर दिलों उनके के, बस वे नहीं जानते। ९३। मं० २। सि० १०। सू० ९। आ० ८८। ९३॥[1]

समीक्षक—अब देखिये मतलबसिन्धु की बात कि वे ही भले हैं जो मुहम्मद साहब के साथ ईमान लाये! और जो नहीं लाये,[2] वे बुरे हैं! क्या यह बात पक्षपात और अविद्या से भरी हुई नहीं है? जब ख़ुदा ने मोहर ही लगा दी, तो उनका पाप करने में कोई अपराध भी नहीं, किन्तु ख़ुदा का ही अपराध है, क्योंकि उन बेचारों को भलाई से, दिलों पर मोहर लगाके रोक दिया,[3] यह कितना बड़ा अन्याय है!॥ ९४॥

९५. ले माल उनके से ख़ैरात कि पवित्र करे तू उनको और शुद्ध करे तू उनको साथ उसके अर्थात् गुप्त में। १०३। ....निश्चय अल्लाह ने मोल ली हैं मुसलमानों से जानें उनकी और धन उनके बदले, कि वास्ते उनके बहिश्त है; लड़ेंगे बीच मार्ग अल्लाह के, बस मारेंगे और मर जावेंगे....। १११।

मं० २। सि० ११। सू० ९। आ० १०३। १११॥[4]

समीक्षक—वाह जी वाह मुहम्मद साहब! आपने तो गोकुलिये गोसाँइयों की बराबरी कर ली, क्योंकि उनका माल लेना और उनको गुप्त में[5] पवित्र करना, यही बात तो गोसाँइयों की है। वाह ख़ुदा जी! आपने अच्छी सौदागरी लगाई कि मुसलमानों के हाथ से अन्य गरीबों के प्राण लेना ही लाभ समझा!! और उन अनाथों को मरवाकर उन निर्दयी मनुष्यों को स्वर्ग देने से, दया और न्याय से मुसलमानों का ख़ुदा हाथ धो बैठा और अपनी खुदाई में बट्टा लगाके बुद्धिमान् धार्मिकों में घृणित हो गया॥ ९५॥

९६. ऐ लोगो! जो ईमान लाये हो, लड़ो उन लोगों से कि पास तुम्हारे हैं काफ़िरों से, और चाहिये कि पावें बीच तुम्हारे सख्ती....। १२३। क्या नहीं देखते यह कि वे बलाओं में डाले जाते हैं बीच[6] हर वर्ष के एक वार वा दो वार, फिर वे नहीं तौबा[7] करते और न वे शिक्षा पकड़ते हैं। १२६।

मं० २। सि० ११। सू० ९। आ० १२३। १२६॥[8]

---

१. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—द्विप्र० में यहां आयतसंख्याएं ८९, ९२, मूलह०, मुद्रणह०, भद में ७९, ९२ संख्याएं अशुद्ध लिखी हैं।

२. **उचित संशोधन**—मूलह०, मूलप्रति सं० में ''**लाते**'' अपप्रयोग है। पूर्ववाक्य की क्रिया के अनुसार ''**लाये**'' ही ठीक है। मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में संशोधित है।

३. **अपपाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में यह अपवाक्य है—''**उन बिचारों को भलाई से, दिलों पर मोहर लगाके रोक दिये।**'' अन्य सभी सं० तथा कथित दश विद्वानों द्वारा सम्पादित उदयपुर सं० में भी अपपाठ है।

४. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, भद में यहां आयतसंख्याएं १०२, ११० अशुद्ध हैं।

५. **मुद्रणकाल में अपपरिवर्तन**—द्विप्र०, द्वि०सं० में गोसाँइयों के दुराचरण पर प्रकाश डालने वाला महत्त्वपूर्ण पद ''**गुप्त में**'' त्रुटित रह गया है। अन्य सभी सं० में भी यह त्रुटित है। अनुमान है कि मुद्रणकाल में इसको मुंशी जी ने भ्रान्ति से काटा है। मुंशी जी ने नहीं देखा कि यह पाठ मूल आयत में है और मूलह०, मुद्रणह० में भी है। वही त्रुटित परम्परा सभी वर्तमान द्वि०सं० में चलती आ रही है। **उदयपुर सं०** के समक्ष शुद्ध-अशुद्ध दोनों पाठ थे किन्तु उसने त्रुटित अर्थात् अशुद्ध पाठ को ग्रहण किया है।

६. **मुद्रणलिपिकर द्वारा त्रुटित पाठ**—मुद्रणलिपिकर ने प्रमाद से ''**बीच**'' पद छोड़ दिया। वही त्रुटित पाठ द्विप्र० में छपा है। **स्वामी वेदानन्द सं०** और **पं० मीमांसक सं०** में भी त्रुटित है। अन्य सभी सं० ने ग्रहण कर लिया है।

७. **अव्यवस्थित वर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**तौबा**'' की दो वर्तनियां प्राप्त हैं—१. **तोबा** (मूलसं०, पृ० ६८४; द्वि० सं०, पृ० ३८१), २. **तोबाः** (मूलसं० पृ० ६९४, ७००, ७१८; द्वि० सं०, पृ० ३८६, ३८८, ३८९)। शुद्धता की दृष्टि से दोनों ही

समीक्षक—देखिये, ये[1] भी विश्वासघात की बातें ख़ुदा मुसलमानों को सिखलाता है कि चाहे पड़ोसी हों वा किसी के नौकर हों, जब अवसर पावें, तभी लड़ाई वा घात करें। ऐसी बातें मुसलमानों से बहुत बन गई हैं इसी '**क़ुरान**' के लेख से। अब तो मुसलमान, समझके, इन '**क़ुरानोक्त**' बुराइयों को छोड़ दें, तो बहुत अच्छा है॥ ९६ ॥

९७. निश्चय परवरदिगार तुम्हारा अल्लाह है जिसने पैदा किया आसमानों और पृथिवी को बीच छः दिन के।[2] फिर क़रार पकड़ा ऊपर अर्श के तदबीर करता है[3] काम की...। ३।

मं० ३। सि० ११। सू० १०। आ० ३॥

समीक्षक—क्या अल्लाह तुम्हारी नित्य सेवा करता है?[4] **आसमान=आकाश एक, और विना बनाया हुआ अनादि है, उसका बनाना लिखने से निश्चय हुआ कि वह 'क़ुरान' का कर्त्ता[5] 'पदार्थविद्या' को नहीं जानता था।** क्या परमेश्वर को सृष्टि को[6] छः दिन तक बनाना पड़ता है? तो जो "**हो मेरे हुक्म से और हो गया**" जब '**क़ुरान**' में ऐसा लिखा है[7] फिर छः दिन कभी नहीं लग सकते। और छः दिन लगना झूठ है। जो वह व्यापक होता, तो ऊपर अर्श[8] के क्यों ठहरता? और जब तदबीर[9] करता है काम की तो ठीक तुम्हारा ख़ुदा मनुष्य के समान है, क्योंकि जो सर्वज्ञ है, वह बैठा-बैठा तदबीर क्या करेगा? इससे विदित होता है कि ईश्वर को न जाननेवाले[10] जंगली लोगों ने यह पुस्तक बनाया होगा॥ ९७ ॥

९८. शिक्षा और दया वास्ते मुसलमानों के...। ५७। मं० ३। सि० ११। सू० १०। आ० ५७॥[11]

समीक्षक—क्या यह ख़ुदा मुसलमानों का ही है? दूसरों का नहीं? और पक्षपाती है, जो मुसलमानों

अग्राह्य हैं, क्योंकि अरबी मूल शब्द के अनुसार '**तौबः**' और उसके हिन्दी रूप के अनुसार '**तौबा**' शुद्ध हैं। अतः इस शोधसंस्करण में एकरूपता के लिए सर्वत्र '**तौबा**' ग्रहण किया गया है।

८. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, भद में यहां आयतसंख्याएं १२२, १२५ अशुद्ध लिखी हैं।

१. **उचित संशोधन**—मूलह०, मूलप्रति सं० में "**यह**" एकवचन अपप्रयोग है। बहुवचन प्रयोग द्विप्र०, द्वि०सं० में शुद्ध है।

२. **छह दिन में सृष्टि-उत्पत्ति की पुनरुक्ति**—द्र० आयतखण्ड संख्या ७८, १५१। बाइबल में—समु० १३ में आयतखण्ड संख्या ४५ और '**उत्पत्ति**' पुस्तक में पर्व एक।

३,५. **महामूर्ख लिपिकर-शोधक**—अयोग्य लिपिकरों-शोधकों की मूर्खता देखिए कि मुद्रणहस्तलेख में "**करता**" के स्थान पर "**कर्त्ता**" और "**कर्त्ता**" के स्थान पर "**करता**" वर्तनी लिखी है। वही द्विप्र० में छपी है। अब सभी सं० में इनका संशोधन कर लिया है। मूलह० में दूसरी वर्तनी ठीक है, पहली अशुद्ध है। **अनादि आकाश का उल्लेख पृ० ३९५ पर भी द्रष्टव्य है।**

४. **मुद्रणकाल में अपपरिवर्तन**—द्विप्र०, द्वि०सं० में से यह वाक्य हटा दिया गया है। हटाना उचित नहीं है, क्योंकि आयत में अल्लाह को '**परवरदिगार**'='**पालन-पोषण करनेवाला**' कहा है, जिसके उत्तर में इस वाक्यान्तर्गत व्यंग्य-प्रश्न को उठाया है। अतः इस प्रश्न का पाठ में होना आवश्यक है। इसको मुंशी जी ने मुद्रणह० में काटा है, जो अवांछनीय है।

६. **अपपाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में "**क्या परमेश्वर के सामने**" अपपाठ है। यहां यह उपयुक्त पाठ है—"**क्या परमेश्वर को सृष्टि को**"। यही ऊपर ग्रहण किया है।

७. **अन्यत्र वर्णन**—द्रष्टव्य है आयतखण्ड संख्याएं २७, ५३, १३९ और उनकी समीक्षाएं।

८. **लिपिकरकृत अशुद्ध पाठ की रोचक कहानी**—मूललिपिकर ने अपनी अयोग्यता के कारण इस शब्द को "**अरस**" लिखा। मुद्रणलिपिकर ने इसको नहीं समझा। उसने इसको "**आस**" लिख दिया। शोधक ने मुद्रणकाल में द्विप्र० में इसको भ्रान्ति से "**आसमान**" बना दिया। **स्वामी वेदानन्द सं०** और **पं० मीमांसक सं०** में यहां '**आकाश**' अपपाठ अनुमान से बना दिया। अन्य सभी सं० ने इसको शुद्ध कर लिया है। **अर्श** अर्थात् स्वर्ग का सिंहासन।

९. **तदबीर**=कोशिश, उपाय।

१०. **अपप्रयोग**—दोनों हस्त० और द्विप्र० में "**जाननेवालों**" अपप्रयोग है।

पर ही दया करे अन्य मनुष्यों पर नहीं। यदि मुसलमान ईमानदारों को कहते हैं, तो उनके लिये शिक्षा की आवश्यकता ही नहीं। और मुसलमानों से भिन्नों को उपदेश नहीं करता, तो ख़ुदा की विद्या ही व्यर्थ है॥ ९८॥

९९. .....और था अर्श अर्थात् सिंहासन उसका ऊपर पानी के, तो कि[१] परीक्षा लेवे तुमको, कौन तुममें से अच्छा है कर्मों में, जो कहे तू, अवश्य उठाये जाओगे तुम पीछे मृत्यु के....। ७।

मं० ३। सि० ११। सू० ११। आ० ७॥

समीक्षक—जब पानी पर ख़ुदा का सिंहासन है, तो वह एकदेशी होने से ख़ुदा ही नहीं बन सकता और[२] जब कर्मों की परीक्षा करता है, तो सर्वज्ञ ही नहीं। और जो मृत्यु पीछे उठाता है, तो दौरासुपुर्द[३] रखता है और अपने नियम जो कि '**मरे हुए न जीवें**', [को] तोड़ता है। यह ख़ुदा को बट्टा लगता है[४] ॥ ९९॥

१००. और कहा गया—'ऐ पृथिवी! अपना पानी निगल जा, और ऐ आसमान! बस कर, और पानी सूख गया....। ४४। और ऐ क़ौम मेरे![५] यह है निशानी[६] ऊंटनी अल्लाह की वास्ते तुम्हारे, बस, छोड़ दो उसको बीच पृथिवी अल्लाह के खाती फिरे'....। ६४।[७]

मं० ३। सि० ११। सू० ११। आ० ४४। ६४॥[८]

समीक्षक—क्या लड़केपन की बात है! पृथिवी और आकाश कभी बात सुन सकते हैं? वाह जी वाह! ख़ुदा की ऊंटनी भी है, तो ऊंट भी होगा? तो हाथी, घोड़े, गधे आदि[९] भी होंगे? और ख़ुदा का ऊंटनी से खेत खिलाना क्या अच्छी बात है? क्या ऊंटनी पर चढ़ता भी है? जो ऐसी बातें हैं तो नवाबी की-सी घसड़-पसड़ ख़ुदा के घर में भी हुई॥ १००॥

---

११. अशुद्ध उद्धरणसंख्या—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र० में यहां आयतसंख्या ५५ अशुद्ध लिखी है। यही अशुद्धि भद में है।

१-२. मुद्रणकाल में आयतपाठ-निष्कासन अनुचित—द्विप्र० में यह ''**और था......तो कि**'' आयतांश और उसकी महर्षिकृत समीक्षा ''**जब पानी......बन सकता और**'' तक निकाल दी है। मूलह०, मुद्रणहस्त० में यह पाठ है। इसको प्रकाशन के समय निकाला गया है। निकालने का कारण नहीं दर्शाया गया है। इसको मुंशी समर्थदान जी ने निकाला है।

३. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त०, तीनों सं० में ''**दौड़ा सुपुर्द**'' अपवर्तनी है। सभी सं० में यही अपवर्तनी है। टिप्पणी द्र० पृ० ९२१।

४. **त्रुटित आवश्यक पद और अपपाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**को**'' विभक्ति पद त्रुटित है। आगे **पं० युधिष्ठिर मीमांसक** ने ''**खुदा को बट्टा लगाना है**'' अपपाठ ग्रहण किया है। ''**लगता है**'' क्रिया-प्रयोग शुद्ध है, क्योंकि खुदा अपने नियम को तोड़ता है जिससे उसको स्वयं बट्टा लगता है, दूसरा कोई नहीं लगाता।

५. **क़ौम**—अरबी में यह शब्द पुल्लिंग है, अत: ''**मेरे**'' पुल्लिंग प्रयोग है।

६. **अपवर्तनी**—मुद्रणह०, द्विप्र० में ''**निसानी**'' अपवर्तनी है। अन्य सभी सं० में संशोधित है।

७. **ऊंटनी और समूद की कहानी**—समूद और सालेह दो जाति-भाई थे। सालेह ने इस्लाम स्वीकार कर लिया, समूद ने नहीं किया। हज० मुहम्मद ने लड़ने का बहाना बनाने के लिए समूद के क्षेत्र में अपनी एक ऊंटनी छुड़वा दी और कहा कि इसको चरने से कोई नहीं रोकेगा और एक दिन केवल यही अकेली पानी पीयेगी और दूसरे दिन शेष सब जानवर। उसे अल्लाह की ऊंटनी कहा गया। समूद ने उसे मरवा दिया। उसके बदले में हज० मुहम्मद ने समूद की जाति पर आक्रमण करके सब कुलवालों को मार दिया। आयतखण्ड संख्या १००, ११२, १२७, १७० में भी इसकी पुनरुक्ति है। ऐसे थे पैगम्बर मुहम्मद!

८. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मुद्रणह०, द्विप्र०, भद में यहां आयतसंख्याएं ४३, ६३ अशुद्ध हैं।

९. **अपप्रयोग**—मूलह०, मूलप्रति सं० में ''**घोड़ा, गधा आदि**'' एकवचन है, बहुवचन चाहिए। मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में पाठ संशोधित कर दिया है।

१०१. और सदैव रहनेवाले बीच उसके जब तक कि रहें आसमान और पृथिवी...। १०७। और जो लोग सुभागी हुए, बस, बहिश्त के सदा रहनेवाले हैं, जब तक रहें आसमान और पृथिवी....। १०८।

मं० ३। सि० १२। सू० ११। आ० १०७। १०८॥[१]

समीक्षक—जब दोज़ख और बहिश्त में क़यामत के पश्चात् सब लोग जायेंगे फिर आसमान और पृथिवी किसलिये रहेगी ? और तब दोज़ख और बहिश्त के, आसमान-पृथिवी के रहने तक अवधि हुई तो '**सदा रहेंगे बहिश्त वा दोज़ख़ में**',[२] यह बात झूठी हुई। ऐसा कथन अविद्वानों का होता है, ईश्वर वा विद्वानों का नहीं॥ १०१ ॥

१०२. जब यूसुफ़[३] ने अपने बाप से कहा कि ''ऐ बाप मेरे! मैंने एक स्वप्न देखा''.....। ४।

मं० ३। सि० १२। सू० १२। आ० ४ से ५९ तक [और आगे १०१ तक] ॥[४]

समीक्षक—इस प्रकरण में पिता-पुत्र का संवादरूप किस्सा-कहानी भरी है, इसलिये '**क़ुरान**' ईश्वर का बनाया नहीं। किसी मनुष्य ने मनुष्यों का इतिहास लिख दिया है॥ १०२ ॥

१०३. अल्लाह वह है जिसने खड़ा किया आसमानों को विना खंभे के देखते हो तुम उसको, फिर आराम किया ऊपर अर्श के अर्थात् स्वर्ग में, आज्ञा वर्तनेवाला किया सूरज और चांद को। २। और वही है जिसने बिछाया पृथिवी को। ३। उतारा आसमान से पानी; बस, बहे नाले साथ अन्दाजे के। १७। अल्लाह खोलता है भोजन को वास्ते जिसको चाहे और तंग करता है। २६।

मं० ३। सि० १३। सू० १३। आ० २। ३।[५] १७। २६॥

समीक्षक—मुसलमानों का ख़ुदा '**पदार्थविद्या**' कुछ भी नहीं जानता था। जो जानता, तो गुरुत्व न होने से, आसमान को खंभा लगाने की कथा कहने की कुछ भी आवश्यकता न थी।[६] यदि ख़ुदा

---

१. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मुद्रणह०, द्विप्र०, भद में यहां आयतसंख्याएं १०५, १०६ अशुद्ध हैं। मूलसं०, युमी, वेस, उदयपुर सं० में १०९ संख्या अशुद्ध है। १२ भी अपसंख्या है।

२. **परस्परविरुद्ध कथन**—**बहिश्त**=स्वर्ग में और **दोज़ख**=नरक में सदा रहने का कथन आयतखण्ड संख्या १६, ११२, १४१ में भी द्रष्टव्य है। यह क़यामत के निर्णय से परस्परविरुद्ध कथन है। जब क़यामत के दिन निर्णय बदलेगा तो '**सदा रहने का**' कथन उससे विरुद्ध हुआ।

३. **यूसुफ़**=(Joseph)—सूरा बारह का शीर्षक 'यूसुफ़' ही है। इस सूरा में यूसुफ़ और उसके भाइयों की कहानी है। यूसूफ़ और बिन यामीन दो सगे भाई थे तथा दस सौतेले थे। वे दस इन दोनों भाइयों से ईर्ष्या करते थे। एक दिन वे यूसुफ़ को बहकाकर ले गये और कुएं में डाल आये। पिता याकूब को कह दिया कि यूसुफ़ को भेड़िया खा गया। यूसुफ़ को वहां से गुजरते एक दल ने निकाला और मिश्र के व्यक्ति के हाथ बेच दिया। आगे दिखाया है कि युसुफ़ पर अनेक संकट आये परन्तु अल्लाह ने उसे बचाया। **अपवर्तनी**—मुद्रणकाल में द्विप्र० में ''**यूसूफ़**'' अपवर्तनी छपी है। अब सभी सं० में संशोधित है।

४. **स्वामी वेदानन्द सं० में उचित संख्या-संशोधन**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, भद में यहां ४ से ५९ तक; युमी, मूलसं० में ४ से ५७ तक पाठ मिलता है। स्वामी वेदानन्द सं० में इसको ४ से १०१ तक संशोधित किया है जो कुरान-वर्णन के अनुसार उचित होने से स्वामी वेदानन्द सं० की ग्राह्य है। उदयपुर सं० ने भी इसी संख्या को ग्रहण किया है।

५. **त्रुटित उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, भद में यहां आयतसंख्या ''३'' त्रुटित है। अन्य सभी सं० में है।

६. **ऋषिपाठ की अस्तव्यस्त वाक्यरचना**—मूलह०, मुद्रणह०, मूलप्रति सं० में यह वाक्य अस्त-व्यस्त है—''**जो जानता तो आसमान को खंभा लगाने की कथा-कहानी, गुरुत्व न होने से, कुछ भी आवश्यकता न थी।**'' द्विप्र०, द्वि०सं० में ''**कथा-कहानी कुछ भी न लिखता**'' यह कुछ शुद्ध वाक्य है। '**कहानी**' पद यहां अशुद्ध है क्योंकि यह पद श्रवणभ्रान्ति से लिखा है। ''**कथ कहने की**'' ऋषिलिखित पाठ को मुद्रणलिपिकर ने ''**कथा-कहानी**'' बना दिया।

स्वर्गरूप=अर्शरूप[1] एक स्थान में रहता है, तो वह सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक नहीं हो सकता। और जो ख़ुदा '**मेघविद्या**' जानता तो 'आकाश से पानी उतारा' लिखा, पुनः यह क्यों न लिखा कि 'पृथिवी से पानी ऊपर चढ़ाया'। इससे निश्चय हुआ कि '**क़ुरान**' का बनानेवाला '**मेघ की विद्या**' को भी नहीं जानता था। और जो विना अच्छे-बुरे कामों के सुख-दुःख देता है, तो पक्षपाती, अन्यायकारी, निरक्षर-भट्ट है॥ १०३॥

१०४. ....कह, निश्चय अल्लाह गुमराह करता है, जिसको चाहता है और मार्ग दिखलाता है, तरफ़[2] अपनी उस मनुष्य को रुजू[3] करता है। २७। मं० ३। सि० १३। सू० १३। आ० २७॥

समीक्षक—जब अल्लाह गुमराह करता है, तो ख़ुदा और शैतान में क्या भेद हुआ? जबकि शैतान दूसरों को गुमराह अर्थात् बहकाने से बुरा कहाता है, तो ख़ुदा भी वैसा ही बुरा काम करने से शैतान[4] क्यों नहीं? और बहकाने के पाप से [उसको] दोज़खी क्यों नहीं होना चाहिये?॥ १०४॥

१०५. इसी प्रकार उतारा हमने इस 'क़ुरान' को अरबी में,[5] जो पक्ष करेगा तू उनकी इच्छा का पीछे इसके आई तेरे पास विद्या से....। ३७। बस, सिवाय इसके नहीं कि ऊपर तेरे पैग़ाम[6] पहुंचाना है और ऊपर हमारे है हिसाब लेना। ४०। मं० ३। सि० १३। सू० १३। आ० ३७। ४०॥

समीक्षक—'क़ुरान' किधर की ओर से उतारा? क्या ख़ुदा ऊपर रहता है? जो यह बात सच है, तो वह एकदेशी होने से ईश्वर ही नहीं हो सकता, क्योंकि ईश्वर सब ठिकाने एकरस व्यापक है। पैग़ाम पहुँचाना हल्कारे का काम है और हल्कारे[7] की आवश्यकता उसी को होती है, जो मनुष्यवत् एकदेशी हो। और हिसाब लेना-देना भी मनुष्य का काम है, ईश्वर का नहीं, क्योंकि वह सर्वज्ञ है। [इससे][8] यह निश्चय होता है कि किसी अल्पज्ञ मनुष्य का बनाया '**क़ुरान**' है॥ १०५॥

१०६. और किया सूर्य, चन्द्र को सदैव फिरने वाले। ३३। ....निश्चय आदमी अवश्य अन्याय और पाप करनेवाला है। ३४। मं० ३। सि० १३। सू० १४। आ० ३३। ३४॥

समीक्षक—क्या चन्द्र, सूर्य सदा फिरते और पृथिवी नहीं फिरती? जो पृथिवी नहीं फिरे तो कई वर्षों के दिन-रात होवें। और जो मनुष्य निश्चय अन्याय और पाप करनेवाला है, तो '**क़ुरान**' से शिक्षा

---

१. **मुद्रणकालीन उचित संशोधन**—मूलह०, मूलप्रति सं० में "**स्वर्गरूप**" पाठ है, द्विप्र०, द्वि०सं० में "**अर्शरूप**" बनाया है। अनुवाद में दोनों हैं और दोनों का अर्थ एक है। आयत में "**अर्श**" प्रयोग है।

२. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में "**तर्फ़**" अपवर्तनी है।

३. **रुजू (रजूअ)**=आकर्षित करना।

४. **स्थानभ्रष्ट अपपाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में "**बुरा शैतान क्यों नहीं?**" वाक्य में "**बुरा**" विशेषण अस्थान में लिखे जाने से वाक्य का अपपाठ हो गया। "**शैतान**" तो बुरा है ही फिर "**बुरा शैतान**" क्या होगा? वस्तुतः यह "**काम**" का विशेषण है और उसके पूर्व होना ही उपयुक्त है। उदयपुर सं० आदि सभी में यह अपपाठ विद्यमान है।

५. **मूललिपिकर द्वारा त्रुटित पद**—मूललिपिकर ने प्रमादवश "**में**" पद त्रुटित छोड़ दिया है। उसी कारण से मुद्रणह० और सभी द्वि०सं० में यह पद त्रुटित है। पं० मीमांसक जी ने बृहत्कोष्ठक में तथा उदयपुर सं० में इस पद को ग्रहण कर लिया है।

६. **पैग़ाम**=सन्देश।

७. **अपप्रयोग**—मूलप्रति सं० में "**हल्कारा की**" अपप्रयोग है। चार शब्द पूर्व ठीक प्रयोग "**हल्कारे का**" है। द्वि०सं० में दोनों शुद्ध हैं। हल्कारा=संदेशवाहक।

८. **त्रुटित आवश्यक पद**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में "**इससे**" त्रुटित पद है।

करना व्यर्थ है, क्योंकि जिनका स्वभाव पाप ही करने का है, तो उनमें पुण्यात्मता कभी न होगी। और संसार में पुण्यात्मा और पापात्मा सदा दीखते हैं, इसलिये ऐसी बात ईश्वरकृत पुस्तक की नहीं हो सकती। और '**निश्चय**', '**अवश्य**' ये दोनों शब्द एकार्थक होने से पुनरुक्त हैं। **पुनरुक्त प्रमत्त वाक्य होता है।**।[१] १०६॥

१०७.[२] ....बस, जब ठीक करूँ मैं उसको, और फूंक दूं बीच उसके रूह अपनी से। बस, गिर पड़ो[३] वास्ते उसके सिज़्दा करते हुए। २९। कहा ऐ रब मेरे! इस कारण कि गुमराह किया तूने मुझको, अवश्य ज़ीनत[४] दूंगा मैं बीच वास्ते उसके पृथिवी के, और गुमराह करूंगा। ३९।

मं० ३। सि० १४। सू० १५। आ० २९। ३९॥[५]

समीक्षक—जो ख़ुदा ने अपनी रूह आदम साहब में डाली, तो वह भी ख़ुदा हुआ और जो वह ख़ुदा न था, तो सिज़्दा अर्थात् नमस्कारादि भक्ति करने में अपना 'शरीक' क्यों किया? जब शैतान को गुमराह करनेवाला ख़ुदा ही है, तो वह शैतान का भी शैतान, बड़ा भाई [और][६] गुरु क्यों नहीं? क्योंकि तुम लोग बहकानेवाले को शैतान मानते हो, तो ख़ुदा ने भी शैतान को बहकाया और प्रत्यक्ष शैतान ने कहा कि "मैं बहकाऊंगा", फिर भी उसको दण्ड देकर क़ैद क्यों न किया? और मार क्यों न डाला?॥ १०७॥

१०८. उत्पन्न किया आदमी को शुक्र से। ४। बस, एक ही वार[७].....और निश्चय भेजे हमने बीच हर उम्मत[८] के पैग़म्बर....। ३६।[९] ....जब चाहते हैं हम उसको, यह कहते हैं हम उसको, 'हो', बस, हो जाती है। ४०। मं० ३। सि० १४। सू० १६। आ० ४। ३६। ४०॥[१०]

समीक्षक—इससे एक जन्म सिद्ध होता है, परन्तु इसमें बड़ी भारी भूल है; क्योंकि जन्म अनेक होते हैं। जब जीव अनादि हैं तो उनके गुण, कर्म, स्वभाव भी अनादि हैं। उसका फल-भोग भी अनादि से चला आता है। पश्चात् एक जन्म का मानना व्यर्थ है। **इसका विशेष संवाद नवम समुल्लास में देख लेना।**[११] जो सब क़ौमों पर पैग़म्बर भेजे हैं, तो सब लोग जो कि पैग़म्बर की राय पर चलते हैं, वे

१. **मुद्रणकाल में निष्कासित वाक्य**—"**और निश्चय.....वाक्य होता है।**" द्विप्र०, द्वि०सं० में यह समीक्षाभाग हटा दिया है। कारण यह ज्ञात होता है कि शोधक ने वाक्यार्थ को भिन्न-भिन्न समझा है। 'निश्चय' और 'अवश्य' का दोनों प्रकार से अर्थ हो सकता है। यह पाठ मुद्रणह० में है। इसको मुद्रणसमय मुंशी जी ने निकाला है, जो अवांछनीय है।

२. **अनावश्यक आयतों का उचित निष्कासन**—मूलह०, मूलप्रति सं० में यहां ये दो आयतें हैं—"**ये आयतें हैं किताब की और कुरान कहनेवाले की॥ और अवश्य निश्चय किये हमने बीच आसमान में बुर्जे।**" (सू० १५। आ० १। १६) द्विप्र० में यहां से ये आयतें हटाई गई है। उनकी समीक्षा भी नहीं है अतः ये ग्राह्य नहीं हैं। मुद्रणहस्त० में इनको काटा हुआ है।

३. **उचित संशोधन**—मूलसं० में "**पड़ी**" अशुद्ध है, "**पड़ो**" द्वि०सं० में शुद्ध है। ४. **जीनत**=सुन्दरता, आकर्षण, मनोहरता।

५. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, द्विसं०, मूलसं०, भद में "**३९ से ४६ तक**" पाठ भी प्राप्त है। आयत में प्रस्तुत प्रसंग ३९ से आगे नहीं है अतः आगे की संख्या देना व्यर्थ है। युमी, उदयपुर सं० में "**से ४६**" इस पाठ को हटा दिया है।

६. **त्रुटित आवश्यक पद**—दोनों सं० में यहां '**और**' योजक अत्यावश्यक है।

७,११. **मुद्रणकाल में आयतपाठ-निष्कासन अनुचित**—द्विप्र०, द्वि०सं० में से यह आयत "**उत्पन्न किया......एक ही वार**" और उसकी समीक्षा "**इससे एक जन्म......देख लेना**" तक निकाल दी गई। यह आयत और समीक्षा इसलिए महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि केवल यही एक सन्दर्भ इस समु० में आया है जिसमें इस्लाम का '**एक जन्म होने**' का सिद्धान्त वर्णित है और उसकी समीक्षा है। इसको मुद्रणहस्त० में मुंशी जी द्वारा काटा हुआ है। यह निष्कासन अत्यन्त विचारहीन है।

८. **उम्मत**—धार्मिक समुदाय, किसी विशेष पैगम्बर का अनुयायी सम्प्रदाय।

काफ़िर क्यों? क्या दूसरे पैग़म्बर का मान्य नहीं, सिवाय तुम्हारे पैग़म्बर के? यह सर्वथा पक्षपात की बात है। जो सब देश में पैग़म्बर भेजे, तो आर्यावर्त में कौन-सा भेजा? इसलिये यह बात मानने योग्य नहीं। जब ख़ुदा चाहता है और कहता है कि **'पृथिवी हो जा',** वह जड़ कभी नहीं सुन सकती। ख़ुदा का हुक्म क्योंकर बजा[१] सकेगी? और सिवाय ख़ुदा के दूसरी चीज नहीं मानते, तो सुना किसने? और हो कौन गया? ये सब अविद्या की बातें हैं, ऐसी बातों को मूढ[२] लोग मानते हैं॥ १०८॥

१०९. और नियत करते हैं वास्ते अल्लाह के बेटियां, पवित्रता है उसको, और वास्ते उनके हैं जो कुछ चाहें। ५७। क़सम अल्लाह की अवश्य भेजे हमने पैग़म्बर। ६३।

मं० ३। सि० १४। सू० १६। आ० ५७। ६३॥[३]

समीक्षक—अल्लाह बेटियों से क्या करेगा? बेटियां तो किसी मनुष्य को चाहियें। क्यों बेटे नियत नहीं किये जाते? और बेटियां नियत की जाती हैं, इसका क्या कारण है, बताइये? क़सम खाना झूठों का काम है, ख़ुदा की बात नहीं, क्योंकि बहुधा संसार में ऐसा देखने में आता है कि जो झूठा होता है वही क़सम खाता है, सच्चा सौगन्द[४] क्यों खावे?॥ १०९॥

११०. ये लोग वे हैं कि मोहर रक्खी अल्लाह ने ऊपर दिलों उनके और कानों उनके और आँखों उनकी के और ये लोग वे हैं बेख़बर। १०८।[५] और पूरा दिया जावेगा हर जीव को जो कुछ किया है और वे अन्याय न किये जावेंगे। १११। मं० ३। सि० १४। सू० १६। आ० १०८। १११॥[६]

समीक्षक—जब ख़ुदा ने ही मोहर लगा दी तो वे बेचारे विना अपराध मारे गये, क्योंकि उनको पराधीन कर दिया। यह कितना बड़ा अपराध है? और फिर कहते हैं कि जिसने जितना किया है उतना ही उनको दिया जायेगा, न्यूनाधिक नहीं। भला, उन्होंने स्वतन्त्रता से पाप किये ही नहीं किन्तु ख़ुदा के कराने से किये, पुनः उनका अपराध ही न हुआ, उनको फल न मिलना चाहिये। इसका फल ख़ुदा को मिलना उचित है और जो पूरा दिया जाता है, तो क्षमा किस बात की की जाती है? और जो क्षमा की जाती है, तो न्याय उड़ जाता है। ऐसी गड़बड़ाध्याय की बात ईश्वर की कभी नहीं हो सकती, किन्तु

---

९. **मुद्रणलिपिकर के प्रमाद से त्रुटित आयत—''और निश्चय......पैगम्बर''** आयत मुद्रणलिपिकर ने त्रुटित छोड़ दी थी। बाद में किनारे पर लिखकर शोधक ने इस पाठ को पूर्ण किया है।

१०. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—यहां मुद्रणह० में ३, ३५, ३९; द्विप्र० में ३५, ३९ अशुद्ध आयतसंख्याएं लिखी हैं। मूलह०, भद में ३, ३५, ३८ अशुद्ध संख्याएं हैं। मूलसं० में ४ आयतसंख्या त्रुटित है।

१. **अपवाक्य और श्रवणभ्रान्ति**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में **''बना सकेगा''** अशुद्ध प्रयोग है। दोनों हस्त० और द्विप्र० में प्राप्त पूर्व स्त्रीलिंग-वाक्य के सम्बन्ध से यहां स्त्रीलिंग प्रयोग चाहिए, और **'हुक्म बजाना'** होता है, **'हुक्म बनाना'** नहीं। **''बनाना''** अशुद्ध है। यह श्रवणभ्रान्ति से लिखा गया है। दोनों हस्त०, द्विप्र०, द्वि०सं०, स्वामी वेदानन्द सं० में भी अशुद्धि है कि पहला वाक्य स्त्रीलिंग में है—**''सुन सकती''**, जबकि दूसरा पुल्लिंग में **''बना सकेगा''**। मूलसं० ने दोनों पुंल्लिंग में बदल दिये हैं। यहां स्त्रीलिंग प्रयोग वांछित है क्योंकि **''पृथिवी''** के प्रति सम्बोधन है। भद, युमी, उदयपुर सं० में दोनों वाक्य संशोधित हैं।

२. **मुद्रणकाल में व्यर्थ संशोधन**—द्विप्र०, द्वि०सं० में **''मूढ़''** के स्थान पर **''अनजान''** पाठ है। यह संशोधन व्यर्थ है।

३. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, भद में यहां आयतसंख्याएं ५६, ६२ अशुद्ध लिखी हैं।

४. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में **''सौगन्ध''** अशुद्ध वर्तनी है। उदयपुर सं० में भी अशुद्ध है।

५. **मोहर लगाने की पुनरुक्ति**—द्र० आयतखण्ड संख्या ५ भी।

६. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, भद में यहां आयतसंख्याएं ११५, ११८ अशुद्ध लिखी हैं।

निर्बुद्धि छोकरों की होती है[१] ॥ ११० ॥

१११. ....और किया हमने दोज़ख़ को, वास्ते काफ़िरों के घेरनेवाला स्थान। ८। और हर आदमी को लगा दिया हमने उसको अमलनामा[२] उसका बीच गर्दन उसकी के, और निकालेंगे हम वास्ते उसके दिन क़यामत के एक किताब कि देखेगा उसको खुला हुआ। १३। और बहुत मारे हमने क़ुरनून से पीछे नूह[३] के....। १७। मं० ४। सि० १५। सू० १७। आ० ८। १३। १७॥[४]

समीक्षक—यदि काफ़िर वे ही हैं कि जो[५] **'क़ुरान'**, पैग़म्बर और **'क़ुरान'** के कहे ख़ुदा, सातवें आसमान और **'नमाज़'**[६] आदि को न मानने वाले [हैं],[७] उन्हीं के लिये दोज़ख़ होवे; तो यह बात केवल पक्षपात की ठहरेगी।[८] क्योंकि क्या **'क़ुरान'** के ही माननेवाले सब अच्छे और अन्य के माननेवाले सब बुरे कभी हो सकते हैं? यह बड़ी लड़केपन की बात है कि उसकी[९] गर्दन पर कर्म की किताब[१०] खुदा ने लिख दी। यह बात सर्वथा विरुद्ध है, क्योंकि गर्दन की नाड़ी-नाड़ी और हाड़-हाड़ देखने से भी कुछ भी कहीं लिखा नहीं पाता,[११-१२] और क़यामत की रात को ख़ुदा किताब निकालेगा तो आजकल वह किताब कहां है? क्या साहूकार की बही-समान लिखता रहता है? हां, यहां यह विचारना चाहिये कि जो पूर्वजन्म नहीं, तो जीवों के कर्म ही नहीं हो सकते, तो फिर कर्म की किताब क्या लिखी? और जो विना कर्म के लिखा तो उन पर अन्याय किया, क्योंकि विना अच्छे-बुरे कर्मों

१. **मुद्रणकालीन अपपरिवर्तन**—द्विप्र० में इस वाक्य को इस प्रकार परिवर्तित किया है—''**ऐसा गड़बड़ाध्याय ईश्वर का कभी नहीं हो सकता किन्तु निर्बुद्धि छोकरों का होता है।**'' यहां ''**अध्याय**'' की नहीं ''**बात**'' की आलोचना है। पूर्व वाक्यों में 'बात' का प्रसंग है। दोनों हस्तलेखों में यह त्रुटित पाठ है—''**ऐसी गड़बड़ाध्याय की ईश्वर की कभी नहीं हो सकती, किन्तु निर्बुद्धि छोकरों की होती है।**'' स्पष्ट है कि लिपिकरों के प्रमाद से यहां ''**बात**'' पद छूट गया है। शोधकों ने द्विप्र० में इस प्रसंगप्राप्त त्रुटित पद के परिवर्धन पर ध्यान नहीं दिया, ''**ऐसा गड़बड़ाध्याय.....नहीं हो सकता निर्बुद्धि छोकरों का होता है**'' पुंल्लिंग में सारा पाठ नया बना दिया, जो नितान्त अनावश्यक है। सभी द्वि०सं० में यही शोधक द्वारा विकृत त्रुटित पाठ है।

२. **अपपरिवर्तन**—द्वि०सं० में ''**असलनामा**'' अपप्रयोग है। यह ''**अमलनामा**'' शब्द है। **अमलनामा**= कर्मविवरणपत्र, जिसके अनुसार कर्मफल मिलता है। **द्वि०सं०** और **पं० भगवद्दत्त सं०** को छोड़कर सभी सं० में शुद्ध प्रयोग है। दोनों हस्तलेखों में भी शुद्ध प्रयोग है। द्वि०सं० में यह मुद्रणदोष भी हो सकता है।

३. **नूह**=(Nooh) क़ुरान के अनुसार एक पैगम्बर। अवान्तर जल प्रलय के समय जिसने नौका के द्वारा जूदी पर्वत पर शरण लेकर अपनी तथा सृष्टि की नस्लों की रक्षा की। संस्कृत साहित्य में इसका नाम **'मनुः'** है। **'नूह'** उसी का अपभ्रंश है। मुसलमानों के साथ यहूदी और ईसाई भी इसको पैगम्बर मानते हैं। समु० १३ में इसी कथा का वर्णन देखिए आयतखण्ड संख्या १४, १५ में। इस समु० की आयत १३१ में भी इसका उल्लेख है।

४. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, भद में यहां आयतसंख्याएं ७, १२, १६ अशुद्ध हैं।

५-१०. **त्रुटित और अपपाठ**—(५) मूलह०, मूलप्रति सं० में ''**जो**'' त्रुटित है। (६) मूलह०, मूलप्रति सं० में ''**निवाज़**'' अपपाठ है। (७) दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**हैं**'' क्रिया त्रुटित है। (८) दोनों हस्त० और तीनों संस्करणों में ''**ठहरे**'' अपपाठ है। (९) मूलह०, मूलप्रति सं० में ''**उसके**'' अपपाठ है। (१०) मूलह०, मूलप्रति में ''**कर्म की रेख**'' अपपाठ है। **'कर्म की किताब'** होना चाहिए। देखिए आगे 'किताब' प्रयोग है। यह 'किताब' ही कयामत की रात खुलेगी, 'रेख' नहीं खुला करती।

११-१२. **मुद्रणकाल में मुंशी जी द्वारा अनावश्यक परिवर्धन**—(११) द्विप्र०, द्वि०सं० में उक्त वाक्य के स्थान पर ''**प्रत्येक की गर्दन में कर्म पुस्तक! हम तो किसी एक की भी गर्दन में नहीं देखते**'' बहुत ही शिथिल शैली का परिवर्तन है। मूलह०, मुद्रणह०, मूलसं० का उपर्युक्त पाठ अधिक प्रभावी है। (१२) द्विप्र०, द्वि०सं० में अप्रासंगिक रूप से यहां दो पंक्तियां बढ़ाई हैं—''**यदि इसका प्रयोजन कर्मों का फल देना है तो फिर मनुष्यों के दिलों, नेत्रों आदि पर मोहर रखना और पापों का क्षमा करना क्या खेल मचाया है?**'' न तो आयत में नेत्रों आदि की मोहर की कोई चर्चा है, न कर्मफल देने की; फिर इस पाठ-परिवर्धन की कहां आवश्यकता हो गई? अत: यह अवांछनीय है। यह पाठ मुंशी समर्थदान जी द्वारा कार्य परिवर्धित है।

के उनको सुख-दुःख क्यों दिया? जो कहो कि ख़ुदा की मर्ज़ी,[१] तो भी उसने अन्याय किया। **अन्याय उसी को कहते हैं कि विना बुरे-भले कर्म किये दुःख-सुखरूप फल न्यूनाधिक देना।** और उस समय ख़ुदा ही किताब बांचेगा वा कोई सरिश्तःदार[२] सुनावेगा? जो ख़ुदा ने ही दीर्घकाल सम्बन्धी जीवों को विना अपराध मारा तो वह अन्यायकारी हो गया। जो अन्यायकारी होता है वह ख़ुदा ही नहीं हो सकता॥ १११॥

११२. ....और दिया हमने समूद[३] को ऊंटनी प्रमाण....।५९। और बहका जिसको बहका सके....।६४। जिस दिन बुलावेंगे हम उन लोगों को साथ पेशवाओं[४] उनके के; बस, जो कोई दिया गया अमलनामा उसका बीच दाहिने हाथ उसके के.....।७१।

मं० ४। सि० १५। सू० १७। आ० ५९।६४।७१॥[५]

समीक्षक—वाह! जितनी ख़ुदा की निशानियां[६] साश्चर्य हैं, उनमें से एक ऊंटनी भी ख़ुदा के होने में प्रमाण अथवा परीक्षा में साधक है! यदि ख़ुदा ने शैतान को बहकाने का हुक्म दिया, तो ख़ुदा ही शैतान का सरदार और सब पाप करानेवाला ठहरा। ऐसे को ख़ुदा कहना केवल कम-समझ की बात है। जब क़यामत की रात[७] अर्थात् प्रलय में ही न्याय करने-कराने के लिये पैग़म्बर और उनके उपदेश माननेवालों को ख़ुदा बुलावेगा, तो जब तक प्रलय न होगा, तब तक सब दौरासुपुर्द रहे, और दौरासुपुर्द[८] सबको दुःखदायक है जब तक न्याय न किया जाय। इसलिये **शीघ्र न्याय करना न्यायाधीश का उत्तम काम है।** यह तो **'पोपाँबाई का न्याय'**[९] ठहरा। जैसे कोई न्यायाधीश कहे कि जब तक पचास वर्ष तक के चोर और साहूकार इकट्ठे न हों, तब तक उनको दण्ड [न देना चाहिये][१०] वा प्रतिष्ठा न करनी चाहिये; वैसे[११] ही यह हुआ कि एक तो पचास वर्ष तक दौरासुपुर्द रहा और एक आज ही पकड़ा गया। ऐसा काम न्याय का नहीं हो सकता। **न्याय तो वेद और 'मनुस्मृति' का[१२] देखो जिसमें क्षणमात्र भी विलम्ब नहीं होता और अपने-अपने कर्मानुसार दण्ड वा प्रतिष्ठा सदा पाते रहते हैं।** दूसरा, पैग़म्बरों

---

१. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में **''मरजी''** अपवर्तनी है।
२. **सरिश्तःदार**=किसी विभाग का कोई कर्मचारी। इसका हिन्दी रूप **'सरिश्तेदार'** है।
३. **समूद**=(Thamud) समूद जाति का व्यक्ति, देखिए पृ० ९९७ पर टिप्पणी।
४. **पेशवा**=मुखिया, नेता।
५. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, भद में यहां आयत संख्याएं ५७, ६२, ६९ अशुद्ध हैं।
६. **अपप्रयोग**—दोनों हस्त० और तीनों मूलप्रति सं० में **''निशानी''** एकवचन अपप्रयोग है। अन्य सं० में भी अपप्रयोग है।
७. **त्रुटित पद**—मूलप्रति सं० में **''रात''** पद त्रुटित है।
८. **अपप्रयोग**—दोनों हस्त० द्विप्र०, उदयपुर सं० और मूलसं० में **''दौड़ासुपुर्द''** अपप्रयोग हैं।
९. **पोपांबाई का न्याय**—अन्धेर-न्याय। उलट-पुलट निर्णय।
१०. **त्रुटित आवश्यक क्रिया**—दोनों सं० में **''न देना चाहिये''** क्रिया त्रुटित है। **''दण्ड''** के साथ कोई क्रिया न होने से वाक्य पूर्ण और सार्थक नहीं है।
११. **अपप्रयोग**—दोनों हस्त०, तीनों सं० में **''वैसा''** अपप्रयोग है। पूर्वोक्त **''जैसे''** पद के सम्बन्ध से **''वैसे''** प्रयोग अपेक्षित है।
१२. **पं० मीमांसक सं० में अपपरिवर्तन**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में यह उपयुक्त पाठ मिलता है—**''न्याय तो वेद और मनुस्मृति का देखो''**। आश्चर्य है, ठीक पाठ को **पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक** ने अपपाठ घोषित कर अपना नया बना दिया—**''न्याय [के लिये] तो वेद और मनुस्मृति देखो''**। वाक्य में **'न्याय'** उद्देश्य है और उसमें विलम्ब न होना विधेय है। उपलब्ध वाक्य ही शुद्ध एवं ग्राह्य है। दोनों हस्त०, द्विप्र० में **''का''** पद त्रुटित है। सभी सं० ने इसका परिवर्धन कर लिया है।

को गवाही के तुल्य रखने से ईश्वर की सर्वज्ञता की हानि है। भला, ऐसा पुस्तक ईश्वरकृत और ऐसे पुस्तक का उपदेश करनेवाला कभी ईश्वर हो सकता है? कभी नहीं॥ ११२॥

११३. ये लोग वास्ते उनके हैं बाग़ हमेशह रहने के, चलती हैं नीचे उनके से नहरें, गहने पहिनाये जावेंगे बीच उसके कंगन सोने के-से, और पोशाक पहिनेंगे वस्त्र हरित लाही[१] के से, और ताफ़ते[२] के से, तकिये किये हुए बीच उसके ऊपर तख़्तों[३] के, अच्छा है पुण्य और अच्छी है बहिश्त लाभ उठाने की। ३१।[४] मं० ४। सि० १५। सू० १८। आ० ३१॥[५]

समीक्षक—वाह जी वाह! क्या '**क़ुरान**' का स्वर्ग है जिसमें बाग़, गहने, कपड़े, गद्दी, तकिये आनन्द के लिये हैं। भला, कोई बुद्धिमान् यहां विचार करे, तो यहां से वहां मुसलमानों के बहिश्त में अधिक कुछ भी नहीं है, सिवाय अन्याय के। वह यह कि कर्म उनके अन्तवाले, और फल उनके अनन्त। और जो मीठा नित्य खावे, तो थोड़े दिन में विष के समान प्रतीत होता है। जब सदा वे सुख भोगेंगे, तो उनको सुख ही दुःख रूप हो जायगा। इसलिये **महाकल्प पर्यन्त[६] मुक्तिसुख भोगके पुनर्जन्म पाना ही सत्य सिद्धान्त है**॥ ११३॥

११४. और ये बस्तियां हैं कि मारा हमने उनको जब अन्याय किया उन्होंने, और हमने उनके मारने की प्रतिज्ञा स्थापित की। ५९। मं० ४। सि० १५। सू० १८। आ० ५९॥[७]

समीक्षक—भला, सब बस्ती-भर पापी कभी हो सकती है? और पीछे से प्रतिज्ञा करने से ईश्वर सर्वज्ञ नहीं रहा, क्योंकि जब उनका अन्याय देखा तब प्रतिज्ञा की, पहले नहीं जानता था। इससे दयाहीन भी ठहरा॥ ११४॥

११५. और वह जो लड़का, बस, थे मा-बाप उसके ईमानवाले। बस, डरे हम यह कि पकड़ उनको सरकशी[८] में और कुफ़्र में। ८०। यहां तक कि पहुंचा जगह डूबने सूर्य की, पाया उसको डूबता था बीच चश्मे कीचड़ के। ८६। कहा, ऐ ज़ुलक़रनैन[९]! निश्चय याजूज,[१०] माजूज[११] फ़साद करनेवाले हैं बीच पृथिवी के....। ९४। मं० ४। सि० १६। सू० १८। आ० ८०। ८६। ९४॥[१२]

समीक्षक—भला, यह ख़ुदा की कितनी बेसमझी[१३] है। इस शङ्का से डरा कि यह लड़का अपने

---

१. **लाही**=महीन रेशमी कपड़ा। २. **ताफ्तः**=चमकीला रेशमी कपड़ा।

३. **अपवर्तनी**—दोनों सं० में यहां "**तख़तों**" अपवर्तनी है, "**तख़्तों**" शुद्ध है। **संशोधन-पुष्टि**—शुद्ध प्रयोग आयतखण्ड संख्या १५८ में द्रष्टव्य है।

४. **क़ुरान में बहिश्त के लालच की पुनरुक्तियां**—क़ुरान में लोगों को स्वर्ग का लालच देकर फंसाने सम्बन्धी अनेक पुनरुक्तियां पाई जाती हैं। जैसे—द्रष्टव्य है आयतखण्ड संख्या ९,१२,५०,६०,९३,१४१,१४२,१४८,१४९,१५०,१६३ आदि।

५. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, भद में यहां आयतसंख्या ३० अशुद्ध लिखी है।

६. **अन्यत्र वर्णन**—द्रष्टव्य है नवम समुल्लास में महाकल्प की अवधि पृ० ४४५ पर।

७. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, भद में संख्या ५७ अशुद्ध है। उदयपुर सं० में ५९ से पूर्व "**आ०**" त्रुटित है।

८. **सरकशी**=आज्ञा की उल्लंघना, विद्रोह। ९. **जुलक़रनैन**=Dhu'l Qarneyn. (एक बादशाह)

१०-११. **याजूज**=Gog, **माजूज**=Mqgog. कुरान के मतसे, ये दो पूर्वी एशिया की जातियां थीं जो एशिया और योरोप में लूटमार मचाती थीं। मतान्तर से इनको सेधोन, मंगोल, तातारी कहा गया है।

१२. **अशुद्ध उद्धरण संख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, भद में यहां आयत संख्याएं ७८, ८४, ९२ अशुद्ध लिखी हैं। वेस और उदयपुर सं० में ८६ के स्थान पर ८८ अशुद्ध आयतसंख्या लिखी है।

मा-बाप को कहीं[१] मेरे मार्ग से बहकाकर उलटे न कर दिये जावें।[२] यह कभी ईश्वर की बात नहीं हो सकती। अब आगे की अविद्या की बात देखिये कि इस किताब का बनानेवाला सूर्य को एक झील में रात्रि में[३] डूबा जानता है, फिर प्रातःकाल निकलता है। भला, सूर्य तो पृथिवी से बहुत बड़ा है, वह नदी वा झील वा समुद्र में कैसे डूब सकेगा? **इससे यह विदित हुआ कि 'क़ुरान' के बनानेवाले को 'भूगोल-खगोल की विद्या' नहीं थी।** जो होती तो ऐसी विद्याविरुद्ध बात क्यों लिखता?[४] और इस पुस्तक के माननेवालों को भी विद्या नहीं है। जो होती तो ऐसी मिथ्या बातों से युक्त पुस्तक को क्यों मानते? अब देखिये ख़ुदा का अन्याय! आप ही पृथिवी का बनानेवाला राजा न्यायाधीश है और याजूज, माजूज को पृथिवी में फ़साद भी करने देता है। यह ईश्वरता की बात से विरुद्ध है। इससे ऐसे पुस्तक[५] को जंगली लोग माना करते हैं, विद्वान् नहीं॥ ११५॥

११६. और याद करो बीच किताब के मरियम[६] को, जब जा पड़ी लोगों अपने से [अलग होकर][७] मकान पूर्वी में। १६। बस, पड़ा उनसे इधर परदा। बस, भेजा हमने रूह अपनी को अर्थात् फ़रिश्ता। बस, सूरत पकड़ी वास्ते उसके आदमी पुष्ट की। १७। कहने लगी, निश्चय मैं शरण पकड़ती हूं रहमान की तुझसे, जो है तू परहेज़गार। १८। कहने लगा, ''सिवाय इसके नहीं कि मैं भेजा हुआ हूँ मालिक तेरे के से, तो कि दे जाऊं मैं तुझको लड़का पवित्र। १९।'' [मरियम ने][८] कहा, ''कैसे होगा वास्ते मेरे लड़का, नहीं हाथ लगाया मुझको [किसी][९] आदमी ने, नहीं मैं बुरा काम करनेवाली। २०।'' बस, गर्भित हो गई साथ उसके और जा पड़ी साथ उसके, मकान दूर अर्थात् जंगल में। २२।[१०,११] मं० ४। सि० १६। सू० १९। आ० १६।१७।१८।१९।२०।२२॥[१२]

समीक्षक—अब बुद्धिमान् विचार लें कि फ़रिश्ते सब खुदा की रूह हैं, तो खुदा से अलग पदार्थ नहीं हो सकते। और शैतान भी नापाक रूह खुदा की ही हुई, तो खुदा ही नापाक हुआ। यदि ऐसा है तो ऐसे नापाक खुदा के भक्त पाक कैसे हो सकेंगे?[१३] **दूसरा यह अन्याय कि वह मरियम कुमारी के लड़का होना। किसी का संग करना नहीं चाहती थी, परन्तु खुदा के हुक्म से फ़रिश्ते ने उसको**

---

१३. **अपप्रयोग**—दोनों हस्त०, तीनों सं० में '**बेसमझ**' विशेषण है, यहां '**नासमझी**' भाववाचक प्रयोग चाहिए।

१-४. **अपप्रयोग**—(१) मूलह०, मूलप्रति सं० में '**शायद**' अपपाठ है। द्विप्र०, द्वि०सं० में '**कहीं**' प्रयोग ठीक है। (२) मूलह०, मूलप्रति सं० में ''**उल्लंघन न कर देवे**'' अपपाठ है। द्वि० सं० में ''**उलटे न कर दिये जावें।**'' प्रयोग ठीक है। (३) दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**को**'' अपविभक्ति है। (४) तीनों सं० में ''**लिख देते**'' अपक्रिया है।

५. **शैलीविरुद्ध प्रयोग**—सम्पूर्ण सत्यार्थप्रकाश में और इस समु० में प्रायः सर्वत्र ''**पुस्तक**'' शब्द का पुंल्लिंग में प्रयोग है। यहां दोनों संस्करणों में ''**ऐसी पुस्तक**'' स्त्रीलिंग प्रयोग है, अतः अग्राह्य है।

६. **अपवर्तनी**—यहां दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**मर्य्यम**'' अपवर्तनी है। '**मरियम**' ग्राह्य है। द्र० पृ० ८९१ पर टिप्पणी।

७-९. **त्रुटित पाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में बृ० कोष्ठकान्तर्गत पाठ त्रुटित हैं। कुरान में हैं। स्पष्टता के लिए आवश्यक हैं।

१०. **पुनरुक्ति ईसा-जन्मकथा की**—द्रष्टव्य आयतखण्ड संख्या ५३, १२० में तथा समु० १३ में आयतखण्ड संख्या ६३, १०१ भी।

११. **बाइबल में मरियम की यही कथा**—स्वयं को फ़रिश्ता कहने वाले किसी व्यक्ति से कुंवारी मरियम के गर्भवती होने की यह कथा बाइबल, मत्ती 'इजील, पर्व १ में तथा समु० १३ के आयतखण्ड ६३ में भी है।

१२. **मुद्रणलिपिकर का प्रमाद व अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, द्विप्र०, भद में यहां आयतसंख्याएं १५, २१ अशुद्ध हैं, २०, २२ त्रुटित हैं। मुद्रणह०, भद में ५ संख्या (१५ के स्थान पर) अशुद्ध है। यह मुद्रणलिपिकर के प्रमाद से है।

१३. **मुद्रणकाल में मुंशी जी द्वारा पाठनिष्कासन अनुचित**—मूलह०, मुद्रणह० के ''**और शैतान.....सकेंगे**'' पाठ को मुंशी समर्थदान जी ने मुद्रणकाल में द्विप्र० में से गलत निकाला है। यह प्रासंगिक है, अतः ग्राह्य है।

बलात्कार-पूर्वक गर्भवती[१] **किया। यह न्याय से विरुद्ध बात है।** यहाँ अन्य भी असभ्यता की बातें बहुत लिखी हैं, उनको लिखना उचित नहीं समझा॥ ११६॥

११७. क्या नहीं देखा तू ने यह कि भेजा हमने शैतानों को ऊपर काफ़िरों के। बहकाते हैं उनको बहकाने पर। ८३। मं० ४। सि० १६। सू० १९। आ० ८३॥[२]

समीक्षक—जब ख़ुदा ही बहकाने के लिये शैतानों को भेजता है तो बहकनेवालों का कुछ दोष नहीं हो सकता और न उनको दण्ड हो सकता [है,][३] और न शैतानों को; क्योंकि यह ख़ुदा के हुक्म से सब होता है, इसका फल ख़ुदा को होना चाहिये। जो [वह][४] सच्चा न्यायकारी है, तो उसका फल दोज़ख़ आप ही भोगे, और जो न्याय को छोड़के अन्याय को करे, तो अन्यायकारी हुआ, **अन्यायकारी ही पापी कहाता है**॥ ११७॥

११८. और निश्चय क्षमा करनेवाला हूं वास्ते उस मनुष्य के तौबा की और ईमान लाया और कर्म किये अच्छे, फिर मार्ग पाया। ८२। मं० ४। सि० १६। सू० २०। आ० ८२॥[५]

समीक्षक—जो तौबा से पाप क्षमा करने की बात '**क़ुरान**' में है, यह सबको पापी करने वाली है;[६] क्योंकि पापियों को इससे पाप करने का साहस बहुत बढ़ जाता है। इससे यह पुस्तक और इसका बनानेवाला पापियों को पाप कराने में हौसला[७] बढ़ानेवाले हैं। इससे यह पुस्तक परमेश्वरकृत और इसमें कहा हुआ परमेश्वर भी नहीं हो सकता॥ ११८॥

११९. ....और जिसको चाहा मारा हमने, हद्द से निकलनेवालों को। ९। .....बस, पवित्रता है अल्लाह मालिक अर्श के को....। २२।[८] **और किये हमने बीच पृथिवी के पहाड़, ऐसा न हो कि हिल जावे....। ३१।** मं० ४। सि० १७। सू० २१। आ० ९। २२। ३१॥[९]

समीक्षक—देखिये, ग़दर-लूटमार कि जिसको चाहा[१०] उसको[११] मारा और जिसको चाहा उसको

---

१. **मुद्रणकाल में पद-निष्कासन अनुचित**—मूलह०, मूलप्रति सं० में "**पूर्वक**" पद त्रुटित है जबकि मुद्रणकाल में द्विप्र०, द्वि० सं० में से "**बलात्कार**" पद भी हटा दिया गया है। यह निष्कासन अनुचित है, क्योंकि आयत के वर्णन के अनुसार मरियम को बलात्कारपूर्वक अर्थात् उसके न चाहते हुए उसको गर्भवती किया था। यही बात ग्रन्थकार ने समीक्षा में लिखी है और कुरान के इस प्रसंग में भी ऐसा ही वर्णन है। बाइबल में भी ऐसा ही उल्लेख मिलता है (पृ० ८९१)।

२. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, भद, द्विप्र० में यहां आयतसंख्या ८१ अशुद्ध लिखी है।

३,४. **त्रुटित आवश्यक पद**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में "**है**" क्रिया और "**वह**" पद त्रुटित हैं। वाक्यरचना हेतु दोनों आवश्यक हैं।

५. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, भद, द्विप्र० में यहां आयतसंख्या ७८ अशुद्ध लिखी है।

६. **अपपाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में यह अपपाठ है—"**सबको पापी करानेवाली है**"। अन्य सभी सं० में यही अपपाठ है।

७. **अपवर्तनी**—मूलह०, मूलप्रति सं० में "**होंसला**" और द्विप्र० में "**होसिला**" अपवर्तनी है। द्वि०सं० में संशोधित है।

८,१२. **मुद्रणकाल में आयत और समीक्षा का निष्कासन अनुचित**—द्विप्र०, द्वि०सं० में आयतखण्ड संख्या ११९ की पहली दो आयतों ९, २२ को निकाल दिया है। इसी प्रकार उनकी समीक्षाओं वाले पाठ "**देखिये गदर....नहीं हो सकता**" को भी निकाल दिया है। इसका कोई कारण प्रस्तुत नहीं किया है। यह पाठ मुद्रणहस्तलेख में है, इसको मुद्रण-काल में मुंशी समर्थदान जी ने काटा है, जो अवांछनीय है। महर्षि के लेखन-श्रम को उन्हें व्यर्थ नहीं करना चाहिए था।

९. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—यहां मुद्रणह० में २१, ३०, द्विप्र में आयतसंख्या ३० (३१ के स्थान पर) अशुद्ध लिखी है। मूलह०, भद में २१, ३० अशुद्ध हैं। मूलसं० में २१ संख्या अशुद्ध है, २२ चाहिए।

१०. **त्रुटित क्रिया**—मूलह०, मुद्रणह०, मूलप्रति सं० में '**चाहा**' क्रिया त्रुटित है, इसके बिना वाक्य ही नहीं बनता।

बचाया! भले-बुरे कर्म की अपेक्षा कुछ नहीं करता। जब सातवें आसमान पर तख़्त का निवासी अल्लाह है, वह सब जगत् का स्रष्टा, धर्त्ता, ज्ञाता कभी नहीं हो सकता।[११] यदि '**क़ुरान**' का बनानेवाला पृथिवी का घूमना आदि जानता, तो यह बात कभी नहीं कहता कि पहाड़ों के धरने से पृथिवी नहीं हिलती। शंका हुई कि जो पहाड़ न धरता, तो हिल जाती! इतने कहने पर भी भूकम्प में क्यों डिग जाती है?॥ ११९ ॥

१२०. (और शिक्षा दी हमने उस औरत को)[१] और रक्षा की उसने अपने गुह्य अङ्गों की। बस, फूंक दिया हमने बीच उसके रूह अपनी को। ९१।[२] मं० ४। सि० १७। सू० २१। आ० ९१॥[३]

समीक्षक—ऐसी अश्लील बातें ख़ुदा के पुस्तक,[४] ख़ुदा की और सभ्य मनुष्य की भी नहीं होती। जबकि मनुष्यों में ऐसी-ऐसी बातों का लिखना अच्छा नहीं, तो परमेश्वर के सामने क्योंकर अच्छा हो सकता है? ऐसी-ऐसी बातों से '**क़ुरान**' दूषित होता है। यदि अच्छी बातें होती, तो अति प्रशंसा होती, जैसे वेदों की॥ १२० ॥

१२१. क्या नहीं देखा तूने यह कि अल्लाह को सिज़्दा करते हैं जो कोई बीच आसमानों और पृथिवी के हैं, सूर्य और चन्द्र, तारे और पहाड़, वृक्ष और जानवर....। १८। ....पहनाये जावेंगे बीच उसके कंगन सोने और मोती के और पहनावा उनका बीच उसके रेशमी है। २३। ....और पवित्र रख घर मेरे को वास्ते गिर्द फिरनेवालों के और खड़े रहनेवालों के। २६। फ़िर चाहिये कि दूर करें मैल अपने और पूरी करें भेटें अपनी और चारों ओर फिरें घर क़दीम[५] के। २९। .....तो कि नाम अल्लाह का याद करें....। ३४। मं० ४। सि० १७। सू० २२। आ० १८। २३। २६। २९। ३४॥[६]

समीक्षक—भला, जो जड़ वस्तुयें हैं वे[७] परमेश्वर को जान ही नहीं सकते, फिर वे उसकी भक्ति क्योंकर कर सकते हैं? इससे यह पुस्तक ईश्वरकृत तो कभी नहीं हो सकता, किन्तु किसी भ्रान्त का

---

११. **अपप्रयोग**—मूलह०, मुद्रणह०, मूलप्रति सं० में '**उसके**' अपप्रयोग है। **संशोधन पुष्टि**—आगे इसी वाक्य में '**उसको**' शुद्ध है।

१. **उपयुक्त संशोधन**—क़ुरान के विद्वान् **पं० रामचन्द्र देहलवी** के अनुसार "**और शिक्षा दी हमने उस औरत को**" पाठांश आयत का मूल भाग नहीं है। यह अनुवादकों द्वारा आयत की संगति के लिए किया गया अध्याहार है, अत: इसको कोष्ठक में रखा जाना उपयुक्त है। (द्रष्टव्य, "सत्यार्थप्रकाश १४ समु० में उद्धृत कुरान की आयतों का अनुवाद", पृ०-'ग')

२. **मरियम की कथा का अन्यत्र वर्णन**—यह कथा ईसा की माता मरियम के लिए है। देखिए आयतखण्ड ५३ और ११६ आयतें जिनमें उसका अनिच्छा से फरिश्ते से गर्भवती होना लिखा है। ख़ुदा कहता है, मैंने उसमें अपनी रूह को प्रविष्ट कराया है। इन्हीं कथनों के आधार पर अवैध सन्तान ईसा को 'ईश्वरपुत्र' की महिमा से मंडित किया है।

३. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र० भद में यहां आयतसंख्या ८८ अशुद्ध लिखी है।

४. **शैलीविरुद्ध प्रयोग**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में यह वाक्य महर्षि की स्थापित शैली के विरुद्ध है। सम्पूर्ण सत्यार्थप्रकाश में महर्षि की यह स्थापित प्रयोग शैली है कि वे '**पुस्तक**' पद को पुंल्लिंग में प्रयोग करते हैं। यह महर्षि का नहीं, लिपिकर का अपना प्रयुक्त वाक्य है। **संशोधन-पुष्टि**—अगली आयत की समीक्षा की दूसरी ही पंक्ति में पुल्लिंग प्रयोग है।

५. **घर क़दीम**=पुरातन घर काबा की परिक्रमा करना। **अपपाठ**—दोनों हस्त०, द्विप्र० में "**फिर घर क़दीम के**" अपपाठ है। अन्य सभी उदयपुर सं० आदि में संशोधित कर दिया गया है।

६. **मुद्रणलिपिकर का प्रमाद व अशुद्ध उद्धरण संख्या**—मुद्रणह०, द्विप्र०, भद में यहां आयतसंख्याएं १९, २५, २८, ३३ अशुद्ध लिखी हैं। मुद्रणह० में २५ के स्थान पर ५ संख्या अशुद्ध है। यह मुद्रणलिपिकरों के प्रमाद से है।

७. **त्रुटित पद**—द्विप्र०, द्वि०सं० में "**वे**" पद त्रुटित है। पूर्वोक्त "**जो**" पद के सम्बन्ध से "**वे**" आवश्यक है। मूलह०, मूलप्रति में है। यह ग्राह्य है।

बनाया[१] हुआ दीखता है। वाह! बड़ा अच्छा स्वर्ग है, जहां सोने, मोती के गहने और रेशमी कपड़ा पहरने को मिलें! यह बहिश्त यहाँ के राजाओं के घर से अधिक नहीं दीख पड़ता। और जब परमेश्वर का घर है तो वह उसी घर में रहता भी होगा, फिर बुतपरस्ती[२] क्यों न हुई? और दूसरे बुतपरस्तों[३] का खण्डन क्यों करते हैं? जब ख़ुदा भेंट लेता है, अपने घर की परिक्रमा करने की आज्ञा देता है और पशुओं को मरवाके खिलाता है, तो यह ख़ुदा मन्दिरवाले भैरव और दुर्गा के सदृश हुआ और महाबुतपरस्ती[४] का चलाने वाला हुआ; क्योंकि मूर्त्तियों से मस्जिद बड़ा बुत[५] है। इससे ख़ुदा और मुसलमान बड़े बुतपरस्त[६] और पुराणी तथा जैनी छोटे बुतपरस्त[७] हैं॥ १२०॥

१२२. फिर निश्चय तुम दिन क़यामत[८] के उठाये जाओगे। १६।[९]

मं० ४। सि० १८। सू० २३। आ० १६॥

समीक्षक—क़यामत तक मुर्दे क़ब्रों में रहेंगे वा किसी अन्य जगह? जो उन्हीं में रहेंगे तो सड़े हुए दुर्गन्धरूप शरीर में रहकर पुण्यात्मा भी दुःख-भोग करेंगे? यह न्याय तो अन्याय है। और दुर्गन्ध अधिक होकर रोगोत्पत्ति करने से ख़ुदा और मुसलमान पापभागी होंगे॥ १२२॥

१२३. उस दिन की गवाही देवेंगे ऊपर उनके, ज़बानें उनकी और हाथ उनके और पाँव उनके, साथ उस वस्तु के कि जो थे उनसे वे करते। २४। अल्लाह नूर[१०] है आसमानों का और पृथिवी का, नूर उसके कि मानिन्द[११] ताक़ की है बीच उसके दीप हो, और दीप बीच कंदील[१२] शीशे[१३] के हैं, वह कंदील मानो कि तारा है चमकता, रोशन किया जाता है दीपक वृक्ष मुबारिक जैतून के तेल से, न पूर्व की ओर है न पश्चिम की, समीप है, तैल उसका रोशन हो जावे जो न लगे उसको आग रोशनी के[१४] ऊपर रोशनी, मार्ग दिखाता है अल्लाह नूर अपने की जिसको चाहता है.....। ३५।

मं० ४। सि० १८। सू० २४। आ० २४। ३५॥[१५]

समीक्षक—हाथ-पग आदि जड़ होने से गवाही कभी नहीं दे सकते। यह बात '**सृष्टिक्रम से विरुद्ध**' होने से मिथ्या है। क्या ख़ुदा आगी-बिजुली है? जैसा कि दृष्टान्त देते हैं, ऐसा दृष्टान्त ईश्वर में नहीं घट सकता। हां, किसी साकार वस्तु में घट सकता है॥ १२३॥

---

१. **मुद्रणकालीन उचित संशोधन**—मूलह०, मूलप्रति सं० में "**भ्रान्त ने बनाया हुआ**" अपपाठ है। मुद्रणलिपिकर ने "**भ्रान्त ने बनाई हुई**" और अधिक अशुद्ध पाठ बना दिया। द्विप्र०, द्वि०सं० में संशोधित है।

२-७. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में सभी छह पदों में '**बुत्**' अपवर्तनी है। शुद्ध पद "**बुत**" है। अन्य सभी सं० में यही अपवर्तनी है। उदयपुर सं० के सम्पादन की विडम्बना देखिए कि एक स्थल पर शुद्ध वर्तनी है किन्तु पांच स्थलों पर अशुद्ध है। इस प्रकार अशुद्धि भी है और अव्यवस्था भी है।

८. **अपवर्तनी**—द्विप्र० में "**कियासत**" मुद्रणदोष है। अन्य सभी सं० में संशोधित है।

९. **पुनरुक्ति क़यामत की**—द्रष्टव्य है आयतसंख्या ३, १३, १३२, १४०, १५८, १५९।

१०. **नूर**=तेज, प्रकाश, सौन्दर्य। ११. **मानिन्द**=समान। १२. **कंदील**=दीपक, फ़ानूस, चिमनी

१३. **अपप्रयोग**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में "**शीशों के**" अपपाठ है।

१४. **त्रुटित अनुवाद**—अरबी-फारसी के आर्यविद्वान् **पं० रामचन्द्र देहलवी** के अनुवाद के अनुसार दोनों हस्तलेखों और तीनों सं० में आयत का "**उसको आग रोशनी के**" पाठ त्रुटित है। इस त्रुटि से यहां अपवाक्य हो गया है। कुरान में भी यह पाठ है, अतः ग्राह्य है। उदयपुर संस्करण आदि में भी यह पाठ त्रुटित है।

१५. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, भद में यहां आयतसंख्याएं २३, ३४ अशुद्ध लिखी हैं।

१२४. और अल्लाह ने उत्पन्न किया हर जानवर को पानी से। बस, कोई उनमें से वह है कि जो चलता है पेट के बल[1] अपने के....। ४५। और जो कोई आज्ञापालन[2] करे अल्लाह की, रसूल उसके की....। ५२। कह, आज्ञापालन[3] करो खुदा की, रसूल उसके की....। ५४।...और आज्ञापालन[4] करो रसूल की, ताकि दया किये जाओ। ५६।

मं० ४। सि० १८। सू० २४। आ० ४५।५२।५४।५६॥[5]

समीक्षक—यह कौन-सी 'फ़िलासफ़ी' है कि जिन जानवरों के शरीर में सब तत्त्व दीखते हैं और कहना कि केवल पानी से उत्पन्न किये? यह केवल अविद्या की बात है। जब अल्लाह के साथ पैग़म्बर की सेवा करनी[6] होती है तो [वह] खुदा का 'शरीक' हो गया वा नहीं? यदि ऐसा है, तो खुदा को **'लाशरीक' 'क़ुरान'** में क्यों लिखा है और कहते भी [क्यों][7] हो?॥ १२४॥

१२५. और जिस दिन कि फट जावेगा आसमान साथ बदली के, और उतारे जावेंगे फ़रिश्ते। २५। बस, मत कहा मान काफ़िरों का, और झगड़ा कर उनसे साथ झगड़ा बड़ा। ५२। और बदल डालता है अल्लाह बुराइयों उनकी को भलाइयों से। ७०। और जो कोई तौबा करे और कर्म करे अच्छे, बस, निश्चय आता है तरफ़ अल्लाह की। ७१। मं० ४। सि० १९। सू० २५। आ० २५।५२।७०।७१॥[8]

समीक्षक—यह बात कभी सच नहीं हो सकती है कि आकाश बद्दलों के साथ फट जावे। यदि आकाश कोई मूर्त्तिमान् पदार्थ हो, तो [तभी] फट सकता है [किन्तु वह मूर्त्तिमान् पदार्थ नहीं है[9]]। **यह मुसलमानों का 'क़ुरान' और खुदा शान्तिभंग कर ग़दर, झगड़ा मचानेवाला है, इसीलिये धार्मिक विद्वान् लोग इसको नहीं मानते।** यह भी अच्छा न्याय है कि जो पाप और पुण्य का अदला-बदला हो जाय! क्या यह तिल और उड़द की-सी बात है, जो पलटा हो जावे? जो तौबा करने से पाप[10] छूटे और ईश्वर मिले, तो कोई भी पाप करने से न डरे, इसलिये ये सब बातें **'विद्या से विरुद्ध'** हैं॥ १२५॥

---

१. **त्रुटित आयतपाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं०, युमी, भद आदि में **''के बल''** अनुवाद त्रुटित है। यह कुरान की आयत में है, अत: ग्राह्य है। स्वामी वेदानन्द सं० और उदयपुर सं० में **''ऊपर पेट अपने के''** पाठ बढ़ाया है, जो अटपटा संशोधन है।

२-४,६. **अप-अनुवाद एवं अपवाक्य तथा संशोधन**—मूलह०, मुद्रणह०, मूलप्रति सं० में इन सभी स्थानों पर **''सेवा करे''** या **''सेवा करो''** अप-अनुवाद है। द्विप्र०, द्वि०सं० में इसका संशोधन करके **''आज्ञापालन करे''** या **''आज्ञापालन करो''** पाठ बना दिया है। द्विप्र० में कुछ शुद्ध पाठ है किन्तु सभी द्वि०सं०, उदयपुर सं० आदि में समीक्षा में अपवाक्य बना दिया—**''पैगम्बर की आज्ञापालन करना होता है''**। शुद्ध पाठ यह होगा—**''पैगम्बर की आज्ञा का पालन करना होता है''**। यही अनुवाद पं० रामचन्द्र देहलवी ने स्वीकार किया है, यही कुरान के मूलपाठ में है, अत: यही ग्राह्य है।

५. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह० में ४४, ५१, ५३; द्विप्र०, भद में यहां आयतसंख्याएं ४४, ५१, ५३, ५५ अशुद्ध हैं। मूलसं० में ४५ के स्थान पर ४४ अशुद्ध संख्या है। उदयपुर सं० में ४५ के स्थान पर २५ और ५४, ५६ के स्थान पर ७०, ७१ अशुद्ध संख्याएं लिखी हैं जबकि सूरत २४ में कुरान में ये आयत संख्याएं हैं ही नहीं। अन्तिम आयत संख्या ६४ है।

७. **त्रुटित आवश्यक पद**—**'और'** के बाद नये प्रश्नवाचक वाक्य में **'क्यों'** प्रश्नवाचक पद आवश्यक है। दोनों सं० में यह त्रुटित रह गया है।

८. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, भद में यहां आयतसंख्याएं २४, ४९, ६७, ६८ अशुद्ध हैं। द्विप्र०, मूलसं० में २४ के स्थान पर २६ भी अशुद्ध संख्या है।

९. **त्रुटित आवश्यक पाठ**—वाक्य की पूर्णता और स्पष्टता के लिए **'किन्तु वह मूर्त्तिमान् पदार्थ नहीं है'** कोष्ठकान्तर्गत पाठ बढ़ाया जाना आवश्यक है।

१०. **मुद्रणकाल में त्रुटित पद**—द्विप्र० में **''पाप''** पद त्रुटित रह गया है। अन्य सभी सं० में है।

१२६. 'वही' (वह्य)[१] की हमने तरफ़ मूसा की, यह कि ले चल रात को बन्दों मेरे को, निश्चय तुम पीछा किये जाओगे। ५२। बस, भेजे लोग फ़िरौन[२] ने बीच नगरों के जमा करनेवाले। ५३। और वह पुरुष कि जिसने पैदा किया मुझको। बस, वही मार्ग दिखलाता है। ७८। और वह जो खिलाता है मुझको, पिलाता है मुझको। ७९। और वह पुरुष कि आशा रखता हूं मैं यह कि क्षमा करे वास्ते मेरे, अपराध मेरा दिन क़यामत के। ८२।

मं० ५। सि० १९। सू० २६। आ० ५२।५३।७८।७९।८२॥[३]

समीक्षक—जब ख़ुदा ने मूसा की ओर **'वही'** भेजी, पुनः दाऊद, ईसा और मुहम्मद साहब की ओर किताब क्यों भेजी? क्योंकि परमेश्वर की बात सदा एक-सी और बे-भूल होती है। और उसके पीछे **'क़ुरान'** तक पुस्तकों के भेजने से पहले पुस्तक को अपूर्ण और भूलयुक्त माना जायगा।[४] यदि ये तीन पुस्तक सच्चे हैं, तो यह **'क़ुरान'** झूठा होगा। चारों का[५] जो कि प्रायः **परस्परविरोध** रखते हैं,[६] उनका सर्वथा सत्य होना नहीं हो सकता। यदि ख़ुदा ने रूह अर्थात् जीव पैदा किये हैं, तो वे मर भी जायेंगे अर्थात् उनका कभी-न-कभी अभाव भी होगा।[७] जो परमेश्वर ही मनुष्यादि प्राणियों को खिलाता-पिलाता है, तो किसी को रोग न होना चाहिये और सबको तुल्य भोजन देना चाहिये। पक्षपात से एक को उत्तम और दूसरे को निकृष्ट जैसा कि राजा और कंगले को श्रेष्ठ, निकृष्ट भोजन मिलता है, न होना चाहिये। जब परमेश्वर ही खिलाने-पिलाने और पथ्य करानेवाला है, तो रोग ही न होने चाहियें, परन्तु मुसलमान आदि को भी रोग होते हैं। **यदि ख़ुदा ही रोग छुड़ाकर आराम करनेवाला है, तो मुसलमानों के शरीरों में रोग न रहना चाहिये। यदि रहता है तो ख़ुदा पूरा वैद्य नहीं है। यदि पूरा वैद्य है, तो मुसलमानों के शरीर में रोग क्यों रहते हैं?** वही मारता और जिलाता है, तो उसी ख़ुदा को पाप-पुण्य लगता होगा। यदि जन्म-जन्मान्तर के कर्मानुसार व्यवस्था करता है, तो उसको कुछ भी अपराध नहीं। वह पाप-क्षमा और न्याय **'क़यामत की रात'** में करता है, तो ख़ुदा पाप बढ़ानेवाला होकर पापयुक्त होगा। यदि क्षमा नहीं करता, तो यह **'क़ुरान'** की बात झूठी है[८]॥ १२६॥

---

१. **वह्य करना/वही भेजना**=अल्लाह का दिव्य संदेश हृदय में उतरना या मनुष्यों को पहुंचाना।

२. **फ़िरौन का अन्यत्र वर्णन**—फ़िरौन का वर्णन ८९ आयत० में भी द्रष्टव्य है। इसके अतिरिक्त बाइबल में भी इसका पर्याप्त उल्लेख आता है। समु० १३ में द्र० आयतखण्ड संख्या ३८, ४२।

३. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह० में ५०, ७६, ७७, ८० और द्विप्र० में यहां आयतसंख्याएं ५०, ५१, ७६, ७७, ८० अशुद्ध लिखी हैं। भद में ५०, ७६-८० अशुद्ध संख्याएं हैं।

४. **अपवाक्य और शैलीविरुद्ध प्रयोग**—दोनों हस्त०, तीनों सं० में यह अपवाक्य है—"**उसके पीछे कुरान तक पुस्तकों का भेजना पहिली पुस्तक को अपूर्ण भूलयुक्त माना जायगा।**" पुस्तक को महर्षि पुंल्लिग में प्रयोग करते हैं, स्त्रीलिंग नहीं।

५. **चार पुस्तकें**—वे चार पुस्तकें क्रमशः हैं—**तौरेत, जबूर, इंजील** (तीन बाइबल में हैं), और चौथी **क़ुरान**। इनके मतानुसार ये परमात्मा ने क्रमशः इनके पैगम्बरों **मूसा, दाऊद, ईसा, और मुहम्मद** के हृदय में उतारी हैं।

६. **अपवाक्य**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में "**जो कि परस्पर प्रायः विरोध रखते हैं**" अस्त-व्यस्त वाक्य है। **परस्परविरोध** एक शब्द है, जो साहित्यिक दोष है। उदयपुर सं० आदि प्रायः सभी सं० में यह अपपाठ है।

७. **मुद्रणकाल में भ्रष्ट पाठ**—द्विप्र०, द्वि०सं० में त्रुटिवश यह पाठ इस प्रकार भ्रष्ट हो गया है—"**वे मर भी जायेंगे अर्थात् उनका कभी नाश कभी अभाव भी होगा।**" गलती से **'ना'** का नाश बना दिया। मुद्रणहस्त० में ठीक पाठ है। वेस, जग, भद, युमी, विस, जस में भ्रष्टपाठ है। उदयपुर सं० में संशोधित है।

८. **मुद्रणकाल में हास्यास्पद पाठ-परिवर्तन**—मुद्रणकाल में इस वाक्य को बदलकर द्विप्र०, द्वि०सं० में हास्यास्पद पाठ बनाया

१२७. नहीं तू परन्तु आदमी मानिन्द[९] हमारी, बस, ले आ कुछ निशानी जो है तू सच्चों से। १५४। [सालेह ने] कहा, यह ऊंटनी है वास्ते उसके पानी पीना है एक वार.....। १५५।

मं० ५। सि० १९। सू० २६। आ० १५४। १५५॥[१]

समीक्षक—यह ख़ुदा को शंका और अभिमान क्यों हुआ कि वह[२] हमारे तुल्य नहीं है[३] और ऊंटनी की निशानी देना[४] केवल जंगली व्यवहार है, ईश्वरकृत नहीं! यदि यह किताब ईश्वरकृत होती तो ऐसी व्यर्थ बातें इसमें न होतीं[५]॥ १२७॥

१२८. ऐ मूसा! बात यह है कि निश्चय मैं अल्लाह हूं ग़ालिब[६]। ९। और डाल दे असा[७] अपना, बस, जबकि देखा उसको हिलता था मानो कि वह साँप है,....ऐ मूसा! मत डर, निश्चय नहीं डरते समीप मेरे पैग़म्बर। १०। अल्लाह नहीं कोई माबूद[८] परन्तु वह मालिक अर्श[९] बड़े का। २६। यह कि मत सरकशी[१०-११] करो ऊपर मेरे और चले आओ मेरे पास मुसलमान होकर। ३१।[१२]

मं० ५। सि० १९। सू० २७। आ० ९। १०। २६। ३१॥

समीक्षक—और भी देखिये, अपने मुख से आप अल्लाह बड़ा ज़बरदस्त बनता है। अपने मुख से अपनी प्रशंसा करना श्रेष्ठ पुरुष का भी काम नहीं, तो ख़ुदा का क्योंकर हो सकता है? तभी तो इन्द्रजाल का लटका दिखला, जंगली मनुष्यों को वश कर, आप जंगलस्थ ख़ुदा बन बैठा। ऐसी बात ईश्वर के पुस्तक की कभी नहीं हो सकती। यदि वह बड़े अर्श अर्थात् सातवें आसमान का मालिक है तो वह एकदेशी होने से ईश्वर ही नहीं हो सकता है। यदि सरकशी[१३] करना बुरा है,[१४] तो ख़ुदा ने, मुहम्मद साहब और फरिश्तों ने ईमान लाने, सेवा करने में [दूसरे मत-वालों को बलात् अपने] साथ क्यों मिलाया? मुहम्मद साहब ने अनेक को मारा,[१५] इससे सरकशी[१६] हुई वा नहीं? **इससे यह**

है—''**यह कुरान की बात झूठी होने से बच नहीं सकती।**'' यही शिथिल पाठ उदयपुर सं० में है। मूलह०, मुद्रणह० में सही पाठ है।

९. **मानिन्द**—समान, तुल्य।

१. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, भद में आयतसंख्याएं १५०, १५१ अशुद्ध लिखी हैं।

२. **अपवाक्य**—मूलप्रति सं० में ''**तू हमारे तुल्य नहीं है**'' अपवाक्य है।

३. **मुद्रणकाल में महाभ्रष्ट परिवर्तन**—द्विप्र० में इस पहली पंक्ति को हटाकर उसके स्थान पर यह नया भ्रष्ट वाक्य बनाया है—''**भला, इस बात को कोई मान सकता है कि पत्थर से ऊंटनी निकले!**'' यह घोर अप्रासंगिक और भ्रष्ट संशोधन है। पत्थर से ऊंटनी निकलने की बात आयत में कहां है जो यह संशोधन करना पड़ा? यह संशोधक की बेहद लापरवाही का उदाहरण है। यही अप्रासंगिक समीक्षा **द्वि०सं०, स्वामी वेदानन्द जी सरस्वती, पं० जगदेवसिंह जी सिद्धान्ती, पं० भगवद्दत्त जी, पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक स्वामी विद्यानन्द, स्वामी जगदीश्वरानन्द** आदि के संस्करणों में है। **उदयपुर सं० ने भी अनर्गल पाठ को ग्रहण कर लिया है।** यह वाक्य मुंशी जी की भूल से लिखा गया है।

४. **अपवाक्य**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**ऊंटनी की निशानी देनी**'' अपवाक्य है, ''**निशानी देना**'' चाहिए।

५. **ऊंटनी विषयक पुनरुक्तियां**—द्रष्टव्य हैं आयतखण्ड ११२, १७०। यही बातें वहां दोहराई हैं।

६. **गालिब**=प्रभुत्वशाली। ७. **असा**=लाठी। ८. **माबूद**=पूज्य। ९. **अर्श**=सिंहासन, आकाश।

१०. **सरकशी**=मनमानापन का व्यवहार, अवज्ञा, विद्रोह, अनुशासनहीनता, जबरदस्ती, स्वेच्छाचारिता, मनमाना बोलना।

११,१३,१६. **अपवर्तनी अयोग्य लिपिकरों-शोधकों द्वारा**—दोनों हस्तलेखों और द्विप्र० में, आयत और समीक्षा में इस शब्द का तीन बार प्रयोग हुआ है। लिपिकरों और शोधकों की मूर्खता देखिए कि तीनों बार अशुद्ध वर्तनी लिखी है। अशुद्धि में भी दो अशुद्धियां हैं। एक ही स्थान पर पहले ''**सरकसी**'' लिखा है फिर दो बार ''**शरकशी**'' लिखी है। हस्तलेखों में तीनों स्थानों पर ''**सर्कशी**'' व ''**शर्कशी**'' है। उदयपुर सं० में तीनों का संशोधन कर लिया है।

'क़ुरान' पुनरुक्त और पूर्वापरविरुद्ध बातों से भरा हुआ है।। १२८ ॥

१२९. और देखेगा तू पहाड़ों को, अनुमान करता है तू उनको जमे हुए और वे चले जाते हैं मानिन्द चलने बादलों की, कारीगरी अल्लाह की जिसने दृढ़ किया हर वस्तु को, निश्चय वह ख़बरदार है[1] उस वस्तु के कि करते हो। ८८। मं० ५। सि० २०। सू० २७। आ० ८८॥[2]

समीक्षक—भला, बद्दलों के समान पहाड़ का चलना '**क़ुरान**' बनानेवालों के देश में होता होगा, अन्यत्र नहीं। और ख़ुदा की ख़बरदारी[3] तो बाग़ी शैतान को न पकड़ने और न दंड देने से ही विदित होती है कि जो एक बाग़ी को भी अब तक न पकड़ पाया,[4] न दंड दिया। इससे अधिक असावधानी[5] क्या होगी ?॥ १२९ ॥

१३०. ....बस, मुष्ट (=घूंसा) मारा उसको मूसा ने, बस, पूरी की आयु उसकी....। १५।[6] कहा, ऐ रब मेरे! निश्चय मैंने अन्याय किया जान अपनी को, बस, क्षमा कर मुझको, बस, क्षमा कर दिया उसको। निश्चय वह क्षमा करनेवाला दयालु है। १६। और मालिक तेरा उत्पन्न करता है, जो कुछ चाहता है और पसन्द करता है....। ६८। मं० ५। सि० २०। सू० २८। आ० १५।१६।६८॥[7]

समीक्षक—अब अन्य भी देखिये, मुसलमान और ईसाइयों के पैग़म्बर और ख़ुदा कि मूसा पैग़म्बर, मनुष्य की हत्या किया करे और ख़ुदा क्षमा किया करे, ये दोनों अन्यायकारी हैं वा नहीं ? क्या अपनी इच्छा से ही जैसा चाहता है वैसी उत्पत्ति करता है ? क्या उसने अपनी इच्छा से ही एक को राजा,

---

१२. **मूसा के चमत्कार का अन्यत्र वर्णन**—बाइबल में, समु० १३ में आयतखण्ड ४०, पृ० ८७५, समु० १४ में पृ० ९५३, ९८७।

१४. **मुद्रणकाल में अपपरिवर्तन**—द्विप्र० में यहां यह पाठ बनाया है—''**यदि सरकशी करना बुरा है तो खुदा और मुहम्मद साहब ने अपनी स्तुति से पुस्तक क्यों भर दिये ?**'' यह बेतुका परिवर्तन है जिसका आयत के कथ्य से कोई सम्बन्ध नहीं। अनुमान होता है कि प्रूफ संशोधक को '**सरकशी**' का अर्थ ज्ञात नहीं था। मूलह०, मुद्रणह०, मूलसं० में उपर्युक्त सही पाठ है। सभी द्वि०सं० में यही अपपाठ है।

१५. **मुद्रणकालीन परिवर्धित अपपाठ**—द्विप्र० में यहां परिवर्धन करके एक अपवाक्य बनाया —''**मुहम्मद साहब ने अनेकों को मारे**''। यह महर्षि की नहीं, किसी प्रूफ शोधक की अपनी बोली का वाक्य है, क्योंकि यह वाक्य मुद्रण-काल में जोड़ा है और महर्षि उस समय जीवित नहीं थे और न उन्होंने संशोधन किया था,जो स्पष्टत: यह सिद्ध करता है कि यह वाक्य शोधक का है। मूलहस्त० और मुद्रणहस्त० दोनों में यह नहीं है। किन्तु उपयोगी होने के कारण ग्राह्य है, क्योंकि उसमें जबरदस्ती ईमान लाना आदि भिन्न बातों का कथन है। सभी द्वि०सं० में यह अपवाक्य है। मूलसं० ने इस वाक्य को ग्रहण नहीं किया है।

१,२. **अयोग्य लिपिकरों-शोधकों द्वारा अपवर्तनी**—मूलह० में प्रथम स्थल पर अशुद्ध तथा द्वितीय स्थल पर शुद्ध वर्तनी है। मुद्रणलिपिकर ने दोनों स्थानों पर ''**ख़बर्दार**'', ''**ख़बर्दारी**'' अशुद्ध वर्तनी बना दी। यही अशुद्ध द्विप्र० में छपी है। उदयपुर संस्करण सहित अन्य सभी सं० में संशोधित हैं।

३. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—द्विप्र० में यहां आयतसंख्या ८० अशुद्ध लिखी है। मूलह०, मुद्रणह० में शुद्ध है।

४. **अपवाक्य**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में यह अपवाक्य है—''**खुदा की खबरदारी......विदित होती है कि जिसने एक बाग़ी को भी अब तक न पकड़ पाया**''। यह महर्षि की भाषा नहीं, लिपिकर की अपनी बोली है। उदयपुर संस्करण सहित सभी सं० में यह वाक्य अशुद्ध है।

५. **अपप्रयोग**—मूलह०, मुद्रणह०, मूलप्रति सं० में ''**असावधानीता**'' अपप्रयोग है। अन्य सभी सं० में संशोधित है।

६. **मूसा द्वारा घूंसा मारने का बाइबल में वर्णन**—मिश्र के राजा फ़िरौन के महलों में पल-बढ़ कर जब मूसा (यहूदियों का रसूल) जवान हुआ तो एक दिन उसने देखा कि दो आदमी आपस में लड़ रहे हैं और उनमें से एक मिश्री मूसा के किसी जाति-भाई को पीट रहा है। यह देख मूसा से रहा न गया। उसने मिश्रवाले को जोर का घूंसा मारा जिससे वह मर गया। विस्तृत विवरण समुल्लास के आरम्भ में जीवनवृत्त में देखिए। बाइबल में भी इस घटना का वर्णन है। द्रष्टव्य समु० १३ में आयतखण्ड संख्या ३८।

७. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, भद में यहां आयतसंख्याएं १४, ६६ अशुद्ध लिखी हैं, १६, ६८ त्रुटित हैं।

दूसरे को कंगाल और एक को विद्वान् और दूसरे को मूर्ख-आदि किया है? यदि ऐसा है तो यह अन्यायकारी होने से **'क़ुरान'** सत्य और यह ख़ुदा ही नहीं हो सकता है॥ १३० ॥

१३१. और आज्ञा दी हमने मनुष्य को साथ मा-बाप के भलाई करना, और जो झगड़ा करें[1] तुझसे दोनों यह कि शरीक लावे तू साथ मेरे उस वस्तु को कि नहीं वास्ते तेरे साथ उस के ज्ञान; बस, मत कहा मान उन दोनों का, तरफ़[2] मेरी है....। ८। और अवश्य भेजा हमने नूह को[3] तरफ़[4] क़ौम उसके कि बस रहा बीच उनके हजार वर्ष परन्तु पचास वर्ष कम, उस दिन ढांक लेगा उसको अजाब ऊपर उनके से....। १४। मं० ५। सि० २०-२१। सू० २९। आ० ८। १४॥[5]

समीक्षक—माता-पिता की सेवा करनी तो अच्छी ही है। जो ख़ुदा के साथ शरीक करने के लिये कहे, तो उनका कहना न मानना, यह भी ठीक है; परन्तु यदि माता-पिता मिथ्याभाषणादि करने की आज्ञा देवें, तो क्या मान लेना चाहिये? इसलिये यह बात आधी अच्छी और आधी बुरी है। क्या नूह आदि पैग़म्बरों[6] को ही ख़ुदा संसार में भेजता है? तो अन्य जीवों को कौन भेजता है? यदि सबको वही भेजता है, तो सभी पैग़म्बर क्यों नहीं? और **जो प्रथम मनुष्यों का पचास कम, हज़ार वर्ष का आयु होता था तो अब क्यों नहीं होता[7]? इसलिये यह बात ठीक नहीं।** यदि खुदा के न्यायघर में भी नीचे शिर, ऊपर पग बांधकर दंड दिया जाता है, तो उससे आजकल का ही राज अच्छा है। आजकल दण्ड तो दिया जाता है, परन्तु पग नीचे और शिर ऊपर ही रक्खा जाता है। यदि ऐसा ही दण्ड हो तो भी मनुष्यों में संघटित हो सकता है॥ १३१ ॥

१३२. अल्लाह पहली वार करता है उत्पत्ति, फिर दूसरी वार करेगा उसको,[8] फिर उसी की ओर फेरे जाओगे[9]। ११। जिस दिन बरपा[10] अर्थात् खड़ी होगी क़यामत, निराश[11] होंगे पापी। १२।

---

१. **अपपाठ**—दोनों हस्त० और द्विप्र० में **''झगड़ना करें''** अपपाठ है। अन्य सभी सं० में संशोधन कर लिया है।

२,४. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में दोनों स्थलों पर **'तर्फ़'** अपवर्तनी है। उदयपुर सं० आदि में भी अशुद्ध है।

३. **नूह पैगम्बर**—नूह पैगम्बर की चर्चा आयतखण्ड संख्या १११ में भी द्रष्टव्य है। बाइबल में भी इसके समय हुए जलप्लावन का वर्णन आता है। समु० १३ में देखिए आयत संख्या १४, १५ में।

५. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, वेस, भद में यहां आयतसंख्याएं ७, १३ अशुद्ध लिखी हैं। उदयपुर सं० में भी यही अशुद्ध संख्याएं हैं।

६. **अपप्रयोग**—मूलह०, मूलप्रति सं० में **''पैगम्बर''** एकवचन अपप्रयोग है।

७. **शैलीविरुद्ध प्रयोग**—यहां दोनों हस्त० और तीनों सं० में **''आयु''** का स्त्रीलिंग में प्रयोग है। महर्षि प्राय: सर्वत्र इसका पुंल्लिग में प्रयोग करते हैं, अत: महर्षि की शैली के अनुरूप इस वाक्य को पुंल्लिग में परिवर्तित किया गया है। भाषात्मक व्यवस्था, मानकता और एकरूपता के लिए ऐसा करना आवश्यक है।

८. **पुनर्जन्म की मान्यता**—इस्लाम में पुनर्जन्म को नहीं माना जाता। इस आयत में स्पष्ट रूप से दूसरी बार उत्पत्ति कही गई है, जो कुरान में पुनर्जन्म की मान्यता होने की पुष्टि करती है।

९. **अपपाठ**—दोनों हस्त० व द्विप्र० में **''फेर जाओगे''** अपपाठ है। स्वामी वेदानन्द सं० को छोड़कर सभी सं० में शुद्ध कर लिया गया है।

१०. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त०, द्विप्र० सं० में **''बर्पा''** अपवर्तनी है। मूलसं० में संशोधित है। स्वामी वेदानन्द सं० में **''वपा''** भ्रष्ट पाठ है। अन्य उदयपुर आदि सभी सं० में अशुद्ध वर्तनी है।

११. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त० व द्विप्र० में **''निरास''** अपवर्तनी है। अन्य सभी सं० में संशोधित है। लिपिकरों-शोधकों की प्रमादलीला देखिए, मूलआयत में अशुद्ध वर्तनी है जबकि इसकी समीक्षा में शुद्ध वर्तनी है।

बस, जो लोग कि ईमान लाये और काम किये अच्छे, बस, वे बीच बाग़ के सिंगार किये जावेंगे। १५। और जो भेज दें हम एक बाव[1], बस, देखें उस खेती को पीली हुई...।५१। इस प्रकार मोहर रखता है अल्लाह ऊपर दिलों उन लोगों के कि नहीं जानते।५९।

मं० ५। सि० २१। सू० ३०। आ० ११।१२।१५।५१।५९॥[2]

समीक्षक—यदि अल्लाह दो वार उत्पत्ति करता है, तीसरी वार नहीं, तो उत्पत्ति के आदि और दूसरी वार के अन्त में निकम्मा बैठा रहता होगा? और एक तथा दो वार उत्पत्ति के पश्चात् उसका सामर्थ्य निकम्मा और व्यर्थ हो जायगा। यदि न्याय करने के लिये दिन न रखकर, रात रक्खी जाय तो गवरगंड[3]-सी लीला हो जाय। न्याय तो दिन में ही करना सर्वत्र प्रसिद्ध है। इसीलिये यह मुसलमान और मुसलमानों के ख़ुदा की उलटी बात है।[4] यदि न्याय करने के दिन पापी लोग निराश हों तो अच्छी बात है, परन्तु इसका प्रयोजन कहीं यह तो नहीं है कि मुसलमानों के सिवाय सब पापी समझकर निराश किये जायें? क्योंकि '**क़ुरान**' में कई स्थानों में पापियों से औरों (विधर्मियों) का ही प्रयोजन है।[5] यदि बगीचे में रखना और शृंगार पहराना ही मुसलमानों का स्वर्ग है, तो इस संसार के तुल्य हुआ। और वहां माली और सुनार भी होंगे अथवा ख़ुदा ही माली और सुनार आदि का काम करता होगा। यदि किसी को कम गहना मिलता होगा, तो चोरी भी होती होगी और बहिश्त से चोरी करनेवालों को दोज़ख में भी डालता होगा। यदि ऐसा होता होगा, तो '**सदा बहिश्त में रहेंगे**' यह बात झूठी हो जायगी।[6] जो किसानों की खेती पर भी ख़ुदा की दृष्टि है, यह '**विद्या**' खेती करने के अनुभव से ही होती है। और यदि माना जाय कि ख़ुदा ने अपनी विद्या से सब बात जान ली है, तो ऐसा भय देना अपना घमण्ड प्रसिद्ध करना है। यदि अल्लाह ने जीवों के दिलों पर मोहर लगा पाप कराया, तो उस पाप का भागी वही होवे, जीव नहीं हो सकते; जैसे जय-पराजय सेनाधीश का होता है, वैसे यह सब पाप ख़ुदा को ही प्राप्त होवे॥ १३२॥

---

१. **अपपाठ और उसकी विद्वानों में अन्धपरम्परा**—दोनों हस्त० में "**एक बाव**" यह त्रुटित पाठ है। मुद्रणकाल में इसको और अशुद्ध करके "**ए बाब**" छापा है। शोधकों ने इसकी शुद्धता पर ध्यान ही नहीं दिया। पं० भगवद्दत्त सं० में "**एक बाब**" अशुद्ध पाठ है। द्वि०सं०, मूलसं० और स्वामी वेदानन्द सं० में इसको "**एक बाव**" संशोधित कर दिया है।

पं० मीमांसक जी का भ्रष्ट पाठ—पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक ने बिना अर्थ का विचार किये इसको भ्रष्ट पाठ बना दिया—"**भेज दें हम एबाब**"। इस शब्द का यहां कोई अर्थ नहीं है। **उदयपुर सं०** के कथित दश सम्पादकों पर अधिक आश्चर्य है कि उन्होंने न सार्थकता देखी, न कुरान देखा और **पं० मीमांसक जी** का अन्धानुकरण करके निरर्थक भ्रष्ट पाठ को ग्रहण कर लिया। उनके सामने शुद्ध-अशुद्ध पाठ के दोनों विकल्प विद्यमान थे, फिर भी, उन्होंने भ्रष्ट पाठ ग्रहण किया है। **बाव**=वायु, आंधी। जैसे प्रयोग होता है—बावरोग=वायुरोग आदि।

२. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह० में ९, १४, ५०, ५८ और द्विप्र० और भद में यहां आयतसंख्याएं १०, १४, ५०, ५८ अशुद्ध लिखी हैं। सभी में ५९ संख्या त्रुटित है।

३. **अव्यवस्थित वर्तनी**—अन्यत्र "**गवरगंड**" वर्तनी है (पृ० ९७२, ९९४) यहां "**गवर्गण्ड**" है। एकरूपता और मानकता के लिए "**गवरगंड**" वर्तनी ग्राह्य है। इसकी कथा ग्रन्थकार-रचित '**व्यवहारभानु**' नामक पुस्तिक में द्रष्टव्य है।

४. **पुनरुक्ति कयामत की**—द्रष्टव्य आयतखण्ड संख्या ३, १३, १२२, १४०, १५८, १५९।

५. **उचित पाठ-परिवर्धन**—द्वि० सं० में "**यदि न्याय करने.......प्रयोजन है**" पाठ बढ़ाया गया है, मूलप्रति सं० में नहीं है। उपयोगी होने के कारण ग्राह्य है।

६. **सदा बहिश्त का कथन**—द्रष्टव्य आयतखण्ड संख्या ९, ९३, ११३, १४१, १४८, १४९, १५०, १५६, १६३ आदि।

१३३. ये आयतें हैं किताब हिक्मत[१] वाले की। २। उत्पन्न किया आसमानों को विना सुतून[२] अर्थात् खम्भे के देखते हो तुम उसको, और डाले बीच पृथिवी के पहाड़ ऐसा न हो कि हिल जावे....। १०। क्या नहीं देखा तूने यह कि अल्लाह प्रवेश कराता है रात को बीच दिन के और प्रवेश कराता है दिन को बीच रात के....। २९। क्या नहीं देखा कि किश्तियां चलती हैं बीच दरिया[३] के साथ निआमतों अल्लाह के, तोकि दिखलावे तुमको निशानियां अपनी। ३१।

मं० ५। सि० २१। सू० ३१। आ० २।१०।२९।३१॥[४]

समीक्षक—वाह जी हिक्मतवाली किताब कि जिसमें सर्वथा '**विद्या से विरुद्ध**' आकाश की उत्पत्ति और उसमें खम्भे लगाने की शंका और पृथिवी को स्थिर रखने के लिये पहाड़ रखना [है]![५] थोड़ी-सी विद्यावाला भी ऐसा लेख कभी नहीं करता और न मानता। और हिक्मत देखो कि जहाँ दिन है वहां रात नहीं और जहां रात है वहां दिन नहीं, [किन्तु '**क़ुरान**' का कर्त्ता] उनको[६] एक दूसरे में प्रवेश कराना लिखता है, यह बड़े अविद्वानों की बात है। इसलिये यह '**क़ुरान**' विद्या का पुस्तक नहीं हो सकता।[७] क्या यह '**विद्याविरुद्ध**' बात नहीं है कि नौकायें खुदा की कृपा से चलती हैं? वे तो मनुष्यों और क्रियाकौशलादि से चलती हैं। यदि लोहे वा पत्थर की नौकायें बनाकर समुद्र में चलावें तो ख़ुदा की निशानी डूब जाय वा नहीं?[८] इसलिये यह पुस्तक न विद्वान् और न ईश्वर का बनाया हुआ हो सकता है[९]॥१३३॥

१३४. तदबीर[१०] करता है काम की आसमान से तरफ़ पृथिवी की, फिर चढ़ जाता है तरफ़[११] उसकी बीच एक दिन के कि है अवधि उसकी सहस्र वर्ष, उन वर्षों से कि गिनते हो तुम। ५।[१२] वह है जाननेवाला ग़ैब[१३] का और प्रत्यक्ष का ग़ालिब[१४] दयालु। ६। फिर पुष्ट किया उसको और फूंका

---

१. **हिक्मत**=बुद्धिमत्ता।

२. **सुतून**—दोनों हस्त० में "**सतून**" अपवर्तनी है। यह फारसी का शब्द है जो संस्कृत के '**स्थूण**' शब्द का अपभ्रंश है।

३. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त०, तीनों सं० में "**दर्य्या**" अपवर्तनी है। शुद्ध वर्तनी द्र०पृ० ९८८, १०३८।

४. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, भद में यहां आयत संख्याएं १, ९, २८, ३० अशुद्ध हैं।

५. **त्रुटित आवश्यक पद**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में "**है**" क्रिया त्रुटित है।

६. **अपप्रयोग व त्रुटित**—दोनों सं० में "**उसको**" के स्थान पर "**उनको**" प्रयोग शुद्ध है। बृहत्कोष्ठकान्तर्गत पाठ भी ग्राह्य है।

७, ९. **शैलीविरुद्ध प्रयोग**—मूलप्रति सं० में दोनों वाक्यों में "**पुस्तक**" का प्रयोग स्त्रीलिंग में है जो कि महर्षि की भाषा शैली के विरुद्ध होने से अपप्रयोग है। दूसरा वाक्य मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में संशोधित करके पुंल्लिग बना दिया है, जो सही है, किन्तु लिपिकरों-शोधकों की प्रमादलीला देखिए कि एक स्थान पर दो प्रकार के शैली के विरुद्ध पाठ हैं!

८. **भ्रष्टपाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में यह भ्रष्ट वाक्य है—"**क्या यह विद्याविरुद्ध बात नहीं है कि नौका मनुष्य और क्रिया कौशलादि से चलती हैं वा खुदा की कृपा से?**" इसके अतिरिक्त "**नौका**", बहुवचन चाहिए। वेस, जग, भद, युमी, विस, उदयपुर सं० में अपपाठ है।

१०-११. **तदबीर**=उपाय, कोशिश। **अपवर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में "**तर्फ़**" अपवर्तनी है। "**तरफ़**" शुद्ध है।

१२. **वैदिक छाया**—वैदिक गणना में एक हजार दिव्य युगों का ब्रह्म का एक दिन माना है। यहां अल्लाह का एक दिन मनुष्यों के हजार वर्षों का मानना, उसी परम्परा का अवशिष्ट रूप है (मनु० १.७२, ७३)।

१३. **गैब**=परोक्ष, रहस्य, छिपा हुआ, आदि।

१४. **उचित परिवर्धन**—मूलह०, मुद्रणह०, मूलसं० में यहां "**गालिब**" के स्थान पर "**अवश्य**" पद है। "**ग़ालिब**" द्विप्र०, द्वि०सं० में रखा है, जो ग्राह्य है। **गालिब**=शक्तिशाली विजेता, प्रभावशाली। दोनों हस्त० और द्विप्र० में "**दयालू**" अशुद्ध है।

बीज उसके रूह अपनी से[१] । ९ । यह क़ब्ज़ करेगा तुमको फ़रिश्ता मौत का, वह जो नियत किया गया है साथ तुम्हारे । ११ । और जो चाहते हम अवश्य देते हर एक जीव को शिक्षा उसकी, परन्तु सिद्ध हुई बात मेरी ओर से कि अवश्य भरूंगा मैं दोज़ख़ को जिनसे और आदमियों से इकट्ठे । १३ ।
मं० ५ । सि० २१ । सू० ३२ । आ० ५ । ६ । ९ । ११ । १३ ॥[२]

समीक्षक—अब ठीक सिद्ध हो गया कि मुसलमानों का ख़ुदा मनुष्यवत् एकदेशी है। क्योंकि जो व्यापक होता तो एकदेश से प्रबन्ध करना और उतरना-चढ़ना नहीं हो सकता। यदि ख़ुदा फ़रिश्ते को भेजता है तो भी आप एकदेशी हो गया। आप आसमान पर टंगा बैठा है और फ़रिश्तों को दौड़ाता है। यदि फ़रिश्ते रिश्वत लेकर कोई मामला बिगाड़ दें वा किसी मुर्दे को छोड़ जायें, तो ख़ुदा को क्या मालूम हो सकता है ? मालूम तो उसको हो कि जो सर्वज्ञ तथा सर्वव्यापक हो, सो तो है ही नहीं। होता तो फ़रिश्तों के भेजने तथा कई लोगों की कई प्रकार से परीक्षा लेने का क्या काम था ?[३] और एक हजार वर्षों में[४] प्रबन्ध करने से सर्वशक्तिमान् भी नहीं। यदि मौत[५] का फ़रिश्ता है, तो उस फ़रिश्ते को[६] मारनेवाला कौन-सा मृत्यु है ? यदि वह नित्य है, तो अमरपन में ख़ुदा के बराबर 'शरीक' हुआ। एक फ़रिश्ता एक समय में यदि दोज़ख़ भरने के लिये जीवों को शिक्षा नहीं करता और उनको विना पाप किये अपनी मर्ज़ी से दोज़ख़ भरके उनको दु:ख देकर तमाशा देखता है, तो वह ख़ुदा महापापी, अन्यायकारी और दयाहीन है। ऐसी बातें जिस पुस्तक में हों, न वह विद्वान्[कृत] और न ईश्वरकृत है। और जो दया-न्यायहीन है वह ईश्वर भी कभी नहीं हो सकता ॥[७] १३४ ॥

१३५. कह कि कभी न लाभ देगा भागना तुमको, जो भागो तुम मृत्यु वा क़त्ल से । १६ । ऐ बीबियो नबी की! जो कोई आवे तुममें से निर्लज्जता प्रत्यक्ष के, दुगुणा किया जायेगा वास्ते उसके अज़ाब, और है यह ऊपर अल्लाह के सहल[८] । ३० । मं० ५ । सि० २१ । सू० ३३ । आ० १६ । ३० ॥[९]

---

१. **अपपरिवर्तन**—दोनों हस्त० तथा द्विप्र० और भद में यह पाठ है—''**फूंका बीज रूह अपनी से**''। अन्य वेस, युमी, मूलसं०, उदयपुर आदि सभी सं० में अशुद्ध परिवर्तन है—''**फूंका बीच उसके रूह अपनी से**''। इस अनुवाद में 'क्या फूंका ?' यह प्रश्न अनुत्तरित रह जाता है। यह पाठ अपूर्ण है।

२. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र० में यहां आयतसंख्या ४, ७ अशुद्ध हैं, १३ त्रुटित है। अन्य सभी में संशोधित हैं।

३. **मुद्रणकाल में परिवर्धित पाठ और पाठग्रहण**—''**यदि ख़ुदा फरिश्ते को.....लेने का क्या काम था ?**'' समीक्षा भाग दोनों हस्तलेखों में नहीं है। यह मुद्रणकाल में मुंशी समर्थदान जी द्वारा लिखा गया है और द्विप्र० में जोड़ा गया है। मूलसं० में इस पाठ को द्विप्र०/ द्वि०सं० से ग्रहण किया है।

४. **मुद्रणकाल में अपपरिवर्तन**—द्विप्र० में अविचारित रूप से यहां ''**तथा आने-जाने**'' परिवर्धन अनावश्यक तथा अप्रासंगिक है, क्योंकि इनका सम्बन्ध एकदेशी होने से है, सर्वशक्तिमान् होने से नहीं। इससे वाक्य भी खण्डित हो गया है ''**वर्षों में**'' पाठ का ''**प्रबन्ध करने**'' पाठ से जो सम्बन्ध था, वह भंग हो गया। अत: सभी सं० में किया गया परिवर्धन अवांछनीय है।

५. **मुद्रणलिपिकरकृत अपवर्तनी**—मूलह० में शुद्ध वर्तनी है। मुद्रणलिपिकर ने ''**मोत**'' अपवर्तनी है। यही अशुद्ध द्विप्र० में है।

६. **अपप्रयोग**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**फ़रिश्ते का मारनेवाला**'' अपप्रयोग है। प्राय: सभी सं० में यही अपपाठ है।

७. **त्रुटित आवश्यक पद एवं अपवाक्य**—इस वाक्य में, दोनों हस्त० व मूलप्रति सं० में कई पद त्रुटित रह गये हैं। स्पष्टता के लिए उनको रखना आवश्यक है। मूल त्रुटित वाक्य यह मिलता है—''**जिस पुस्तक में हों न वह विद्वान् और ईश्वरकृत और जो दया न्यायहीन ईश्वर भी कभी नहीं हो सकता।**'' द्विप्र०, द्वि०सं० तथा अन्यों में अर्धसंशोधित है।

८. **सहल**=सरल, सहज।

९. **उदयपुर सं० में अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—उदयपुर सं० में आयतसंख्या १६ के स्थान पर १३ अशुद्ध है। अन्य में शुद्ध है।

समीक्षक—यह मुहम्मद साहब ने इसलिये लिखा-लिखवाया होगा कि लड़ाई में कोई न भागे, हमारा विजय होवे, मरने से भी न डरे, ऐश्वर्य बढ़े, मज़हब बढ़ा लेवें। और यदि **बीबी निर्लज्जता से पैग़म्बर के सामने न आवे, तो क्या पैग़म्बर साहब निर्लज्ज होकर उनके सामने जावें?[१] बीबियों पर अज़ाब हो और पैग़म्बर साहब पर अज़ाब न होवे, यह किस घर का न्याय है?**॥ १३५॥

१३६. और अटकी रहो बीच घरों अपने के, ...और आज्ञापालन करो अल्लाह और रसूल की, सिवाय इनके नहीं। ३३। बस, जब अदा कर ली ज़ैद ने हाजत[२] उससे, ब्याह दिया हमने तुझसे उसको, तौकि न होवे ऊपर ईमानवालों के तंगी बीच बीबियों से लेपालकों[३] उनके के, जब अदा कर लें उनसे हाजत,[४] और है आज्ञा ख़ुदा की की गई। ३७। नहीं है ऊपर नबी के कुछ तंगी बीच उस वस्तु के.....। ३८। नहीं है मुहम्मद बाप किसी मर्द[५] का....। ४०। और हलाल की स्त्री ईमानवाली जो देवे विना महर[६] के जान अपनी वास्ते नबी के.....। ५०। ढील देवे तू जिसको चाहे उनमें से और जगह देवे तरफ़ अपनी जिसको चाहे, नहीं पाप ऊपर तेरे....। ५१। ऐ लोगो! जो ईमान लाये हो मत प्रवेश करो घरों में पैग़म्बर के....। ५३।

मं० ५। सि० २२। सू० ३३। आ० ३३। ३७। ३८। ४०। ५०। ५१। ५३॥[७]

समीक्षक—यह बड़े अन्याय की बात है कि स्त्री घर में क़ैद के समान रहे और पुरुष खुले रहें। क्या स्त्रियों का चित्त शुद्ध वायु, शुद्ध देश में भ्रमण करना, सृष्टि के अनेक पदार्थ देखना नहीं चाहता होगा? इसी अपराध से मुसलमानों के लड़के विशेषकर सैलानी[८] और विषयी होते हैं। अल्लाह और रसूल की एक अविरुद्ध आज्ञा है वा भिन्न-भिन्न=विरुद्ध? यदि एक है, तो 'दोनों की आज्ञा पालन

---

१. **मुद्रणकालीन परिवर्धन**—दोनों हस्त० में यह वाक्यांश नहीं है। मुद्रणसमय इसको मुंशी समर्थदान जी ने बढ़ाकर जोड़ा है। उनके द्वारा यह अपवर्तनी लिखी गई है। जो द्विप्र० में छपी है—''**बीबीयों पर अज़ाब हो**''। अन्य सभी सं० में संशोधित है।

२,४. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में दोनों स्थान पर ''**हाज़ित**'' अपवर्तनी है। इस मुहावरे का अर्थ है—''**हाजत अदा करना**''=इच्छा पूरी करना।

३. **लेपालक**=दत्तकपुत्र, गोद लिया पुत्र। **जैद बिन हारसा** मुहम्मद साहब का दत्तक पुत्र था। उसको हज०मुहम्मद की फूफी की बेटी ब्याही थी जिसका नाम जैनब था। जैद ने जैनब को तलाक दे दिया। तब मुहम्मद साहब ने उससे विवाह कर लिया।

५. **मूर्ख मुद्रणलिपिकरकृत महाभ्रष्ट पाठ**—मूलह० में सही प्रयोग है। मूर्ख मुद्रणलिपिकर ने प्रतिलिपि करते समय यह भ्रष्ट एवं हास्यास्पद वाक्य लिख दिया—''**नहीं है महम्मद बाप किसी मुर्दों का**''। शायद, लेखक ने भांग चढ़ा रखी होगी? शोधक भी मक्कार था। मुद्रणकाल में संशोधन के नाम पर उसने भी मूर्खतापूर्ण एवं हास्यास्पद संशोधन यह किया—''**नहीं है महुम्मद बाप किसी मुर्दे का**''। ऐसे-ऐसे लिपिकरों-शोधकों से महर्षि को काम लेना पड़ा था। स्थान-स्थान पर उन्होंने ऐसी करतूतें की हैं।

पं० भगवद्दत्त सं० का भ्रष्ट पाठ—किन्तु अपने विद्वानों को क्या कहें? **पं० भगवद्दत्त जी** जैसे व्यक्ति को भी यह नहीं सूझा कि वे कैसा हास्यास्पद पाठ ग्रहण कर रहे हैं। उन्होंने अपने सं० में इसी भ्रष्ट पाठ को ग्रहण किया है। यदि वे आयत के प्रसंग अथवा मूल कुरान को भी देख लेते तो इतनी हास्यास्पद भूल कभी न करते। इसके अतिरिक्त अन्य सं० में यह रचनात्मक अपवाक्य है—''**बाप किसी मर्दों का**''। यही अपपाठ स्वामी वेदानन्द सं०, पं० सिद्धान्ती सं० और उदयपुर सं० में है।

६. **महर**=वह धन-सम्पत्ति जो मुस्लिम विवाह के समय पति पत्नी को देता है।

७. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, ३४, ४०, ४७, ४८ और द्विप्र० में यहां आयतसंख्याएं ४७, ४८ अशुद्ध हैं, ५१, ५३ त्रुटित हैं। भद में ३४, ४७, ४८ अशुद्ध हैं, ५१, ५३ त्रुटित हैं। उदयपुर सं० में ३३ संख्या त्रुटित है।

८. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त० में ''**शैलानी**'' अपवर्तनी है। द्विप्र०, द्वि०सं० में ''**सयलानी**'' अपवर्तनी है। ''**सैलानी**'' शुद्ध है। यह मूलत: अरबी का शब्द है। अन्य सभी द्वि०सं० में यही अशुद्ध वर्तनी है। ग्रन्थ में कई स्थानों पर सैल (=सैर) शब्द का प्रयोग हुआ है। उसी से ''सैलानी'' पद बना है, अत: यही शुद्ध है।

करो' कहना व्यर्थ है, और जो भिन्न-भिन्न=विरुद्ध है, तो एक सच्ची और दूसरी झूठी! एक ख़ुदा, दूसरा शैतान हो जायगा, और 'शरीक' भी होगा। वाह '**क़ुरान**' के ख़ुदा[१] और पैग़म्बर तथा '**क़ुरान**' को! जिसको दूसरे का मतलब नष्टकर अपना मतलब सिद्ध करना इष्ट हो, ऐसी लीला अवश्य रचता है।

इससे यह भी सिद्ध हुआ कि मुहम्मद साहब बड़े विषयी थे। यदि न होते तो लेपालक[२] बेटे (जैद) की स्त्री को, जो पुत्र की स्त्री थी, अपनी स्त्री क्यों कर लेते? और फिर ऐसी बातें करनेवाले का ख़ुदा भी पक्षपाती बना और अन्याय को न्याय ठहराया। भला, कोई भी मनुष्यों में से जो जंगली भी होगा, वह भी बेटे की स्त्री को छोड़ता है। और यह कितनी बड़ी अन्याय की बात है कि नबी को विषयासक्ति की लीला करने में कुछ भी अटकाव नहीं होना! यदि नबी किसी का बाप न था तो ज़ैद 'लेपालक-बेटा' किस का था? और [उसको मुहम्मद का बेटा][३] क्यों लिखा? यह उसी मतलब की बात है कि जिससे बेटे की स्त्री को भी घर में डालने से[४] पैग़म्बर साहब न बचे, अन्य से क्योंकर बचे होंगे? ऐसी चतुराई से भी बुरी बात में निन्दा होनी कभी नहीं छूट सकती। **क्या जो कोई पराई स्त्री भी नबी से प्रसन्न होकर विवाह करना चाहे, तो वह भी हलाल है? और यह महाअधर्म की बात है कि नबी तो जिस स्त्री को चाहे छोड़ देवे और मुहम्मद साहेब की स्त्रीलोग यदि पैग़म्बर अपराधी भी हो, तो कभी न छोड़ सकें! जैसे पैग़म्बर के घरों में अन्य कोई व्यभिचार-दृष्टि से प्रवेश न करें, तो वैसे पैग़म्बर साहब भी किसी के घर में प्रवेश न करें! क्या नबी जिस किसी के घर में चाहें निश्शङ्क प्रवेश करें और माननीय भी रहें?** भला, कौन ऐसा 'हृदय का अन्धा'[५] है कि जो इस '**क़ुरान**' को ईश्वरकृत और मुहम्मद साहब को पैग़म्बर और '**कुरानोक्त**' ईश्वर को परमेश्वर मान सके? बड़े आश्चर्य की बात है कि ऐसी युक्तिशून्य, धर्मविरुद्ध बातों से युक्त इस मत को अरबदेशनिवासी-आदि मनुष्यों ने क्योंकर मान लिया?[६] ॥ १३६ ॥

१३७. ....नहीं योग्य वास्ते तुम्हारे यह कि दुःख दो रसूल को, यह कि निकाह करो बीबियों उसकी को पीछे उसके कभी, निश्चय यह है समीप अल्लाह के बड़ा पाप। ५३। निश्चय जो लोग कि दु;ख देते हैं अल्लाह को और रसूल उसके को, लानत की है उन को अल्लाह ने। ५७। और वे

१. **अपपाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**कुरान का खुदा....को**'' अपप्रयोग है। यहां '**के**' कारक प्रत्यय चाहिए।

२. **लेपालक**=किसी से लेकर पाला-पोसा बालक, गोद लिया हुआ, दत्तक पुत्र। यह हिन्दी का शब्द है।

३. **अपूर्ण अस्पष्ट पाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**और क्यों लिखा**'' अपूर्ण वाक्य होने से अस्पष्ट है। कुछ पंक्ति ऊपर ''**लेपालक उनके के**'' वाक्यांश में स्पष्टत: जैद को हज० मुहम्मद का दत्तक पुत्र लिखा है।

४. **धर्म प्रथा को भ्रष्ट करना**—इस आयत से जानकारी मिलती है कि पहले अरब में दत्तक पुत्र की पत्नी से विवाह न करने की अच्छी प्रथा थी। हज० मुहम्मद ने अपने दत्तक पुत्र की पत्नी से विवाह करके उस प्रथा को भी नष्ट कर दिया। जब उन्होंने उससे विवाह कर लिया तो लोगों की ओर से होने वाली निन्दा से बचने के लिए इस कार्य को खुदा-समर्थित घोषित कर दिया। हज० मुहम्मद खुद ही इस काम को करने वाले हैं और खुद ही इसका खुदा के नाम पर समर्थन कर रहे हैं।

५. **हृदय का अंधा**=विचारहीन, विवेकहीन।

६. **मुद्रणकाल में अर्ध-संशोधन**—मूलह०, मूलप्रति सं० में यह अपवाक्य है—''**ऐसे युक्तिशून्य धर्मविरुद्ध बातों को अर्बदेशनिवासी आदि मनुष्यों ने इस मत को क्योंकर मान लिया!**'' द्विप्र०, द्वि०सं० में इसका अर्धसंशोधन कर दिया है किन्तु ''**क्योंकर**'' पद अनुचित रूप से निकाल दिया है। यह प्रश्नवाचक वाक्य है, ऊपर पाठ में भी प्रश्नवाचक वाक्य है। सभी द्वि०सं० में ''**ऐसे**'' अपप्रयोग है। यह ''**मत**'' का विशेषण नहीं है अपितु पूर्वप्रसंग में उक्त ''**बातों**'' का विशेषण है, अत: यह स्त्रीलिंग में ''**ऐसी**'' प्रयोग होना चाहिए और ''**युक्तिशून्य**'' से पूर्व होना चाहिए।

लोग कि दुःख देते हैं मुसलमानों को और मुसलमान औरतों को विना इसके बुरा किया है उन्होंने, बस निश्चय उठाया उन्होंने बोहतान अर्थात् झूठ और प्रत्यक्ष पाप। ५८। लानत मारे जावें, जहां पाये जावें पकड़े जावें, और क़त्ल किये जावें,[१] खूब मारा जाना। ६१। ऐ रब हमारे! दे उनको द्विगुणा अज़ाब से, और लानत से बड़ी लानत कर। ६८।

मं० ५। सि० २२। सू० ३३। आ० ५३।५७।५८।६१।६८॥[२]

समीक्षक—वाह! क्या ख़ुदा अपनी खुदाई को धर्म के साथ दिखला रहा है! जैसे रसूल को दुःख देने का निषेध करना तो ठीक था,[३] वैसे[४] दूसरे को दुःख देने में रसूल को भी रोकना योग्य था, सो क्यों न रोका? क्या किसी के दुःख देने से अल्लाह भी दुःखी हो जाता है? यदि ऐसा है तो वह ईश्वर ही नहीं हो सकता। क्या अल्लाह और रसूल को दुःख देने का निषेध करने से यह नहीं सिद्ध होता कि अल्लाह और रसूल जिसको चाहें दुःख देवें? **जैसे[५] मुसलमानों और मुसलमानों की स्त्रियों को दुःख देना बुरा है तो [वैसे][६] इनसे अन्य मनुष्यों को दुःख देना भी अवश्य बुरा है॥** क्या अन्य सबको दुःख देना चाहिये? जो ऐसा माने,[७] तो उसकी यह बात भी पक्षपात की है। **वाह ग़दर मचाने वाले ख़ुदा और नबी! जैसे ये निर्दयी हैं वैसे निर्दयी संसार में बहुत थोड़े होंगे।** जैसे[८] यह कि **'अन्य लोग जहां पाये जावें, मारे जावें, पकड़े जावें',**[९] लिखा है [वैसे][१०] ही मुसलमानों पर कोई ऐसी ही आज्ञा देवे तो मुसलमानों को यह बात बुरी लगेगी वा नहीं? वाह! क्या हिंसक पैग़म्बर आदि हैं कि जो उन्होंने परमेश्वर से प्रार्थना करके अपने से दूसरों को दुगुणा दुःख देने के लिये प्रार्थना करना लिखा है! यह भी पक्षपात, मतलबसिन्धुपन और महा-अधर्म की बात है। इसी से अब तक भी मुसलमान

---

१. **मुद्रणलिपिकर के प्रमाद से त्रुटित पाठ मुद्रणकाल में भ्रष्टपाठ**—मूलह०, मूलसं० में शुद्ध और पूर्णपाठ है। प्रमादी मुद्रणलिपिकर ने मध्य के पाठ को त्रुटित छोड़ कर यह अपपाठ लिखा है—''**लानत मारे जावें खूब मारा जाना....।**'' मुद्रणकाल में प्रमादी शोधकों ने भी इस पर ध्यान नहीं दिया। द्विप्र० में और अधिक भ्रष्टपाठ छपा है—''**लानत मारे जहां पर दे आवे पकड़ने जावें क़तल किये जावें।**'' अब अन्य सभी सं० में इस पाठ को संशोधित कर लिया गया है। समीक्षा में शुद्ध पाठ है।

२. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—द्विप्र० में यहां आयतसंख्याएं ५, ५४, ५५, ६५ अशुद्ध हैं, ६८ त्रुटित है। मूलह०, मुद्रणह०, भद में ५ के स्थान पर ५० अशुद्ध संख्या है।

३,४. **अपप्रयोग**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में यहां ''**है**'' कालविरुद्ध क्रिया है, ''**था**'' उपयुक्त है। ''**परन्तु**'' के स्थान पर ''**वैसे**'' प्रयोग चाहिए, क्योंकि पूर्ववाक्य में ''**जैसे**'' प्रयोग है।

५,८. **अपप्रयोग**—दोनों हस्त० और तीनों सं० दोनों स्थलों पर में ''**जैसा**'' अपप्रयोग है।

६. **त्रुटित आवश्यक पद**—''**वैसे**'' पद दोनों सं० में त्रुटित है। '**जैसे**' के सम्बन्ध से '**वैसे**' आवश्यक है।

७. **मुद्रणलिपिकर द्वारा त्रुटित व भ्रष्टपाठ और अनावश्यक पाठान्तर**—मूलह० में उपर्युक्त शुद्ध पाठ उपलब्ध है। प्रमादी मुद्रणलिपिकर ने यह भ्रष्टपाठ बनाया—''**मुसलमानों की स्त्रियों को दुःख देना बुरा है तो उनसे अन्य मनुष्यों को दुःख देना भी अवश्य बुरा है। जो ऐसा माने तो उसकी यह बात भी पक्षपात की है।**'' द्विप्र० में इसका संशोधन इस प्रकार कर दिया—''**जो ऐसा न माने तो....।**'' इससे पाठ तो शुद्ध हो गया किन्तु दोनों सं० में अनावश्यक विरोध और पाठान्तर उत्पन्न हो गया। दुःख की बात यह है कि अब कुछ लोग महर्षिप्रोक्त शुद्ध पाठ की तुलना में लिपिकरों-शोधकों के पाठ को महत्त्व देते हैं।

९. **क़ुरान में अन्य लोगों को पकड़ना, मारना, धिक्कार देना आदि का आदेश**—ऐसे आदेशों के लिए देखिए आयतखण्ड संख्या ८, २०, ३७, ५४, ५८, ६२, ६४, ७२, ८०, ८५, ८७, ८८, ९४, ९५, ११८, १४७, १४८, १५६, १७० आदि। क्रूरता देखिए कि आयत क्रम संख्या ८० में तो अन्य अर्थात् विधर्मी काफिर लोगों को मारने का तथा उनकी बीबियों को जिन्दा रखने का आदेश है। १४१ में तो स्पष्ट लिखा है कि ''**फिर मारा हमने औरों को**''।

१०. **त्रुटित आवश्यक पद**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**वैसे**'' त्रुटित पद है। ''**जैसे**'' के सम्बन्ध से अपेक्षित है।

लोगों में से बहुत से शठ लोग ऐसा ही कर्म करने से[१] नहीं डरते। **यह ठीक है कि सुशिक्षा के विना मनुष्य पशु के समान रहता है।।** १३७॥

१३८. और अल्लाह वह पुरुष है कि भेजता है हवाओं को; बस, उठाती हैं बादलों को; बस, हांक लेते हैं तरफ़[२] शहर मुर्दे[३] की; बस, जीवित किया हमने साथ उसके पृथिवी को पीछे मृत्यु उसकी के, इसी प्रकार क़ब्रों[४] में से निकलना है। ९। जिसने उतारा बीच घर सदा रहने के दया अपनी से, नहीं लगती हमको बीच उसके मेहनत और नहीं लगती बीच उसके मांदगी[५]। ३५।

मं० ५। सि० २। सू० ३५। आ० ९। ३५॥

समीक्षक—वाह! क्या 'फ़िलासफ़ी' है ख़ुदा की! भेजता है वायु को, वह उठाता फिरता है बद्दलों को! और ख़ुदा उससे मुर्दों[६] को जिलाता फिरता है! यह बात ईश्वर सम्बन्धी कभी नहीं हो सकती, क्योंकि ईश्वर का काम निरन्तर एक-सा होता रहता है। जो घर होंगे वे विना बनावट के नहीं हो सकते[७] और जो बनावट के हैं वे सदा नहीं रह सकते। **जिसका शरीर है वह परिश्रम के विना दुःखी होता है और शरीरवाला रोगी हुए विना कभी नहीं बचता।** जो एक स्त्री से समागम करता है वह विना रोग के नहीं बचता, तो जो बहुत स्त्रियों से विषयभोग करता है, उसकी क्या ही दुर्दशा होती होगी? इसलिये मुसलमानों का बहिश्त भी सुखदायक सदा नहीं हो सकता॥ १३८॥

१३९. क़सम है 'क़ुरान' दृढ़ की। २। निश्चय तू भेजे हुओं से है। ३। ऊपर मार्ग सीधे के। ४। उतारा है ग़ालिब दयालु ने। ५। मं० ५। सि० २३। सू० ३६। आ० २। ३। ४। ५॥[८]

समीक्षक—अब देखिये, यह **'क़ुरान'** ख़ुदा का बनाया होता[९] तो वह इस की सौगंद[१०] क्यों खाता? यदि नबी ख़ुदा का भेजा होता, तो लेपालक बेटे की स्त्री पर मोहित क्यों होता? यह कथनमात्र है कि **'क़ुरान'** के माननेवाले सीधे मार्ग पर हैं, **क्योंकि सीधा मार्ग वही होता है जिसमें सत्य मानना, सत्य बोलना, सत्य करना, पक्षपातरहित-न्याय-धर्म का आचरण करना आदि हैं, और इनसे विपरीत का त्याग करना।** सो न **'क़ुरान'** में, न मुसलमानों में और न इनके ख़ुदा में ऐसा स्वभाव है। यदि सब

---

१. **अपप्रयोग**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में "**में**" अपप्रयोग है।

२. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में "**तर्फ़**" अपवर्तनी है। उदयपुर सं० आदि में भी अशुद्ध वर्तनी है।

३,६. **अयोग्य शोधक और मुद्रणकालीन अपवर्तनी**—अयोग्य शोधकों की लीला देखिए। एक ही स्थान पर पहले शब्द की "**मुरदे**" अपवर्तनी है और दूसरे शब्द की शुद्ध वर्तनी "**मुर्दों**" है। यह अपस्थिति द्विप्र० में है। अन्य सभी सं० में संशोधित है। दोनों हस्त० में भी शुद्ध वर्तनियां हैं।

४. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में "**क़बरों**" अपवर्तनी है।

५. **मांदगी**=थकावट।

७. **मुद्रणलिपिकरकृत अपपाठ**—मूलह० के पाठ को प्रतिलिपि करते समय मुद्रणलिपिकर ने अपपाठ बना दिया—"**जो घर होगा वे बिना बनावट के नहीं हो सकते।**" यही अपपाठ द्विप्र० में है। अन्य सभी सं० में संशोधित है। इस वाक्य का अग्रिम वाक्यखण्ड भी सभी सं० में व्याकरणिक अपरचना है। उसमें बहुवचन अभीष्ट है।

८. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, भद में यहां २ से पूर्व १, २ संख्या अशुद्ध है। ३, ४, ५ आयतसंख्याएं त्रुटित हैं।

९. **शैलीविरुद्ध पाठ**—मूलह०, मूलप्रति सं० में "**कुरान......बनाई होती**" स्त्रीलिंग प्रयोग अशुद्ध है। मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में प्रयुक्त पुंल्लिंग प्रयोग शुद्ध है।

१०. **अपवर्तनी**—मूलह०, मूलप्रति सं० में "**सौगन्ध**" अपवर्तनी है। मुद्रणह०, द्विप्र०, में "**सोगन्द**" अपवर्तनी है। द्वि०सं० में संशोधित है। उदयपुर सं० में फिर से इसको "**सौगन्ध**" अशुद्ध प्रयोग बना दिया।

पर प्रबल पैग़म्बर मुहम्मद साहब होते, तो सबसे अधिक विद्यावान् और शुभगुणयुक्त क्यों न होते? इसलिये जैसे[१] कूंजड़ी अपने बेरों को खट्टा नहीं बतलाती, वैसी यह बात भी है॥ १३९॥

१४०. और फूंका जावेगा बीच सूर[२] के, बस नागहां[३], वह कब्रों[४] में से तरफ़[५] मालिक अपने की दौड़ेंगे। ५१।[६] ....और गवाही देंगे पाँव उनके साथ उस वस्तु के कि थे कमाते। ६५। सिवाय इसके नहीं कि आज्ञा उसकी, जब चाहे उत्पन्न करना किसी वस्तु को, यह कि कहता वास्ते उसके कि 'हो जा', बस हो जाता है। ८२।[७] मं० ५। सि० २३। सू० ३६। आ० ५१। ६५। ८२॥[८]

समीक्षक—अब सुनिये ऊटपटांग बातें! [क्या][९] पग कभी गवाही दे सकते हैं? ख़ुदा के सिवाय उस समय कौन था जिसको आज्ञा दी? किसने सुनी? और कौन बन गया? यदि [आज्ञा] न थी तो यह बात झूठी, और जो थी तो वह बात कि[१०] 'जो सिवाय ख़ुदा के कुछ चीज़ नहीं थी और ख़ुदा ने सब कुछ बना दिया', वह झूठी हुई[११]॥ १४०॥

१४१. फिराया जावेगा उनके ऊपर प्याला शराब शुद्ध का। ४५। सफ़ेद,[१२] मज़ा देने वाली, वास्ते पीनेवालों के। ४६। समीप उनके बैठी होंगी नीचे आँख रखनेवालियां, सुन्दर आँखोंवालियां। ४८। मानो कि वे अण्डे हैं छिपाये हुए। ४९। क्या बस हम नहीं मरेंगे। ५८। और अवश्य लूत निश्चय पैग़म्बरों से था। १३३।[१३] जब कि मुक्ति दी हमने उसको और लोगों उसके को सबको। १३४। परन्तु एक बुढ़िया पीछे रहनेवालों में है। १३५।[१४] फिर मारा हमने औरों को। १३६।

मं० ६। सि० २३। सू० ३७। आ० ४५। ४६। ४८। ४९। ५८। १३३। १३४। १३५। १३६॥[१५]

समीक्षक—क्यों जी! यहां तो मुसलमान लोग शराब को बुरा बतलाते हैं परन्तु इनके स्वर्ग में तो नदियां ही नदियां बहती हैं! **इतना तो अच्छा है कि यहां किसी प्रकार मद्य पीना तो छुड़ाया है,** परन्तु

---

१. **अपपाठ**—''**जैसी कूंजड़ी.....बतलाती**'' दोनों हस्त० और तीनों सं० में अपपाठ है। उदयपुर सं० में भी अशुद्ध वाक्य है।

२. **सूर**=तुरही, रणसिंगा। ३. **नागहां**=अचानक।

४-५. **अपवर्तनी एवं त्रुटित पद**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**कबरों**'' और ''**तर्फ़**'' अपवर्तनियां हैं मुद्रणह०, द्विप्र० में ''**तर्फ़**'' पद मुद्रणलिपिकर के प्रमाद से त्रुटित है। उदयपुर आदि सं० में भी अशुद्ध हैं।

६. **मुर्दों के उठने की पुनरुक्ति**—द्रष्टव्य है आयतखण्ड संख्या ३, १३, १२२, १३२, १५८, १५९।

७. ''**हो जा**'' **की पुनरुक्ति**—द्रष्टव्य आयतखण्ड संख्या २८, ५४ भी।

८. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह० में यहां ६१, ७८ और द्विप्र० में यहां ४८, ६१, ७८ आयतसंख्याएं अशुद्ध हैं। द्वि०सं० में ५३; भद में ५३, ६४, संख्याएं अशुद्ध हैं।

९. **त्रुटित आवश्यक पद**—यहां दोनों हस्त० और तीनों सं० में 'क्या' पद-परिवर्धन अपेक्षित है।

१०-११. **त्रुटित आवश्यक पद**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**कि**'' और ''**हुई**'' क्रमशः योजक और क्रियापद त्रुटित हैं।

१२. **अपवर्तनी**—द्विप्र० व उदयपुर सं० में ''**सपैद**'', द्वि०सं० में ''**सफ़ैद**'' अपवर्तनी है। ये फारसी मूल के शब्द हैं, फारसी में ''**सफ़ेद**'' और ''**सपेद**'' दोनों शुद्ध हैं।

१३,१४. **लूत और बुढ़िया का सन्दर्भ**—यह बुढ़िया लूत नामक यहूदी पैगम्बर की पत्नी थी। लूत का उल्लेख बाइबल में भी आता है (द्र० समु० १३ में आयत २३ तथा बाइबल की पुस्तक 'उत्पत्ति' में पर्व १९)। लूत जब अपनी दो बेटियों को लेकर 'सोअर' नामक देश में गया तो यह बुढ़िया उसके साथ नहीं गई। यही वह पैगम्बर है जिसने अपनी दो बेटियों से शराब के नशे में सन्तान उत्पन्न की थी। आश्चर्य है फिर भी उसको यहूदी, ईसाई, इस्लाम मतों में पैगम्बर माना जाता है!!

१५. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—द्विप्र० में यहां ४३,४४,४७,५६,१२६,१२७,१२८,१२९ आयतसंख्याएं अशुद्ध हैं। मूलह०, मुद्रणह०, भद में ४३,५६,१२६,१२७,१२८ अशुद्ध हैं, ४८,४९,५८,१३३-१३६ त्रुटित हैं। मूलसं० में ४३ अशुद्ध है।

यहां के बदले वहां इनके[१] स्वर्ग में बड़ी खराबी है! मारे स्त्रियों के वहां किसी का चित्त स्थिर नहीं रहता होगा! और बड़े-बड़े रोग भी होते होंगे! यदि शरीरवाले होंगे तो अवश्य मरेंगे और जो शरीरवाले न होंगे, तो भोग-विलास ही न कर सकेंगे। फिर उनका स्वर्ग में जाना[२] व्यर्थ है। यदि लूत को पैग़म्बर मानते हैं तो जो '**बाइबल**' में लिखा है कि उससे उसकी लड़कियों ने समागम करके दो लड़के पैदा किये[३], इस बात को भी मानते हो वा नहीं? जो मानते हो, तो ऐसे को पैग़म्बर मानना व्यर्थ है। और जो ऐसे और ऐसे के संगियों को खुदा मुक्ति देता है तो वह ख़ुदा भी वैसा ही है, क्योंकि बुढ़िया की कहानी कहनेवाला और पक्षपात से दूसरों को मारनेवाला ख़ुदा कभी नहीं हो सकता। ऐसा ख़ुदा मुसलमानों के ही घर में रह सकता है, अन्यत्र नहीं॥ १४१ ॥

१४२. बहिश्तें हैं सदा रहने की, खुले हुए हैं दर उनके वास्ते उनके। ५०। तकिये किये हुए बीच उनके, मंगावेंगे बीच इसके मेवे और पीने की वस्तु। ५१। और समीप होंगी उनके, नीचे रखनेवालियां दृष्टि और दूसरों से सम-आयु। ५२। बस, सिज्दा किया फ़रिश्तों[४] ने सबने। ७३। परन्तु शैतान ने न माना, अभिमान किया और था काफ़िरों से। ७४। ऐ शैतान! किस वस्तु ने रोका तुझको, यह कि सिज्दा करे वास्ते उस वस्तु के कि बनाया मैंने साथ दोनों हाथ अपने के, क्या अभिमान किया तूने वा था तू बड़े अधिकारवालों से? । ७५। कहा, कि मैं अच्छा हूँ उस वस्तु से, उत्पन्न किया तूने मुझको आग से, उसको मिट्टी से। ७६। कहा, बस निकल इन आसमानों में से, बस, निश्चय तू चलाया गया है। ७७। निश्चय तेरे लानत है मेरी दिन जज़ा[५] तक। ७८। कहा, ''ऐ मालिक मेरे! ढील दे उस दिन तक कि उठाये जावेंगे मुर्दे। ७९।'' कहा कि ''बस, निश्चय तू ढील दिये गयों से है। ८०। उस दिन समय ज्ञात तक। ८१।'' कहा कि ''बस, क़सम है प्रतिष्ठा तेरी की,[६] अवश्य गुमराह करूंगा उनको मैं इकट्ठे। ८२।'' मं० ६। सि० २३। सू० ३८। आ० ५०।५१।५२।७३-८२॥[७]

समीक्षक—यदि वहां, जैसे कि '**क़ुरान**' में बाग़-बगीचे, नहरें, मकान-आदि लिखे[८] हैं, वैसे हैं, तो वे न सदा से थे, न सदा रह सकते हैं; क्योंकि जो संयोग से पदार्थ होता है वह संयोग के पूर्व न था, अवश्यम्भावी वियोग के अन्त में न रहेगा। जब वह बहिश्त ही न रहेगा तो उसमें रहनेवाले सदा

१. **अपप्रयोग**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**उनके स्वर्ग में**'' अपप्रयोग है। यह अपप्रयोग वेस, युमी, उदयपुर, भद आदि सभी संस्करणों में है। **संशोधन-पुष्टि**—समीक्षा के प्रथम वाक्य में ''**इनके स्वर्ग में**'' शुद्ध प्रयोग है।

२. **अपपाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में यह अपपाठ है—''**फिर उनके स्वर्ग में जाना व्यर्थ है।**'' यही अपपाठ उदयपुर सं० में है। वेस, भद, युमी, विस, जस में संशोधित है।

३. **लूत** (Lot) से उसकी दो लड़कियों के समागम और पुत्र होने का वर्णन बाइबल की 'उत्पत्ति' पुस्तक के १९ पर्व में द्रष्टव्य है। इस ग्रन्थ में भी समु० १३ में आयतखण्ड संख्या २३, २४ द्रष्टव्य हैं। देखिये गत पृष्ठ पर टिप्पणी १३, १४।

४. **अपवर्तनी**—द्विप्र० में ''**फरिस्तों**'' अपवर्तनी है। अन्य सभी में अब संशोधित है।

५. **ज़जा**=न्याय, बदला, कर्मफल। मूलह०, मूलप्रति सं० में ''**जज़ात**'' अशुद्ध है। द्विप्र०, द्वि०सं० में संशोधित है।

६. **अपप्रयोग**—मुद्रणह०, द्विप्र० में यहां ''**कि**'' अपप्रयोग है। अन्य सं० में संशोधित है।

७. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, भद में यहां आयतसंख्याएं ४३-४५, ६३-७२ अशुद्ध हैं। उदयपुर सं० में ७९ संख्या त्रुटित है।

८. **मुद्रणकाल में उचित संशोधन**—मूलह०, मुद्रणह०, मूलप्रति सं० में ''**मकान आदि ये लिखा है, वैसे हैं**'' अपवाक्य है। ''**लिखे हैं**'' बहुवचन चाहिए। द्विप्र०, द्वि०सं० में संशोधित है।

क्योंकर रह सकते हैं? क्योंकि 'गद्दी,[१] तकिये, मेवे और पीने के पदार्थ वहां मिलेंगे' लिखा है। इससे यह सिद्ध होता है कि जिस समय मुसलमानों का मज़हब चला, उस समय अरब देश[२] विशेष धनाढ्य न था, इसीलिये मुहम्मद साहब ने तकिये आदि की कथा सुनाकर ग़रीबों को अपने मत में फसा लिया।[३] और जहां स्त्रियां हैं वहां निरन्तर सुख कहां? वे स्त्रियां वहां कहां से आई हैं? अथवा बहिश्त की रहीस[४] हैं? यदि आई हैं तो जावेंगी और जो वहीं की रहीस हैं तो क़यामत के पूर्व क्या करती थीं? क्या निकम्मी अपनी उम्र को बहा रही थीं?

अब देखिये ख़ुदा का तेज कि जिसका हुक्म अन्य सब फ़रिश्तों ने माना और आदम साहब को नमस्कार किया और शैतान ने न माना! **ख़ुदा ने शैतान से कहा कि 'मैंने तुझको अपने दोनों हाथों से बनाया, तू अभिमान न कर।' इससे यह सिद्ध हुआ कि 'क़ुरान' का ख़ुदा दो हाथ वाला मनुष्य था।** इसलिये वह व्यापक वा सर्वशक्तिमान् कभी नहीं हो सकता। और शैतान ने सत्य कहा कि मैं आदम से उत्तम हूं, इस पर ख़ुदा ने गुस्सा क्यों किया? क्या आसमान ही ख़ुदा का घर है, पृथिवी पर[५] नहीं? तो काबे को ख़ुदा का घर प्रथम क्यों लिखा? भला, परमेश्वर अपने में से वा सृष्टि में से अलग कैसे निकाल सकता है? और वह सृष्टि सब परमेश्वर की है। इससे स्पष्ट विदित हुआ कि '**क़ुरान**' का खुदा बहिश्त का ज़िम्मेदार था। खुदा ने उसको लानत=धिक्कार दिया, और क़ैद कर लिया। शैतान ने कहा कि 'हे मालिक! मुझको क़यामत तक छोड़ दे।' खुदा ने ख़ुशामद से छोड़ दिया क़यामत के दिन तक। जब शैतान छूटा तो ख़ुदा से कहता है कि 'अब मैं खूब बहकाऊंगा और ग़दर मचाऊंगा।' तब ख़ुदा ने कहा कि 'जितनों को तू बहकावेगा, मैं उनको दोज़ख में डाल दूंगा[६] और तुझ को भी।'[७]

अब सज्जन लोगो विचारिये कि शैतान को बहकानेवाला ख़ुदा है वा आप से वह बहका? यदि खुदा ने बहकाया, तो वह शैतान का शैतान ठहरा। यदि शैतान स्वयं बहका, तो अन्य जीव भी स्वयं बहकेंगे, शैतान की जरूरत नहीं! और जिससे इस बाग़ी शैतान को ख़ुदा ने खुला छोड़ दिया, इससे विदित हुआ कि वह भी शैतान का शरीक अधर्म कराने में हुआ। यदि स्वयं चोरी कराके दण्ड देवे, तो उसके अन्याय का कुछ भी पारावार नहीं॥ १४२॥

१४३. ....अल्लाह क्षमा करता है पाप सारे, निश्चय वह है क्षमा करनेवाला[८] दयालु।५३।[९]

१-२. **अपवर्तनी**—मूलह०, मूलप्रति सं० में "**गादी**" और दोनों हस्त० और तीनों सं० में "**अर्ब देश**" वर्तनी है। मानकता और एकरूपता के लिए '**अरब**' वर्तनी सर्वत्र ग्राह्य है।

३. **उचित संशोधन**—मूलह०, मूलप्रति सं० में "**गरीबों को अपने मत में फंसा लिये**" अपवाक्य है। मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में शुद्ध कर लिया है।

४. **रहीस**=रहनेवाली।

५. **अपवाक्य**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में "**पृथिवी में**" अपवाक्य है। अन्य सभी सं० में यही अपप्रयोग है।

६. **अपवाक्य**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, मूलप्रति सं० में यह अपवाक्य है "**जितने को तू बहकावेगा, मैं उनको दोज़ख में डाल दूंगा**"। **पं० मीमांसक सं०** को छोड़कर सभी सं० में संशोधन कर लिया गया है।

७. **शैतान और खुदा की बहस**—इस सन्दर्भ की जानकारी के लिए द्रष्टव्य है आयतखण्ड संख्या ७७।

८. **कुरान में परस्परविरोधी तथा स्वेच्छाचारिता पर आधारित कथन**—कुरान में एक ओर कथन है कि क़यामत के समय, न्याय के दिन सबको कर्मपत्र दिया जायेगा जिसमें उनके कर्मों के अनुसार उनको अच्छा-बुरा फल दिया जायेगा (द्रष्टव्य आयतखण्ड संख्या १०७, १६४ आदि)। दूसरी ओर अल्लाह की स्वेच्छाचारिता का कथन है कि वह जिसको चाहेगा क्षमा करेगा, जिसको चाहेगा दण्ड देगा (द्र० आयतखण्ड संख्या २५, ४०, ४७, ४९, ५२, ७२, १०४, १४३ आदि)।

....और पृथिवी सारी मूठी में है उसकी दिन क़यामत के, और आसमान लपेटे हुए हैं बीच दाहिने हाथ उसके के....। ६७। और चमक जावेगी पृथिवी साथ प्रकाश मालिक अपने के और रक्खे जावेंगे कर्मपत्र और लाया जावेगा पैग़म्बरों को और गवाहों को और फैसला किया जावेगा। ६९।

मं० ६। सि० २४। सू० ३९। आ० ५३। ६७। ६९॥[१]

समीक्षक—यदि समग्र पापों को खुदा क्षमा करता है तो जानो सब संसार को पापी बनाता है और दयाहीन है, **क्योंकि एक दुष्ट पर दया और क्षमा करने से वह अधिक दुष्टता करेगा और बहुत धर्मात्माओं को दुःख पहुँचावेगा। यदि किञ्चित् भी अपराध क्षमा किया जावे, तो अपराध ही अपराध जगत् में छा जावे।**

क्या परमेश्वर अग्निवत् प्रकाशवाला है? और कर्मपत्र कहां जमा रहते हैं और कौन लिखता है? यदि पैगम्बरों और गवाहों के भरोसे ख़ुदा न्याय करता है, तो वह असर्वज्ञ और असमर्थ है। यदि वह अन्याय नहीं करता, न्याय ही करता है, तो कर्मों के अनुसार करता होगा। वे कर्म पूर्व[२] और वर्तमान जन्मों के हो सकते हैं, तो फिर क्षमा करना, **'दिलों पर ताला लगाना'** और शिक्षा न करना, शैतान से बहकवाना, दौरासुपुर्द[३] रखना केवल अन्याय है[४]॥ १४३॥

१४४. उतारना किताब का अल्लाह ग़ालिब जाननेवाले की ओर से है। २। क्षमा करनेवाला पापों का और स्वीकार करनेवाला तौबा का.....। ३। मं० ६। सि० २४। सू० ४०। आ० २। ३॥[५]

समीक्षक—यह बात इसलिये है कि भोले लोग अल्लाह के नाम से इस पुस्तक को मान लेवें कि जिसमें थोड़ा-सा सत्य छोड़ असत्य भरा है और वह सत्य भी असत्य के साथ मिलकर बिगड़ा-सा है। इसीलिये **'क़ुरान'** और **'क़ुरान'** का ख़ुदा और इसको माननेवाले पाप बढ़ानेहारे और पाप करने-करानेवाले हैं, क्योंकि **'पाप का क्षमा करना'**[६] **अत्यन्त अधर्म है। किन्तु इसी से मुसलमान लोग पाप और उपद्रव करने में कम डरते हैं।**॥ १४३॥

१४५. बस, नियत किया उसको सात आसमान बीच[७] दो दिन के, और डाल दिया हमने बीच

---

९. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त० और द्विप्र० में **''दयालू''** अपवर्तनी है। अन्य सभी में संशोधित है।

१. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, भद में आयतसंख्याएं ५४, ६८, ७० अशुद्ध हैं।

२. **भ्रष्टपाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में यह भ्रष्टवाक्य है—**''ये कर्म पूर्वापर और वर्तमान जन्मों के हो सकते हैं।''** यहां **''पूर्वापर''** के स्थान पर केवल **''पूर्व''** पाठ वांछनीय है। अन्य वेस, भद, युमी, उदयपुर आदि सभी सं० में भ्रष्टपाठ है।

३. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त० और द्विप्र० में **''दौड़ासुपुर्द''** अपवर्तनी है। भद, युमी, उदयपुर सं० में अपवर्तनी है।

४. **अपपाठ**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र० व मूलप्रति सं० में यह अपवाक्य है—**''तो फिर क्षमा करता, दिलों पर ताला लगाता और शिक्षा न करनी, शैतान से बहकाना, दौरा-सुपुर्द रखना केवल अन्याय है।''** द्वि० सं० में इसको संशोधित कर दिया है। अन्य सभी सं० में संशोधित है किन्तु उदयपुर सं० में अपपाठ ही है।

५. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र० में यहां आयतसंख्याएं १ अशुद्ध है, २ शुद्ध है, ३ त्रुटित है।

६. **उचित संशोधन**—मूलह०, मुद्रणह०, मूलप्रति सं० में यह अपवाक्यांश है—**''पाप की क्षमा करनी''**। मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में संशोधित है।

७. **मुद्रणलिपिकर द्वारा अपपाठ**—मूलह० के शुद्ध पाठ को मुद्रणलिपिकर ने प्रमादवश अशुद्ध बना दिया—**''साथ आसमान बीच''**। द्विप्र० में यही अशुद्ध पाठ है। **पं० भगवद्दत्त जी** और **पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक** के सं० में **''उसने साथ आसमान''** अशुद्ध पाठ है।

उनके काम उनका[१]....। १२। यहाँ तक कि जब जावेंगे उसके पास, साक्ष्य[२] देंगे ऊपर उनके, कान उनके और आँखें उनकी और चमड़े उनके, उनके कर्म से। २०। और कहेंगे वास्ते चमड़े अपने के क्यों साक्षिता दी तूने ऊपर हमारे? कहेंगे कि बुलाया है हमको अल्लाह ने जिसने बुलाया हर वस्तु को। २१। ....अवश्य जिलानेवाला है मुर्दों को....। ३९।

मं० ६। सि० २४। सू० ४१। आ० १२। २०। २१। ३९॥

समीक्षक—वाह जी वाह मुसलमानो! तुम्हारा ख़ुदा जिसको तुम सर्वशक्तिमान् मानते हो, तो वह सात आसमानों को दो दिन में बना सका, और जो सर्वशक्तिमान् है वह क्षणमात्र में सबको बना सकता है। भला, कान, आंख और चमड़े को ईश्वर ने जड़ बनाया है, वे साक्ष्य कैसे दे सकेंगे? यदि साक्ष्य दिलावे, तो उसने प्रथम जड़ क्यों बनाया? और अपना पूर्वापर काम नियमविरुद्ध क्यों किया? एक इससे भी बढ़के मिथ्या बात यह कि जब जीवों पर साक्षिता दी, तब वे जीव अपने-अपने चमड़े से पूछने लगे कि 'तूने हमारे पर साक्षिता क्यों दी? चमड़ा बोला[३] कि खुदा ने दिलायी, मैं क्या करूं!' भला, यह बात कभी हो सकती है? जैसे कोई कहे कि 'वन्ध्या के पुत्र का मुख मैंने देखा', यदि पुत्र है तो वन्ध्या क्यों? जो वन्ध्या है तो उसके पुत्र ही होना असम्भव है। इसी प्रकार की यह भी मिथ्या बात है। यदि वह मुर्दों को जिलाता है, तो प्रथम मारा ही क्यों? क्या आप भी मुर्दा हो सकता है[४] वा नहीं? यदि नहीं हो सकता, तो मुर्दापन को बुरा क्यों समझता है? और क़यामत की रात तक मृतक जीव किस मुसलमान के घर में रहे[५]? और खुदा ने विना अपराध दौरासुपुर्द क्यों रक्खा?[६] शीघ्र न्याय क्यों न किया? ऐसी-ऐसी बातों से ईश्वरता में बट्टा लगता है॥ १४५॥

१४६. वास्ते उसके कुंजियां[७] हैं आसमानों की और पृथिवी की, खोलता है भोजन जिसके वास्ते चाहता है और तंग करता है....। १२। उत्पन्न करता है जो कुछ चाहता है और देता है जिसको चाहे बेटियां और जिसको चाहे बेटे। ४९। वा मिला देता है उनको बेटे-बेटियां[८] और कर देता है

---

१. **आयत का अप-अनुवाद**—दोनों हस्त०, तीनों संस्करणों में यह अप-अनुवाद है—"**बस नियत किया उसको सात आसमान बीच दो दिन के और डाल दिया हमने बीच उसके काम उसका।**" वेस, भद, युमी, विस, जस, उदयपुर आदि सभी सं० में अपपाठ है। यहां "**सात आसमान**" के सम्बन्ध से बहुवचनात्मक पाठ चाहिये। कुरान में बहुवचनात्मक पाठ है।

२. **अपप्रयोग**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में "**साक्षी**" अपप्रयोग है। शुद्ध "**साक्ष्य**" या '**साक्षिता**' है। इस आयत और समीक्षा में यह शब्द छह बार अशुद्ध रूप में प्रयुक्त है। उदयपुर आदि सं० में सभी अशुद्धियां विद्यमान हैं।

३. **मुद्रणकाल में अपप्रयोग**—द्विप्र०, द्वि०सं० में "**चमड़ा बोलेगा**" अपप्रयोग है। मूलह०, मुद्रणह०, मूलसं० का पाठ ठीक है।

४. **मुद्रणलिपिकरकृत अपपाठ**—"**क्या आप भी मुर्दा हो सकता है वा नहीं?**" उपर्युक्त मूलह० का पाठ अधिक ग्राह्य है। सभी सम्पादकों ने उपर्युक्त पाठ को ग्रहण किया हुआ है, किन्तु मुद्रणह० और द्विप्र० में मुद्रणलिपिकर ने प्रतिलिपि करते समय इस प्रकार अपपाठ बनाया है—"**क्या अब भी मुर्दा हो सकता है वा नहीं?**" **पं० मीमांसक जी** ने इस पाठ को अपने ढंग से गलत परिवर्तित किया है—"**क्या अब भी मुर्दा [जीवित] हो सकता है वा नहीं?**"

५. **अपपरिवर्तन**—द्विप्र०, द्वि०सं० में यहां "**रहेंगे**" अपक्रिया है, अगले वाक्यों के सम्बन्ध से भूतकालीन "**रहे**" क्रिया उचित है, यही ग्राह्य है। दोनों हस्त०, मूलसं० में यही क्रिया-प्रयोग है। अन्य उदयपुर आदि सभी सं० में अपक्रिया-प्रयोग है।

६. **स्थानभ्रष्ट अपपाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में "**दौरासुपुर्द खुदा ने विना अपराध क्यों रखा?**" अस्त-व्यस्त वाक्य है। "**दौरासुपुर्द**" खुदा का विशेषण होकर अशुद्ध अर्थ प्रकट कर रहा है। इसका आसत्ति-सम्बन्ध "**क्यों रखा**" पदों के साथ है, अत: इनका उनसे पूर्व सही स्थान है। सभी सं० में यही अपपाठ है। इसी प्रकार प्राय: सभी सं० में "**दौड़ासुपुर्द**" अपवर्तनी है।

७,८. **मुद्रणकालीन अपवर्तनी एवं भ्रष्टपाठ**—मुद्रणकाल में द्विप्र० में "**कूंजियां**" अपवर्तनी है और "**बेटियाओं का देता है**"

जिसको चाहे बांझ....।५०। और नहीं है शक्ति किसी आदमी की[१] कि बात करे उससे अल्लाह, परन्तु जी (दिल) में डालकर, वा पीछे परदे* के से, वा भेजे फ़रिश्ता[२] पैग़ाम लानेवाला।५१।

मं० ६। सि० २५। सू० ४२। आ० १२।४९।५०।५१॥[३]

समीक्षक—खुदा के पास कुंजियों का भण्डार भरा होगा, क्योंकि सब ठिकाने के ताले खोलने होते होंगे! यह लड़केपन की बात है। **क्या जिसको चाहता है उसको विना पुण्य कर्म के ऐश्वर्य देता है और [विना पाप के][४] तंग करता है? यदि ऐसा है तो वह बड़ा अन्यायकारी है।** अब देखिये '**क़ुरान**' बनाने वाले की चतुराई कि जिससे स्त्रीजन भी मोहित होके फसें! यदि जो कुछ चाहता है उत्पन्न करता है, तो दूसरे ख़ुदा को उत्पन्न कर सकता है वा नहीं? यदि नहीं कर सकता, तो सर्वशक्तिमत्ता यहां पर अटक गई। भला, मनुष्यों को तो जिनको चाहे बेटे-बेटियां ख़ुदा देता है परन्तु मुरगी, मच्छी, सुअरी आदि जिनके बहुत बेटे-बेटियां होते हैं,[५] कौन देता है? और स्त्री-पुरुष के समागम विना क्यों नहीं देता? किसी को अपनी इच्छा से बांझ रखके दुःख क्यों देता है?

वाह! क्या खुदा तेजस्वी है कि उसके सामने कोई बात ही नहीं कर सकता! परन्तु उसने पहले कहा है कि परदा डालके बात कर सकता है वा फ़रिश्ते लोग ख़ुदा से बात करते हैं अथवा पैग़म्बर। जो ऐसी बात है, तो फ़रिश्ते और पैग़म्बर खूब अपना मतलब [सिद्ध][६] करते होंगे! यदि कोई कहे ख़ुदा सर्वज्ञ, सर्वव्यापक है, तो 'परदे से बात करना' अथवा डाक के तुल्य खबर मंगाके जानना-लिखना व्यर्थ है। और जो ऐसा ही है, तो वह ख़ुदा ही नहीं, किन्तु कोई चालाक मनुष्य होगा। इसीलिये

* इस आयत के भाष्य '**तफ़सीरहुसैनी**' में लिखा है कि "मुहम्मद साहब दो परदों[७] में थे और खुदा की आवाज सुनी। एक परदा[८] ज़री का था, दूसरा श्वेत मोतियों का और दोनों परदों[९] के बीच में सत्तर वर्ष चलने योग्य मार्ग था?" बुद्धिमान् लोग इस बात को विचारें कि यह खुदा है वा परदे[१०] की ओट से बात करनेवाली स्त्री? इन लोगों ने तो ईश्वर की ही दुर्दशा कर डाली। कहाँ वेद तथा उपनिषदादि सद्ग्रन्थों में प्रतिपादित शुद्ध परमात्मा और कहाँ कुरानोक्त परदे[११] की ओट से बात करनेवाला खुदा! सच तो यह है कि अरब के लोग अविद्वान् थे, उत्तम बात लाते किसके घर से?[१२]

अपपाठ है। शोधकों की प्रमादलीला देखिए कि समीक्षा के प्रथम वाक्य में "**कुंजियां**" वर्तनी शुद्ध है तथा "**बेटियां**" बेटियां प्रयोग शुद्ध है। एक ही स्थान पर दो तरह के पाठ प्रमादलीला के उदाहरण हैं। सभी द्वि०सं० में अब पाठ संशोधित है।

१. **अपप्रयोग**—द्वि०सं० में "**को**" अपप्रयोग है।

२. **अपपाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में यहां "**फ़रिश्ते पैगाम लानेवाला**" बहुवचनान्त प्रयोग व्याकरणिक दृष्टि से अनुपयुक्त है। आगामी क्रिया के सम्बन्ध से "**फ़रिश्ता**" एकवचन पाठ अपेक्षित है। यही पाठ कुरान में है। वेस, भद, युमी, विस, जस, उदयपुर आदि सभी सं० में अशुद्ध पाठ है।

३. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र० में यहां आयतसंख्याएं १०, ४७, ४८ अशुद्ध हैं, ५०, ५१ त्रुटित हैं।

४. **त्रुटित आवश्यक पाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में कोष्ठकान्तर्गत '**बिना पाप के**' त्रुटित है।

५. **अपवाक्य**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में "**परन्तु मुरगे, मच्छी, सूअर आदि जिनके बहुत बेटा-बेटियां होती हैं**" व्याकरणिक अपपाठ है। यही अपपाठ अन्य वेस, भद, युमी, उदयपुर, विस, जस आदि सभी सं० में विद्यमान है।

६. **त्रुटित पद**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में "**सिद्ध**" पद त्रुटित होने से यह अपवाक्य हो गया है। मूलप्रति सं० में है, वही ग्राह्य है।

७-११. **अशुद्ध अव्यवस्थित वर्तनी**—आयतखण्ड समीक्षा तथा टिप्पणी में आठ बार '**पर्दा या परदा**' का प्रयोग हुआ है। लिपिकर की अयोग्यता का नग्न रूप देखिए कि दोनों संस्करणों में दो स्थानों पर '**पर्दा**' वर्तनी लिखी है और छह स्थानों पर '**परदा**'। एक ही पंक्ति में दो-दो प्रकार की वर्तनियां हैं! मानकता, एकरूपता के लिए '**परदा**' वर्तनी सर्वत्र ग्राह्य है।

१२. **मुद्रणकालीन टिप्पणी एवं पाठग्रहण**—यह टिप्पणी मूल और मुद्रण दोनों हस्तलेखों में नहीं है। यह मुद्रणकाल में मुंशी समर्थदान जी द्वारा लिखित है। मूलसं० में द्विप्र० से इसको ग्रहण किया गया है। प्रथम बार द्विप्र० में ही यह छपी है।

यह '**क़ुरान**' ईश्वरकृत कभी नहीं हो सकता॥ १४६ ॥

१४७. और जब आया ईसा साथ प्रमाण प्रत्यक्ष के.....। ६३।

मं० ६। सि० २५। सू० ४३। आ० ६३॥[१]

समीक्षक—यदि ईसा भी भेजा हुआ ख़ुदा का है तो उसके उपदेश से विरुद्ध '**क़ुरान**' ख़ुदा ने क्यों बनाया?[२] और '**क़ुरान**' से विरुद्ध '**इंजील**'[३] क्यों की[४]? इसीलिये ये किताबें ईश्वरकृत नहीं हैं॥ १४७॥

१४८. पकड़ो उसको, बस, घसीटो उसको बीचों-बीच दोज़ख़ के। ४७। इसी प्रकार रहेंगे और विवाह[५] देंगे उनको साथ गोरियों, अच्छी आंखोंवालियों[६] के। ५४।

मं० ६। सि० २५। सू० ४४। आ० ४७। ५४॥[७]

समीक्षक—वाह! क्या ख़ुदा न्यायकारी होकर पकड़वाता और घसीटवाता है प्राणियों को? जब मुसलमानों का ख़ुदा ही ऐसा है तो उसके उपासक मुसलमान अनाथ-निर्बलों को पकड़ें-घसीटें तो इसमें क्या आश्चर्य है!! और वह संसारी मनुष्यों के समान विवाह भी कराता है, जानो कि मुसलमानों का पुरोहित ही है॥ १४८॥

१४९. बस, जब तुम मिलो उन लोगों से कि काफ़िर हुए, बस, मारो गर्दन उनकी[८], यहां तक कि जब चूर कर दो उनको, बस, दृढ़ करो[९] क़ैद करना....। ४। और बहुत बस्तियां हैं कि वे बहुत कठिन थीं शक्ति में बस्ती तेरी से, जिसने निकाल दिया तुझको, मारा हमने उनको; बस, न कोई हुआ साहाय्य देनेवाला उनका। १३। तारीफ़ उस बहिश्त की कि प्रतिज्ञा किये गये हैं परहेज़गार, बीच उसके नहरें हैं बिन बिगड़े पानी की, और नहरें हैं दूध की कि नहीं बदला मज़ा उनका, और नहरें हैं शराब की मज़ा देनेवाली वास्ते पीनेवालों के, और नहरें हैं[१०] शहद साफ़ किये गये की, और वास्ते उनके बीच उसके मेवे हैं, प्रत्येक प्रकार के दान[११] मालिक उनके से। १५।

मं० ६। सि० २६। सू० ४७। आ० ४। १३। १५॥

---

१. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र० में यहां आयतसंख्या ६२ अशुद्ध है।
२. **शैलीविरुद्ध प्रयोग**—मूलह०, मुद्रणह०, मूलसं० में "**क़ुरान बनाई**" स्त्रीलिंग प्रयोग है। द्विप्र० आदि में शुद्ध कर लिया है।
३. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में "**अञ्जील**" अपवर्तनी है। वेस, भद में भी अपवर्तनी है।
४. **मुद्रणलिपिकरकृत अपपाठ**—मुद्रणह० में यहां "**क्योंकि**" अशुद्ध लिखा है। द्विप्र० में "**क्यों की ?**" पाठ त्रुटित है। अन्य सभी सं० में ग्रहण किया हुआ है। मूलह०, मूलसं० में शुद्ध है।
५. **अयोग्य लिपिकर-शोधक और अपवर्तनी**—दोनों हस्त० और द्विप्र० में यहां अशुद्ध वर्तनी "**विआह**" है। प्रमादलीला की पराकाष्ठा देखिए कि समीक्षा में शुद्ध वर्तनी "**विवाह**" है। एक ही स्थान पर दो-दो वर्तनियां अनेक स्थानों पर हैं।
६. **अपप्रयोग**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, मूलप्रति सं० में "**अच्छी आंख वालियों**" अपप्रयोग है।
७. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, भद में यहां आयतसंख्याएं ४७, ५१ अशुद्ध है।
८. **उचित संशोधन**—मूलह०, मूलसं०, द्वि०सं० में "**मारो गर्दनें उनकी**" अपवाक्य है। मुद्रणह०, द्विप्र० में संशोधित है।
९. **मुद्रणकालीन उचित संशोधन**—मूलह०, मुद्रणह०, मूलप्रति सं० में "**कठिन है कैद करना**" अप-अनुवाद है। द्विप्र० अदि में उपर्युक्त संशोधित पाठ है। यही कुरान में है। अत: ग्राह्य है।
१०. **मुद्रणलिपिकर से त्रुटित पाठ**—मुद्रणलिपिकर ने प्रतिलिपि करते समय प्रमादवश "**दूध की कि नहीं.....और नहरें हैं**" तक का पाठ त्रुटित छोड़ दिया। द्विप्र० में इसको ग्रहण किया है किन्तु उसमें "**और नहरें हैं**" पाठ फिर भी त्रुटित रह गया है। **स्वामी वेदानन्द सं०** और **पं० सिद्धान्ती सं०** को छोड़ कर सभी संस्करणों में इस पाठ को अब ग्रहण कर लिया गया है।
११. **दान**=क्षमा, कृपा।

समीक्षक—इसी से **यह 'क़ुरान', ख़ुदा और मुसलमान ग़दर मचानेवाले, सबको दुःख देने वाले [और][1] अपना मतलब साधनेवाले, दयाहीन हैं।** जैसा यहां लिखा है वैसा ही दूसरा=कोई दूसरे मत-वाला मुसलमानों पर करे, तो मुसलमानों को वैसा ही दुःख, जैसा कि अन्य को देते हैं, हो वा नहीं? और खुदा[2] बड़ा पक्षपाती है कि जिन्होंने मुहम्मद साहब[3] को [अपनी बस्तियों से] निकाल दिया, उनको ख़ुदा ने मारा। भला, जिसमें शुद्ध पानी, दूध, मद्य और शहद की नहरें हैं, वह संसार से अधिक नहीं हो सकता। और दूध की नहरें कभी नहीं हो सकती, क्योंकि वह थोड़े समय में बिगड़ जाता है। इसीलिये बुद्धिमान् लोग '**क़ुरान**' के मत को नहीं मानते॥ १४९॥

१५०. जब कि हिलाई जावेगी पृथिवी हिलाये जाने कर। ४। उड़ाये जावेंगे पहाड़ उड़ाये जाने कर। ५। बस हो जावेंगे भुनगे[4] टुकड़े-टुकड़े। ६। बस, साहब दाहिने ओर वाले, क्या हैं साहब दाहिनी ओर के। ८। और बाईं ओर वाले क्या हैं बाईं ओर वाले। ९। ऊपर पलंग सोने के तारों से बुने हुए हैं। तकिये किये हुए हैं ऊपर उनके आमने-सामने। १५। और फिरेंगे ऊपर उनके लड़के सदा रहनेवाले। १६। साथ आबखोरों[5] के, और आफ़ताबों[6] के और प्यालों के शराब साफ़ से। १७। नहीं माथा दुखाये जावेंगे उससे और न विरुद्ध बोलेंगे। १८। और मेवे उस क़िस्म के[7] कि पसन्द करें। और गोश्त ज़ानवर-पक्षियों के उस क़िस्म से कि पसन्द करें। १९। और वास्ते उनके औरतें हैं अच्छी आंखोंवालियां। २०। मानिन्द मोतियों छिपाये हुओं की। २१। और बिछौने बड़े। २२। निश्चय हमने उत्पन्न किया है औरतों को[8] एक प्रकार का उत्पन्न करना है[9]। २३। बस किया है हमने उनको कुमारी। ३४। सुहागवालियां बराबर अवस्थावालियां। ३५। बस, भरनेवाले हो उससे पेटों को। ३६। बस, क़सम खाता हूं मैं साथ गिरने तारों के। ३७।

मं० ७। सि० २७। सू० ५६। आ० ४-६। ८। ९। १५-२३। ३४-३७। ५३। ७५॥[10]

समीक्षक—अब देखिये '**क़ुरान**' बनानेवाले की लीला को! भला, पृथिवी तो हिलती ही रहती है, उस समय भी हिलती रहेगी। इससे यह सिद्ध होता है कि '**क़ुरान**' बनानेवाला पृथिवी को स्थिर जानता था! भला, पहाड़ों को क्या पक्षीवत् उड़ा देगा? यदि भुनगे[11] हो जावेंगे तो भी सूक्ष्म शरीरधारी रहेंगे, तो फिर उनका दूसरा जन्म क्यों नहीं? वाह जी! जो ख़ुदा शरीरधारी न होता तो उसके दाहिनी ओर और

---

१. **त्रुटित आवश्यक पद**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**वाले**'' प्रत्यय तथा ''**और**'' योजक पद त्रुटित हैं।

२. **त्रुटित पद**—मूलह०, मुद्रणह०, मूलप्रति सं० में ''**खुदा**'' पद त्रुटित है। अन्य द्वि०सं०, उदयपुर आदि में अब परिवर्धित है।

३. **मुहम्मद को निकालना**—यह उस घटना की चर्चा है जब विरोधियों ने हज० मुहम्मद को मक्का से निकाल दिया था और उन्हें मदीना में आकर रहना पड़ा था।

४, ११. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**भुनुगे**'' अपवर्तनी है। उदयपुर सं० में दोनों स्थलों पर अशुद्ध वर्तनियां है।

५. **आबखोर**=बिना टोंटी और दस्ते का पानी का बर्तन।

६. **आफताब**=टोंटी और दस्ते वाला पानी का बर्तन।

७. **अपप्रयोग**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**क़िस्म से**'' अपप्रयोग है। उदयपुर सं० आदि में भी अपप्रयोग है।

८. **पाठान्तर, त्रुटि आयत**—मूलह०, मूलसं० में यहां ''**कुमारी**'' पद है और ३४वीं आयत का पाठ त्रुटित है।

९. **उत्पन्न करना**—स्त्रियों को 'एक प्रकार से' उत्पन्न करने का भाव है—स्त्री का विशेष बनावट का शरीर और उसको प्राकृतिक रूप से कौमार्य अवस्था में उत्पन्न करना। यह भाव अग्रिम ३४वीं आयत में है।

१०. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह० में यहां ३९, ५४ संख्याएं अशुद्ध हैं, ३४, ३७, ५३ त्रुटित हैं। द्विप्र०, वेस, भद में यहां आयतसंख्याएं २४, ५४ अशुद्ध हैं, इनके स्थान पर ३४, ५३ शुद्ध हैं।

बाईं ओर कैसे खड़े हो सकते ? जब वहां पलंग सोने के तारों[१] से बुने हुए हैं तो बढ़ई-सुनार भी वहां रहते होंगे ? और खटमल काटते होंगे, जो उनको रात्रि में सोने भी नहीं देते होंगे ? क्या वे तक्रिये लगाकर बहिश्त में निकम्मे बैठे ही रहते हैं वा कुछ काम किया करते हैं ? यदि बैठे ही रहते होंगे, तो उनको अन्न का[२] पचन न होने से वे रोगी होकर शीघ्र मर भी जाते होंगे ? और जो काम किया करते होंगे, तो जैसे मेहनत-मज़दूरी यहां करते हैं, वैसे ही वहां मेहनत=परिश्रम करके निर्वाह करते होंगे ? फिर यहां से वहां बहिश्त में विशेष क्या है ? कुछ भी नहीं।

यदि वहां लड़के सदा रहते हैं तो उनके मा-बाप भी रहते होंगे और सास[३]-श्वसुर[४] भी रहते होंगे ? तब तो बड़ा भारी शहर बसता होगा ? फिर मल-मूत्रादि के बढ़ने से रोग भी बहुत-से होते होंगे ? क्योंकि जब यथेष्ट मेवे खावेंगे, गिलासों में पानी पीवेंगे, और प्यालों में[५] मद्य पीवेंगे, तो उनका शिर दूखेगा, और कोई विरुद्ध बोलेगा।[६] यथेष्ट मेवे खायेंगे और[७] जानवरों तथा पक्षियों के मांस भी खावेंगे, तो

---

१. **अपप्रयोग**—मूलप्रति सं० में **''तोरों''** अप-मुद्रणपाठ है। अन्य सभी सं० में शुद्ध है।

२. **अपप्रयोग**—मूलह०, मूलप्रति सं० में **''अन्न के पचन''** अपप्रयोग है। मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में **'के'** हटा दिया है।

३. **घोर अव्यवस्थित वर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में **'सास'** शब्द की वर्तनी बहुत अव्यवस्थित है। जिस लिपिकर को अपनी योग्यता के अनुसार जैसा लिखना आता था वैसा लिख डाला, शुद्धाशुद्धि पर ध्यान नहीं दिया। सवा सौ से अधिक वर्ष बीत जाने पर आज भी ग्रन्थ की वही दशा है। देखिए, यहां मूलह० में **''शाशु''**, मूलसं० में **''सासु''**। मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में **''सासू''** वर्तनी है। अन्य सभी सं० में **''सासू''** वर्तनी है। दोनों सं० में इस प्रकार अनेक वर्तनियां है—**सास** (मू०सं० पृ० ५७९, ६११; द्वि० सं० पृ० ३२६, ३४३), **सासु** (मू०सं० पृ० ११७, १३६, ७१४;), **सासू** (मू०सं० पृ० ६३६; द्वि०सं० ३५७, ३९७) **शाशु** (द्वि०सं० पृ० ७९)। भाषात्मक व्यवस्था, एकरूपता और मानकता के लिए सर्वत्र एक वर्तनी **''सास''** ग्रहण की गई है। यही अव्यवस्था वेस, भद, युमी, उदयपुर आदि सं० में पाई जाती है।

४. **अव्यवस्थित, वर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में **'श्वसुर'** शब्द की अव्यवस्थित वर्तनी है, जैसे—**ससुर** (मू० सं० पृ० ३३६), **श्वसुर** (मू० सं० पृ० ५७९, ६२२; द्वि० सं० ३२६, ३४६, ३५७, ३९७), **श्वशुर** (मू० सं० पृ० ११६, १३६, ७१४; द्वि० सं० ७९)। एकरूपता और मानकता के लिए **''श्वसुर''** वर्तनी को सर्वत्र ग्रहण किया है। यही अव्यवस्था सभी सं० में है।

५. **अपप्रयोग**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में **''से''** अपप्रयोग है, **''में''** अपेक्षित है, जैसे पहले वाक्यखंड में प्रयुक्त है।

६. **महाभ्रष्टपाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में समीक्षा में यह अपवाक्य है—**''प्यालों में मद्य पीयेंगे, न उनका सिर दूखेगा और न कोई विरुद्ध बोलेगा''**। शराब पीने के परिणाम के आयत-वर्णित लाभ बताना ग्रन्थकार का उद्देश्य नहीं है। शराब के खण्डन के लिए यह समीक्षा लिखी है। ज्ञात होता है कि किसी लिपिकर ने प्रमाद से यह पाठ बनाया है। ग्रन्थकार ने यहां आयतपाठ की आलोचना की है, समर्थन नहीं। ग्रन्थकार कुरानोक्त मद्यपान के लाभों को मिथ्या बताना चाहते हैं।

संशोधन-पुष्टि—इस सं० में संशोधित उक्त पाठ ही यहां होना चाहिए। महर्षि के विपरीत भाव का पाठ यहां छपा है। महर्षिप्रोक्त अन्यत्र पाठ से भी इसकी पुष्टि होती है। आयतखण्ड संख्या १६४ की समीक्षा में पृ० १०३८ पर आयत पाठ **''प्याले हैं भरे हुए''** की समीक्षा करते हुए ऋषि लिखते हैं—**''जब प्याले भर-भर शराब पीयेंगे तो मस्त होकर क्यों न लड़ेंगे ?''** यही कथ्य और भाव यहां आगे भी है—**''नहीं तो ऐसे नशे बाजों के शिर में गरमी चढ़के प्रमत्त हो जायेंगे।''** (पृ० १०३०/४)

आर्य सम्पादकों की प्रमाद-परम्परा—लिपिकरों, शोधकों आदि ने तो इस पाठ में प्रमादलीला करके इसको महाभ्रष्ट किया ही है, उससे भी अधिक दु:ख आर्य सम्पादकों तथा पाठकों पर है जिन्होंने सवा-सौ वर्षों की अवधि में इस महर्षि-विरुद्ध, अशुद्ध पाठ को बनाये रखा है। **स्वामी वेदानन्द जी, सिद्धान्ती जी, पं० भगवद्दत्त जी, पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक** सदृश विद्वानों ने भी इस भ्रष्टपाठ पर ध्यान नहीं दिया। इनसे भी बढ़कर आश्चर्य कथित दश विद्वानों द्वारा सम्पादित 'उदयपुर संस्करण' पर है जिसमें अशुद्ध पाठ विद्यमान है। उन्होंने भी इस पाठ की भ्रष्टता तथा महर्षि-विरुद्धता पर विचार नहीं किया। क्या महर्षि मद्यपान का गुणगान करने वाले समझ लिये ? फिर वह कैसा 'मानक' संस्करण हुआ ?

७. **अयोग्य लिपिकरों द्वारा अपपाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में यहां **''यथेष्ट मेवा खायेंगे''** एकवचनात्मक अपपाठ है। **संशोधन-पुष्टि**—वाक्य के आरम्भ में और आयत-पाठ में **''मेवे''** बहुवचनात्मक शुद्ध प्रयोग है। देखिए लिपिकरों-शोधकों की अयोग्यता और लापरवाही कि एक ही वाक्य में दो प्रकार का पाठ है। सभी वेस, युमी, उदयपुर आदि सं० में यही अशुद्ध पाठ है।

अनेक प्रकार के दु:ख, पक्षी, जानवर वहाँ होंगे, हत्या होगी और हाड़ जहां-तहां बिखरे रहेंगे, और कसाइयों की दुकानें भी होंगी; वाह, क्या कहना इनके बहिश्त की प्रशंसा का कि वह अरब देश से भी बढ़कर दीखती है! और जो मद्य-मांस पी-खाके उन्मत्त होते हैं, इसीलिये अच्छी-अच्छी स्त्रियां और लौंडे भी वहां अवश्य रहने चाहियें, नहीं तो ऐसे नशेबाज़ों के शिर में गरमी चढ़के प्रमत्त हो जावेंगे। अवश्य, बहुत स्त्री-पुरुषों के बैठने-सोने के लिये बिछौने बड़े-बड़े चाहियें।

जब ख़ुदा कुमारियों को बहिश्त में उत्पन्न करता है, तभी कुमारे लड़कों को उत्पन्न करता है। भला, कुमारियों का तो विवाह जो यहां से उम्मीदवार[१] होकर गये हैं, उनके साथ ख़ुदा ने लिखा, परन्तु उन सदा रहनेवाले लड़कों का किन्हीं कुमारियों के साथ विवाह न लिखा, तो क्या वे भी उन्हीं उम्मीदवारों[२] के साथ कुमारीवत् दे दिये ?[३], इसकी व्यवस्था कुछ भी न लिखी। यह ख़ुदा में बड़ी भूल क्यों हुई ? यदि बराबर अवस्थावाली सुहागिन स्त्रियां पतियों को पाके बहिश्त में रहती हैं, तो ठीक नहीं हुआ, क्योंकि स्त्रियों से पुरुषों का आयु डेढ़ गुना या दूना चाहिये।[४] यह तो मुसलमानों के बहिश्त की कथा है!

और नरक-वाले, सिंहोड़ अर्थात् थोर के वृक्षों को खाके पेट भरेंगे, तो कण्टक वृक्ष भी दोज़ख़ में होंगे ? तो कांटे भी लगते होंगे ? गर्म पानी पीयेंगे, इत्यादि दु:ख दोज़ख़ में पावेंगे। **क़सम का खाना प्राय: झूठों[५] का काम है, सच्चों का नहीं।** यदि ख़ुदा ही क़सम खाता है तो वह भी झूठ से अलग नहीं हो सकता॥ १५०॥

१,२. **अव्यवस्थित वर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में इस शब्द की कहीं ''**उम्मीद/ उम्मेद**'', कहीं ''**उम्मीदवार/ उम्मेदवार**'' वर्तनी मिलती है। यह फारसी का ''**उम्मीद/ उम्मीदवार**'' शुद्ध शब्द है। शुद्धता, मानकता, एकरूपता की दृष्टि से इस सं० की वर्तनी ग्राह्य है। अन्य सभी सं० में यह अव्यवस्था है।

३. **मुद्रणकाल में अपपरिवर्तन**—मूलह०, मूलप्रति सं० में ''**जावेंगे**'' क्रिया नहीं है। मुद्रणकाल में द्विप्र० में बढ़ाई गई है जो पूर्ववाक्यों की भूतकालीन क्रियाओं के सम्बन्ध से अशुद्ध प्रयोग है। उदयपुर आदि सभी सं० में अशुद्ध क्रिया-प्रयोग है।

४. **लिपिकर द्वारा महर्षि के सिद्धान्तविरुद्ध और परस्परविरुद्ध पाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में यहां ''**स्त्रियों से पुरुषों का आयु दूना-ढाई गुणा चाहिये**'' यह कथन ऋषि की स्थापित मान्यता के विरुद्ध है। महर्षि ने सत्यार्थप्रकाश तृतीय समु० पृ० ९७ तथा संस्कारविधि में स्त्रियों से डेढ से दो गुना अधिक आयु होने का मन्तव्य स्थापित किया है। (द्रष्टव्य, विवाह प्रकरण) महर्षि की स्थापित मान्यता के संदर्भ में यहां ''**डेढ़ गुना या दूना**'' पाठ अपेक्षित है। प्रतीत होता है कि लिपिकर की शरारत से यह अशुद्ध पाठ लिखा गया है क्योंकि उस समय बाल-विवाह लोगों के मस्तिष्क में बैठा हुआ था। और यह भी सत्य है कि अपनी मान्यता के विरुद्ध ग्रन्थकार ऐसी बड़ी भूल नहीं कर सकते। इसी प्रकार ''**पुरुषों**'' बहुवचन वांछित है।

सम्पादकों की दुर्भाग्यपूर्ण प्रमाद-परम्परा—लिपिकरों ने महर्षि की मान्यता के विरुद्ध शरारत से यह पाठ लिख डाला। मक्कार शोधकों ने उसको शुद्ध नहीं किया। इससे भी अधिक दुर्भाग्य और दु:खद बात यह है कि सवा-सौ वर्षों से इस अनमेल विवाह सम्बन्धी भ्रष्टपाठ को हमारे सम्पादक विद्वान् और पाठक सुरक्षित बनाये हुए हैं। इस पर केवल **पं० मीमांसक जी** ने ध्यान दिया, अन्य किसी ने भी ध्यान नहीं दिया। मीमांसक जी ने भी मूलपाठ में संशोधन न करके केवल टिप्पणी में इस परस्पर विरोध का संकेत किया है। मीमांसक जी के इस विवेचन का ग्रन्थ को कोई लाभ नहीं हुआ, मूलपाठ तो अशुद्ध ही रह गया।

इनसे भी अधिक दु:खद पक्ष है **उदयपुर सं०** का। एक तो वह आर्यसमाज के कथित दस सम्पादकों द्वारा सम्पादित है, अत: दस विद्वानों से ऐसे महर्षि-विरुद्ध और सिद्धान्त-विरुद्ध भ्रष्ट पाठ की आशा नहीं थी। दूसरे, इन दस सम्पादकों के समक्ष शुद्ध-अशुद्ध पाठ के दोनों विकल्प विद्यमान थे किन्तु उन्होंने भ्रष्ट पाठ को प्रस्तुत किया। उन्होंने इस भ्रष्टपाठ पर गम्भीर विचार नहीं किया। दस विद्वानों से इतने प्रमादपूर्ण सम्पादन की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

५. **अपपाठ**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, मूलप्रति सं० में ''**झूठे का**'' एकवचनात्मक प्रयोग है। द्वि०सं० में संशोधित ''**झूठों का**'' बहुवचनान्त पाठ ग्राह्य है। सभी सं० में संशोधित है किन्तु उदयपुर सं० में अशुद्ध पाठ है।

१५१. वही है जिसने उत्पन्न किया आसमानों को और पृथिवी को बीच छः दिनों के, फिर करार पकड़ा ऊपर अर्श के....।४।[१] ईमान लाओ साथ अल्लाह के और रसूल उसके के....।७। कौन मनुष्य है कि उधार देवे अल्लाह को, उधार अच्छा बस, दुगुना करे उसको वास्ते उसके।११।[२]

मं० ७। सि० २७। सू० ५७। आ० ४।७।११॥

समीक्षक—यदि छः दिनों में पृथिवी और आकाश को बनाकर आकाश में आराम किया तो वह शरीरधारी, एकदेशी, असमर्थ और थकनेवाला होने से ईश्वर ही नहीं हो सकता। यदि ईमान में पैग़म्बर भी शरीक है तो ख़ुदा का शरीक हुआ वा नहीं? और मुसलमानों के मत में ख़ुदा के सिवाय [पैग़म्बर][३] पर भी ईमान रखना आवश्यक होने से ख़ुदा को '**लाशरीक**' कहना व्यर्थ है। क्या ख़ुदा के खजाने में टोटा पड़ गया, वा कोई लूट गया, अथवा ख़ुदा ने फैल-फतूरी[४] में नाश कर दिया कि जिस किसी से उधार मांगता है और दूना देना स्वीकार करता है? भला, ऐसी-ऐसी बातें ईश्वर और ईश्वरकृत पुस्तक की कभी हो सकती हैं?॥१५१॥

१५२. अल्लाह ने क्रोध किया ऊपर काफ़िरों के....।१४। और विशेषतः यहूदियों पर गालिब आया[५] उनके शैतान, बस, भुला दी उनको याद ख़ुदा की, ये लोग-समुदाय शैतान के हैं....।१९।[६]

मं० ७। सि० २८। सू० ५८। आ० १४[७]।१९॥

समीक्षक—यदि मुसलमानी मजहब को न मानें और वे अच्छे हों, उन पर ख़ुदा क्रोध करेगा तो अन्यायी होगा वा नहीं? और जो मुसलमानों में दुष्ट हों, उनसे प्रेम करेगा तो भी पक्षपाती होकर पापी होगा। यदि ख़ुदा की सृष्टि में शैतान प्रबल होता है और उसको ख़ुदा न पकड़ [सकता है][८], न दण्ड [दे सकता है][९] और न मार सकता है, इसीलिये ख़ुदा सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी भी नहीं है॥१५२॥[१०]

१५३. वह पृथिवी अल्लाह ने लूट के प्रकार से न बटवाई, हज़रत के इख़्तियार[११] में रक्खी।६। यह ही भेद रक्खा लूट में और फ़ी[१२] में, जो माल लड़ाई से हाथ लगा वह लूट पांचवां भाग अल्लाह

---

१. **छह दिन में सृष्टि-उत्पत्ति की पुनरुक्ति**—द्रष्टव्य आयतखण्ड संख्या ७८, ९७, १५१। **बाइबल में**—द्र० समु० १३ में आयतखण्ड संख्या ४५ और 'उत्पत्ति' नामक पुस्तक के पर्व एक में।

२. **मुद्रणकाल में आयतखण्ड तथा समीक्षा पाठ का निष्कासन अनुचित**—द्विप्र० में तथा फिर द्वि०सं० में आयतखण्ड संख्या १५१ तथा उसकी सम्पूर्ण समीक्षा निकाल दी है। कारण अज्ञात है। यह पाठ दोनों हस्तलेखों में है। मुद्रणकाल में इसको मुंशी समर्थदान जी ने निकाला है। महर्षि के लेखन-श्रम को अकारण व्यर्थ कर देना अवांछनीय है।

३. **त्रुटित आवश्यक पद**—मूलह०, मुद्रणह०, मूलप्रति सं० ''**पैगम्बर**'' पद त्रुटित रह गया है।

४. **फैल-फतूरी**=खेल-तमाशा, गलत काम या व्यसन आदि में।

५. **ग़ालिब आया**=प्रभुत्व स्थापित किया।

६,१०. **मुद्रणकाल में आयतखण्ड व समीक्षा पाठ निष्कासन अनुचित**—द्विप्र०, द्वि०सं० से आयतखण्ड संख्या १५२ को समीक्षा सहित निकाल दिया है। यह मूलह०, मुद्रणह० में है। निष्कासन अवांछनीय है क्योंकि इससे महर्षि का लेखन व्यर्थ हो गया है।

७. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, मूलसं० में १५ संख्या अशुद्ध है। द्विप्र०, द्वि०सं० में दोनों आयतें नहीं हैं।

८,९. **त्रुटित आवश्यक क्रिया**—दोनों सं० में पूर्ण व सटीक वाक्यरचना के लिए बृ० कोष्ठकान्तर्गत क्रियाएं अपेक्षित हैं।

११. **इख़्तियार में रखना**=अधिकार या स्वामित्व में रखना। ''**अखत्यार**'' अपवर्तनी है। '**लूट की**' नहीं, ''**लूट के**'' शुद्ध पाठ है।

१२. **फ़ी (फ़ै)**=उस धन-सम्पत्ति को कहते हैं जो बिना युद्ध किये ही विरोधी पक्ष की ओर से प्राप्त हो जाता है। युद्ध करके लूटे गये धन को '**लूट**' या '**ग़नीमत**' कहा जाता है।

की भेंट, और चार भाग लश्कर को बांटने.....। ७।[१] मं० ७। सि० २८। सू० ५९। आ० ६। ७॥[२]

समीक्षक—क्या कहना है! तभी तो मुसलमान लोग लूट-मार और फ़साद[३] करने में नहीं डरते कि जिनके ख़ुदा और पैग़म्बर ने लूट की पृथिवी आदि को भी स्वीकार कर लिया! क्योंकि उस लूट के माल में से पांचवां भाग अल्लाह का भी है। क्या यह ख़ुदा वा पैग़म्बर लूट के करानेवाले नहीं हुए? ऐसे ख़ुदा[४] और पैग़म्बर को कोई बुद्धिमान् न मान सकेगा। और क्या ऐसे की बात का प्रमाण हो सकता है?॥ १५३॥[५]

१५४. निश्चय, अल्लाह मित्र रखता है उन लोगों को कि लड़ते हैं बीच मार्ग उसके के....। ४। मं० ७। सि० २८। सू० ६१। आ० ४॥

समीक्षक—वाह, ठीक है! ऐसी-ऐसी बातों का उपदेश करके बेचारे अरबदेश-वासियों को सबसे लड़ाके शत्रु बनाकर परस्पर दुःख दिलाया। और मज़हब का झंडा खड़ा करके लड़ाई फैलावे, ऐसे को ईश्वर, बुद्धिमान् कभी नहीं मान सकते। **जो मनुष्य-जाति[६] में विरोध बढ़ावे वही सबको दुःखदाता होता है॥ १५४॥**

१५५. यदि क़र्ज़ दो तुम अल्लाह को, क़र्ज़ अच्छा, दुगुणा करेगा उसको वास्ते, तुम्हारे क्षमा करेगा वास्ते तुम्हारे पाप....। १७।[७,८] मं० ७। सि० २८। सू० ६४। आ० १७॥

समीक्षक—यह क़र्ज़ का लेना-देना सब मुहम्मद साहब के मतलब की बात है। जैसे मूर्तिपूजक मूर्ति के नाम से लोगों से धन लेकर स्वकार्य सिद्ध करते हैं, ऐसी ही मुहम्मद साहब की लीला है; क्योंकि ईश्वर को क़र्ज़ लेने का कोई भी प्रयोजन नहीं॥ १५४॥

नोट—हज़रत ने एक बीबी अपनी मौक़ूफ़[९] कर दी खातिर से और बीबियों से। हजरत की मरियम नामी एक बांदी से प्रीति बहुत थी। और इस बात को जानकर उनकी एक बीबी ने उनको रोका।[१०] हज़रत ने खफ़ा होकर उसको तलाक़ दे दिया। ये आयत हज़रत की औरतों की तरफ है। किसी दिन कोई बीबी रूस गई होगी, उस बात पर यह आयत उतरी कि 'ऐ नबी की स्त्रियो! यह घमंड मत करो कि पैग़म्बर के लिये हम ही हैं, नहीं सिवाय तुम्हारे और भी बीबियां बदल सकते हैं—'[११]

१,५. **मुद्रणकाल में आयतखण्ड और समीक्षा का निष्कासन अनुचित**—आयतखण्ड संख्या १५३ तथा उसकी पूर्ण समीक्षा को द्विप्र० से निकाल दिया है। यह मूलह०, मुद्रणहस्त० में है। इसको मुंशी समर्थदान जी ने निकाला है, जो अवांछनीय है।

२. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, मूलसं० में २ संख्या अशुद्ध है जबकि ७ त्रुटित है।

३. **अपवर्तनी**—मूलह०, मुद्रणह०, मूलप्रति सं० में ''**फिसाद**'' अपवर्तनी है।

४. **अपपाठ**—मूलप्रति सं० में ''**ऐसा खुदा.....को**'' अपपाठ है। मूलह०, मुद्रणह० में शुद्ध है।

६. **मुद्रणकालीन त्रुटित पद**—मुद्रणकाल में द्विप्र० में ''**मनुष्य**'' पद त्रुटित रह गया है। यह दोनों हस्तलेखों में है। स्वामी वेदानन्द सं० और पं० मीमांसक सं० को छोड़कर सभी सं० में गृहीत है।

७. **अल्लाह को ऋण देने विषयक पुनरुक्ति**—द्रष्टव्य आयतखण्ड संख्या ४२, ७१।

८,११. **मुद्रणकाल में आयतखण्ड पाठ-निष्कासन अनुचित**—यह आयतखण्ड सं० १५५ और इसकी पूर्ण समीक्षा तथा ''**नोट**'' शीर्षक कथन मुद्रणकाल में द्विप्र० में से निकाल दिये हैं। कारण अज्ञात है। इनको मुंशी समर्थदान जी ने व्यर्थ हटाया है।

९. **अपवर्तनी**—मूलह०, मूलप्रति सं० में यहां ''**मैकूफ**'' अपवर्तनी है। यह कोई शब्द नहीं होता। **मौक़ूफ़**=स्थगित, करना, पृथक् करना, (बीबी के) पद से हटाना।

१०. **अपवाक्य**—मूलह०, मूलप्रति सं० में यहां अपपाठ है—''**इस बात को उनकी एक बीबी ने जानकर रोका**''।

१५६. ऐ नबी! क्यों हराम करता है उस वस्तु को कि हलाल किया है ख़ुदा ने तेरे लिये, चाहता है तू प्रसन्नता बीबियों अपनी की, और अल्लाह क्षमा करनेवाला दयालु है। १। जल्दी है मालिक उसका जो वह तुमको छोड़ दे, तो यह कि उसको तुमसे अच्छी मुसलमान और ईमानवालियाँ बीबियाँ बदल दे सेवा करनेवालियाँ, तौबा करनेवालियाँ, भक्ति करनेवालियाँ, रोज़ा रखनेवालियाँ, पुरुष देखी हुई और बिन देखी हुई। ५।[१] मं० ७। सि० २८। सू० ६६। आ० १।५॥

समीक्षक—ध्यान देकर देखना चाहिये कि ख़ुदा क्या हुआ, मुहम्मद साहब के घर का भीतरी और बाहरी प्रबन्ध करने वाला भृत्य ठहरा!!

प्रथम आयत पर दो कहानियाँ हैं—**एक** तो यह कि मुहम्मद साहब को शहद का शर्बत प्रिय था। उनकी कई बीबियाँ थीं[२] उनमें से एक के घर पीने में देर लगी तो दूसरियों को असह्य प्रतीत हुआ। उनके कहने-सुनने के पीछे मुहम्मद साहब सौगन्द[३] खा गये कि हम न पीवेंगे।

दूसरी यह कि उनकी कई बीबियों में से एक की बारी थी। उसके यहाँ रात्रि को गये तो वह न थी, अपने बाप के यहाँ गई थी। मुहम्मद साहब ने एक लौंडी अर्थात् दासी को बुलाकर पवित्र किया। जब बीबी को इसकी ख़बर मिली तो वह अप्रसन्न हो गई। तब मुहम्मद साहब ने सौगन्द[४] खाई कि मैं ऐसा न करूँगा, और बीबी से भी कह दिया कि तुम किसी से यह बात मत कहना। बीबी ने स्वीकार किया कि न कहूँगी। फिर उन्होंने दूसरी बीबी से जा कहा। इस पर यह आयत ख़ुदा ने उतारी ''जिस वस्तु को हमने तेरे पर हलाल किया, उसको तू हराम क्यों करता है?''

बुद्धिमान् लोग विचारें कि भला, कहीं ख़ुदा भी किसी के घर का निमटेरा करता फिरता है? और **मुहम्मद साहब के तो आचरण इन बातों से प्रकट ही हैं, कहने की क्या बात है?**

और दूसरी आयत से प्रतीत होता है कि मुहम्मद साहब से उनकी कोई बीबी अप्रसन्न हो गई होगी। उसपर खुदा ने यह आयत उतारकर उसको धमकाया होगा कि यदि तू गड़बड़ करेगी और मुहम्मद साहब तुझे छोड़ देंगे तो उनको ख़ुदा तुझसे अच्छी बीबियाँ देगा कि जो पुरुष से न मिली हों।

जिस मनुष्य को तनिक-सी बुद्धि है वह विचार ले सकता है कि ये खुदा-वुदा के काम हैं वा अपने प्रयोजन सिद्धि के? **ऐसी-ऐसी बातों से ठीक सिद्ध है कि खुदा कोई नहीं कहता था, केवल देश-काल देखकर अपने प्रयोजन के सिद्ध होने के लिये खुदा की तरफ़[५] से मुहम्मद साहब कह देते थे। जो लोग खुदा की ही तरफ़[६] लगाते हैं उनको हम क्या, सब बुद्धिमान् यही कहेंगे कि खुदा क्या ठहरा, मानो मुहम्मद साहब के लिये बीबियाँ लानेवाला नाई ठहरा!!!**

---

१. **मूललिपिकर की भूल और मुंशी जी द्वारा संशोधन-परिवर्धन**—एक जैसे शब्दों से प्रारम्भ होने के कारण मूललिपिकर आयतखण्ड १५६ को छोड़ कर १५७ को लिख गया। समीक्षा पहले १५६ की है फिर १५७ की। मुद्रणप्रति में यही गलत पाठ है। मुंशी समर्थदान जी ने आयतखण्ड १५६ लिख कर ''**ध्यान देकर.....नाई ठहरा**'' समीक्षा स्वहस्तलेख में परिवर्धित की है। आगे की समीक्षा ग्रन्थकार द्वारा लिखाई हुई है।

२. **कई बीबियां**—हज० मुहम्मद की ग्यारह बीबियां थी। टिप्पणी द्र० है पृ० ९३९ पर।

३-४. **अपवर्तनी**—मूलह०, मूलप्रति सं० में ''**सौगन्ध**'' अपवर्तनी है। ''**सौगन्द**'' शुद्ध वर्तनी है।

५-६. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**तर्फ़**'' अपवर्तनी है। ''**तरफ़**'' शुद्ध वर्तनी है।

भला, जो अनेक स्त्रियों को रक्खे वह ईश्वर का भक्त वा पैग़म्बर कैसे हो सके ? और जो एक स्त्री का पक्षपात से अपमान करे और दूसरी का मान्य करे, वह पक्षपाती होकर अधर्मी क्यों नहीं ? और जो बहुत-सी स्त्रियों से भी सन्तुष्ट न होकर, बांदियों के साथ फसे, उसको[१] लज्जा, भय और धर्म कहां से रहे ? किसी ने कहा है कि—

कामातुराणां न भयं न लज्जा

=जो कामी मनुष्य हैं उनको अधर्म से भय वा लज्जा नहीं होती।

और इनका ख़ुदा भी मुहम्मद साहब की स्त्रियों और पैग़म्बर के झगड़े को फैसला करने में जानो सरपंच बना है। अब बुद्धिमान् लोग विचार लें कि यह '**क़ुरान**' किसी विद्वान्-कृत वा ईश्वर-कृत है वा किसी अविद्वान् मतलबसिन्धु का बनाया,[२] स्पष्ट विदित हो जायगा॥ १५६॥

१५७. ऐ नबी! झगड़ा कर काफ़िरों और गुप्त शत्रुओं से[३], और सख़्ती कर ऊपर उनके....। ९।
मं० ७। सि० २८। सू० ६६। आ० ९॥[४]

समीक्षक—और देखिये मुसलमानों के ख़ुदा की लीला! **अन्य मत-वालों से लड़ने के लिये पैग़म्बर और मुसलमानों को उचकाता है, इसीलिये आज तक मुसलमान लोग उपद्रव करने में प्रवृत्त रहते हैं। परमात्मा मुसलमानों पर कृपादृष्टि करे जिससे ये लोग उपद्रव करना छोड़के, सबसे मित्रता से वर्तें॥ १५७॥**

१५८. फट जावेगा आसमान, बस, वह उस दिन सुस्त होगा। १६। और फ़रिश्ते होंगे ऊपर किनारों उसके के, और उठावेंगे तख़्त मालिक तेरे का ऊपर अपने, उस दिन आठ जन। १७। उस दिन सामने लाये जाओगे तुम, न छिपी रहेगी कोई बात छिपी हुई। १८। बस, जो कोई दिया गया कर्मपत्र अपना बीच दाहिने हाथ अपने के, बस कहेगा—'लो पढ़ो कर्मपत्र मेरा'। १९। और जो कोई दिया गया कर्मपत्र बीच बायें[५] हाथ अपने के, बस कहेगा हाय न दिया गया होता मैं कर्मपत्र अपना। २५। मं० ७। सि० २९। सू० ६९। आ० १६। १७। १८। १९।[६] २५॥

समीक्षक—वाह क्या '**फ़िलासफ़ी**' और '**न्याय**' की बात है! भला, आकाश भी कभी फट सकता है? क्या वह वस्त्र के समान है जो फट जावे? यदि ऊपर के लोक को आसमान कहते हैं तो यह बात विद्या से विरुद्ध है। अब '**क़ुरान**' का ख़ुदा शरीरधारी होने में कुछ संदिग्ध न रहा, क्योंकि तख़्त पर

१. **उचित संशोधन**—मूलह०, मुद्रणह०, मूलप्रति सं० में यहां ''**उनको**'' बहुवचनान्त अपप्रयोग है, एकवचन ''**उसको**'' चाहिए। द्विप्र०, द्वि०सं० में संशोधित है।
२. **शैलीविरुद्ध प्रयोग**—मूलह०, मुद्रणह०, मूलप्रति सं० में ''**की बनाई**'' शैलीविरुद्ध प्रयोग है। सम्पूर्ण समुल्लास में महर्षि की स्थापित शैली है कि वे '**कुरान**' को पुंल्लिंग में प्रयोग करते हैं। लिखते समय लिपिकर ने अपनी शैली के अनुसार इसे बदल दिया प्रतीत होता है। द्विप्र० में पुंल्लिंग प्रयोग शुद्ध कर दिया है तदनुसार सभी द्वि०सं० में पुंल्लिंग प्रयोग है।
३. **परस्परविरोध**—कुरान में यहां झगड़ा करने का आदेश है जबकि आयतखण्ड ७९ में निषेध है।
४. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, पं० भगवद्दत्त सं० में यहां आयतों की २, ३, ५, ८ भ्रष्ट संख्या है जबकि आयत एक है, और संख्या चार आयतों की दी है।
५. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**बांये**'' अपवर्तनी है।
६. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, भद में यहां आयतसंख्या ७९ त्रुटित है।

बैठना, आठ कहारों से उठवाना, विना मूर्त्तिमान् के कुछ भी नहीं हो सकता। और सामने वा पीछे भी आना-जाना मूर्त्तिमान् का ही हो सकता है। जब वह मूर्त्तिमान् है, तो एकदेशी होने से सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् नहीं हो सकता और सब जीवों के सब कर्मों को कभी नहीं जान सकता। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि पुण्यात्माओं के दाहिने हाथ में पत्र देना, बँचवाना, बहिश्त में भेजना; और पापात्माओं के बांये हाथ में कर्मपत्र का देना, नरक में भेजना, कर्मपत्र बाँचके[१] न्याय करना सर्वज्ञ का काम नहीं। यह सब लीला लड़केपन की है॥ १५८॥

१५९. चढ़ते हैं[२] फ़रिश्ते और रूह तरफ़[३] उसकी, वह अज़ाब होगा बीच उस दिन के कि है परिमाण उसका पचास हज़ार वर्ष। ४। जबकि निकलेंगे क़ब्रों[४] में से दौड़ते हुए मानो कि वे बुतों के स्थानों की ओर दौड़ते हैं। ४३। मं० ७। सि० २९। सू० ७०। आ० ४। ४३॥[५]

समीक्षक[६]—यदि पचास हज़ार वर्ष दिन का परिमाण है, तो पचास हज़ार वर्षों की रात्रि क्यों नहीं? यदि उतनी बड़ी रात्रि नहीं है, तो उतना बड़ा दिन कभी नहीं हो सकता।[७] रात्रि में न्याय करना अच्छा नहीं किन्तु दिन ही न्याय के लिए है। क्या पचास हज़ार वर्षों तक ख़ुदा, फ़रिश्ते और[८] कर्मपत्र वाले खड़े वा बैठे अथवा जागते ही रहेंगे?[९] यदि ऐसा है, तो सब रोगी होकर पुनः मर ही जायेंगे। क्या क़ब्रों[१०] से निकलकर ख़ुदा की कचहरी की ओर दौड़ेंगे? उनके पास सम्मन क़ब्रों[११] में क्योंकर पहुंचेंगे[१२]? और उन बेचारों को जो कि पुण्यात्मा, पापात्मा हैं इतने समय तक सभी को क़ब्रों में दौरासुपुर्द क़ैद क्यों रक्खा? और आजकल ख़ुदा की कचहरी बन्द होगी और ख़ुदा तथा फ़रिश्ते निकम्मे बैठे होंगे? अथवा क्या काम करते हैं? अपने-अपने स्थानों में बैठे इधर-उधर घूमते, सोते, नाच-तमाशा देखते वा ऐश-आराम कर रहे होंगे? ऐसा अन्धेर किसी के राज्य में न होगा। ऐसी-ऐसी

---

१. **अपप्रयोग**—द्वि०सं० में ''**बांचके**'' के स्थान पर ''**बीचके**'' मुद्रणदोष प्रतीत होता है।

२, ६. **भ्रष्ट अनुवाद तथा उचित संशोधन मुद्रणकाल में**—मूलह०, मुद्रणह०, मूलप्रति सं० में इस आयत का किसी लेखक कृत भ्रष्ट अनुवाद है और उसी के अनुसार समीक्षा भी भ्रष्ट हो गई है। अनुवादक ने भ्रष्ट अनुवाद किया है—''**पढ़ते हैं फ़रिश्ते**''। द्विप्र०, द्वि०सं० में इस अनुवाद को सुधार दिया है तथा अशुद्ध अनुवाद पर आधारित समीक्षा की प्रथम दो पंक्तियों को हटा दिया हैं। यह उचित किया है। अन्य सभी सं० में संशोधित है।

पं० भगवद्दत्त जी का भ्रष्ट पाठ—पं० भगवद्दत्त जी ने अपने संस्करण में भ्रष्टपाठ और भ्रष्टसमीक्षा को रखा है। यदि वे कुरान का मूलपाठ भी देख लेते तो यह अशुद्धि नहीं होती। अन्य सभी सं० में भ्रष्टपाठ का संशोधन कर लिया गया है।

३-४. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**तर्फ़**'' और ''**क़बरों**'' अपवर्तनियां हैं।

५. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, भद में यहां आयतसंख्या ४२ अशुद्ध संख्या है।

७. **मुद्रणकाल में भ्रष्टपाठ का संशोधन**—मूलह०, मुद्रणह० और मूलप्रति सं० में यह भ्रष्टवाक्य है। द्विप्र०, द्वि०सं० में शुद्ध कर दिया गया है। आयत में पचास हजार वर्ष का दिन कहा है। असावधानीवश दिन की जगह रात्रि का और रात्रि की जगह दिन का प्रश्न बन गया है। वह अपवाक्य इस प्रकार है—''**यदि पचास हजार वर्ष की रात्रि का परिमाण है तो पचास हजार वर्ष का दिन क्यों नहीं किया? यदि उतना बड़ा दिन नहीं है तो उतनी बड़ी रात कभी नहीं हो सकती।**'' आयत में पचास हजार वर्ष परिमाण का दिन कह ही रखा है।

८. **अपप्रयोग**—द्वि०सं० में ''**और**'' के स्थान पर ''**कौर**'' मुद्रणदोष है।

९. **पुनरुक्ति**—द्रष्टव्य आयतखण्ड संख्या ३, १३, १२२, १३२, १४०, १५८।

१०-११. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**कबरों**'' अपवर्तनी है।

१२. **मुद्रणकालीन अप-परिवर्तन**—मूलह०, मुद्रणह०, मूलप्रति सं० में ''**पहुंचा**'' शुद्ध क्रिया है। द्विप्र० में '**पहुंचेंगे**' अशुद्ध है।

बातों को सिवाय जंगलियों के दूसरा कौन मानेगा?॥ १५९ ॥

१६०. निश्चय, उत्पन्न किया है तुमको कई प्रकार से। १४। क्या नहीं देखा तुमने कैसे उत्पन्न किया अल्लाह ने सात[१] आसमानों को ऊपर-तले?। १५।[२] और किया चांद को बीच उनके[३] प्रकाशक और किया सूर्य को दीपक। १६। मं० ७। सि० २९। सू० ७१। आ० १४।१५।१६॥

समीक्षक—यदि जीवों को ख़ुदा ने उत्पन्न किया है तो वे नित्य, अमर कभी नहीं रह सकते? फिर बहिश्त में सदा क्योंकर रह सकेंगे? जो उत्पन्न होता है, वह वस्तु अवश्य नष्ट हो जाता है। आसमान को [ख़ुदा] ऊपर-तले कैसे बना सकता है? क्योंकि वह निराकार और विभु पदार्थ है। यदि दूसरी चीज़ का नाम आकाश रखते हो, तो भी उसका आकाश नाम रखना व्यर्थ है। यदि ऊपर-तले आसमानों को बनाया है, तो उन सबके बीच में चाँद-सूर्य कभी नहीं रह सकते। जो बीच में रक्खा जाय, तो एक ऊपर और एक नीचे का पदार्थ प्रकाशित हो। दूसरे से लेकर सबमें अन्धकार रहना चाहिये। ऐसा नहीं दीखता, इसलिये यह बात सर्वथा मिथ्या है॥ १६० ॥

१६१. और यह कि मस्जिदें[४] वास्ते अल्लाह के हैं; बस, मत पुकारो साथ अल्लाह के किसी को। १८। मं० ७। सि० २९। सू० ७२। आ० १८॥

समीक्षक—यदि यह बात सत्य है तो मुसलमान लोग '**लाइलाह इल्लिलाः मुहम्मदर्रसूलल्लाः**[५] इस कलमे में ख़ुदा के साथ[६] मुहम्मद साहब को क्यों पुकारते हैं? **यह बात 'क़ुरान' से विरुद्ध है। और जो विरुद्ध नहीं करते, तो इस 'क़ुरान' की बात को झूठ करते हैं।** जब मस्जिदें[७] ख़ुदा के घर हैं, तो मुसलमान महाबुतपरस्त[८] हुए, क्योंकि जैसे पुराणी,[९] जैनी छोटी-सी मूर्त्ति को ईश्वर का घर मानने से बुतपरस्त[१०] ठहरते हैं, [वैसे][११] ये लोग क्यों नहीं?॥ १६१ ॥

१. **मुद्रणकालीन उचित संशोधन**—दोनों हस्त० और मूलसं० में ''**सात**'' पद त्रुटित है। कुरान में है। द्विप्र० में परिवर्धित है।

२. **वैदिक प्रतिछाया**—बाइबल और कुरान में वर्णित सात आसमान वैदिक तथा पौराणिक साहित्य में वर्णित सात लोकों का विस्मृत रूप प्रतीत होता है। पौराणिक भूगोल के अनुसार ब्रह्माण्ड में पृथिवी और इससे ऊपर सात लोक हैं। वे हैं—**भूः भुवः स्वः महः जनः तपः सत्य**। इनमें '**भूः**' पूथिवी लोक है—''**भूर्हि इयं** (पृथिवी)'' (शत०ब्रा० ७.४.२.७), ''**भूरिति पृथिवी नाम**'' (निघंटु १.१)। इन्हीं के आधार पर कुरान परम्परा में इन लोकों को सात आसमान कह दिया है।

३. **मुद्रणलिपिकर कृत अपपाठ**—मूलह० में शुद्ध पाठ है। प्रतिलिपि करते समय मुद्रणलिपिकर ने ''**उसके**'' पद अशुद्ध बना दिया। यही अशुद्ध द्विप्र० और स्वामी वेदानन्द जी के सं० में भी है। अन्य सभी में संशोधित है।

४,७. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त०, तीनों सं० में दोनों स्थलों पर ''**मसजिद**'' अपवर्तनी है। मूलह० में दूसरे स्थान पर शुद्ध वर्तनी है। ग्रन्थ में अन्यत्र ''**मस्जिद**'' शुद्ध है, पं० मीमांसक जी को छोड़ वेस, भद, उदयपुर सभी सं० में अशुद्ध वर्तनियां हैं।

५. **भ्रष्टपाठ और अपवर्तनी**—अरबी के उक्त वाक्य में द्विप्र०, द्वि०सं० में ''**महमद**'' अपवर्तनी है, मूलसं० में ''**मुहम्मद**'' शुद्ध है। दोनों हस्तलेखों में अत्यन्त भ्रष्ट पाठ है—''**लाहि लाहि इलिल्लाः महमद रसूल**''। द्विप्र० में भी भ्रष्ट है—''**लाइ लाहा इल्लिल्लाः महम्मदर्रसूलल्लाः**''। अन्य सभी सं० में संशोधित है। यह अयोग्य लिपिकरों की लीला है।

६. **अपपाठ मुद्रणकालीन**—दोनों हस्तलेखों में शुद्ध पाठ है किन्तु मुद्रणकाल में द्विप्र० में यह अपपाठ छपा है—''**खुदा के साथी महुम्मद साहेब**''। **स्वामी वेदानन्द सं०** और **उदयपुर सं०** में ''**साथी**'' अपपाठ है। अन्य सभी सं० में अब संशोधित है। इस्लाम में मुहम्मद साहब को खुदा का साथी नहीं माना गया है, केवल पैगम्बर है। निराकार का कोई साथी कैसे हो सकता है? ऊपर की आयत में भी '**साथ**' पद पढ़ा है, '**साथी**' नहीं कहा है।

८,१०. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त०, मूलसं०, द्वि०सं० में यहां अपवर्तनी है। मूलह० में दोनों स्थानों पर ''**बुतपरश्त**'' अपवर्तनी है। मुद्रणह० में पहले स्थान पर शुद्ध तथा द्वितीय स्थान पर अशुद्ध है। द्विप्र० में दोनों स्थलों पर शुद्ध वर्तनियां हैं किन्तु द्वि०सं०, स्वामी वेदानन्द सं०, पं० भगवद्दत्त सं०, पं० मीमांसक सं०, उदयपुर सं० में इनको फिर से अशुद्ध ''**बुत्परस्त**'' बना दिया गया है।

१६२. इकट्ठा किया जावेगा सूर्य और चाँद को। ९। मं० ७। सि० २९। सू० ७५। आ० ९॥

समीक्षक—भला, सूर्य-चाँद कभी इकट्ठे हो सकते हैं? देखिये, यह कितनी बेसमझी[1] की बात है। और सूर्य-चन्द्र के ही इकट्ठे करने में क्या प्रयोजन? तथा अन्य सब लोकों को इकट्ठे न करने में क्या युक्ति है? ऐसी-ऐसी असम्भव बातें परमेश्वरकृत कभी हो सकती हैं? विना अविद्वानों के अन्य किसी विद्वान् की भी नहीं होतीं॥ १६२॥

१६३. और फिरेंगे ऊपर उनके पास लड़के सदा [एक अवस्था में] रहनेवाले, जब देखेगा तू उनको, अनुमान करेगा तू उनको मोती बिखरे हुए जैसे। १९।....और पहनाये जावेंगे कंगन चांदी के, और पिलावेगा उनको रब उनका शराब तहूरा[2]। २१। मं० ७। सि० २९। सू० ७६। आ० १९। २१॥

समीक्षक—क्यों जी! मोती के वर्ण-से लड़के किसलिये वहां रक्खे जाते हैं? क्या जवान लोग सेवा [से] वा स्त्रीजन उनको तृप्त नहीं कर सकतीं? क्या आश्चर्य है कि जो यह महा-बुराकर्म लड़कों के साथ दुष्टजन करते हैं उसका मूल यही '**क़ुरान**' का वचन हो! और बहिश्त में स्वामी-सेवकभाव होने से स्वामी को आनन्द और सेवक को परिश्रम होने से स्वर्ग में दुःख तथा पक्षपात क्यों होता है? और जब ख़ुदा ही उनको मद्य पिलावेगा तो वह भी उनका सेवकवत् ठहरेगा, फिर ख़ुदा की बड़ाई क्योंकर रह सकेगी? और वहां बहिश्त में स्त्री-पुरुष का समागम और गर्भस्थिति और लड़के-बाले भी होते हैं वा नहीं? यदि नहीं होते तो उनका विषयसेवन करना व्यर्थ हुआ? और जो होते हैं तो वे जीव कहां से आये? और विना ख़ुदा की सेवा के बहिश्त में क्यों जन्मे? यदि जन्मे तो उनको[3] विना ईमान लाये और ख़ुदा की भक्ति किये विना बहिश्त[4] मुफ्त मिल गया। किन्हीं[5] को तो ईमान लाने और किन्हीं को विना धर्म के सुख मिल जाने से दूसरा बड़ा अन्याय कौन-सा होगा?॥ १६३॥

१६४. बदला दिये जावेंगे कर्मानुसार। २६। और प्याले हैं भरे हुए। ३४। जिस दिन खड़े होंगे रूह[6] और फ़रिश्ते सफ़ बांध कर....[7]। ३८। मं० ७। सि० ३०। सू० ७८। आ० २६। ३४। ३८॥

---

९. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त० और द्विप्र० में '**पुराणी**' के स्थान पर '**पुरानी**' अपवर्तनी है। यह लिपिकरों और शोधकों की मूर्खता की पहचान है। अन्य सभी सं० में इसको शुद्ध कर लिया गया है किन्तु आश्चर्य देखिए कि **स्वामी वेदानन्द जी, पं० मीमांसक जी** और कथित **दस विद्वानों द्वारा सम्पादित उदयपुर सं०** में अशुद्ध वर्तनी ही विद्यमान है। इससे भी महदाश्चर्य यह है कि इन तीनों ने अन्य स्थानों पर इसको शुद्ध कर लिया है। द्र० उदयपुर सं० पृ० ७ पर ''**पुराण**'' का '**पुरान**', पृ० ३७८, ३८०, ५७९ पर '**पुराणी**' का '**पुरानी**' आदि।

११. **त्रुटित आवश्यक पद**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**वैसे**'' पद त्रुटित है। '**जैसे**' के साथ '**वैसे**' वाक्यरचना में आवश्यक है।

१. **अपपाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**कितनी बेसमझ की बात है**'' विशेषणात्मक अपपाठ है। **बेसमझी**=नासमझी शुद्ध है। ''**कितनी**'' प्रयोग के साथ भाववाचक स्त्रीलिंग प्रयोग चाहिए।

२. **मुद्रणकालीन अप-अनुवाद**—**तहूरा**=शुद्ध, साफ़। द्विप्र०, द्वि०सं० में इसके स्थान पर ''**पवित्र**'' अशुद्ध अनुवाद है।

३-५. **अनावश्यक प्रयोग**—मूलह०, मूलप्रति सं० में क्रमश ''**उन बेचारों को**'' तथा ''**बहिश्त उनको**'' अनावश्यक प्रयोग हैं, क्योंकि बहिश्त में जाने वाले 'बेचारे' नहीं होते और ''**उनको**'' पहले आ चुका है, अत: पुनरुक्ति अनावश्यक है। द्विप्र०, द्वि०सं० में पहले स्थान से ''**बेचारे**'' पद हटा दिया किन्तु बाद के वाक्य ''**किन्हीं बेचारों को**'' में अनावश्यक रूप से जोड़ दिया क्योंकि सुख पानेवाले '**बेचारे**' नहीं होते। यही अनावश्यक प्रयोग उदयपुर सं० में है।

६. **रूह**=जीवन, सूक्ष्म शरीर, प्राण। वैसे '**रूह**' का सही अर्थ आत्मा होता है। '**रूह**' एक फ़रिश्ते का भी नाम है जिसको '**पवित्रात्मा**' '**जिबरील**' या '**जिबरईल**' भी कहते हैं। इसका उल्लेख आगे आयतखण्ड संख्या १७२ की समीक्षा में भी द्रष्टव्य है।

७. **सफ़ बांध कर**=पंक्ति बांधकर। द्रष्टव्य आयतखण्ड संख्या १६९ भी।

समीक्षक—यदि कर्मानुसार फल दिया जाता है[१] तो सदा बहिश्त में रहनेवाली हूरों, फ़रिश्तों और मोती के सदृश लड़कों को कौन कर्म के अनुसार सदा के लिये बहिश्त मिला?[२] जब प्याले भर-भर शराब पीयेंगे तो मस्त होकर क्यों न लड़ेंगे? और रूह निराकार होने से वहां खड़ी क्योंकर हो सकेगी? और ख़ुदा उस समय खड़ा होगा वा बैठा?[३]

'रूह' नाम यहां एक फ़रिश्ते का है, जो सब फ़रिश्तों से बड़ा है। क्या ख़ुदा रूह तथा अन्य फ़रिश्तों को पंक्तिबद्ध खड़ा करके पलटन बांधेगा? क्या पलटन से सब जीवों को सजा दिलावेगा? और खुदा उस समय खड़ा होगा वा बैठा? यदि क़यामत तक ख़ुदा अपनी सब पलटन एकत्र करके शैतान को पकड़ ले तो उसका राज्य निष्कण्टक हो जाय। इसका नाम खुदाई है[४]॥ १६४॥

१६५. जबकि सूर्य लपेटा जावे। १। और जबकि तारे गदले हो जावें। २। और जबकि[५] पहाड़ चलाये जावें। ३। और जब आसमान की खाल उतारी जावे। ११।

मं० ७। सि० ३०। सू० ८१। आ० १। २। ३। ११॥[६]

समीक्षक—यह बड़ी बेसमझी[७] की बात है कि गोल सूर्यलोक कैसे लपेटा जावेगा? और तारे गदले क्योंकर हो सकेंगे? और पहाड़ जड़ होने से चलेंगे कैसे? और आकाश को क्या पशु समझा कि उसकी खाल निकाली जावेगी? यह बड़ी ही मूर्खता[८] और जंगलीपन की बात है॥ १६५॥

१६६. और जबकि आसमान फट जावे। १। और जब तारे उड़[९] जावें। २। और जब दरिया चीरे जावें। ३। और जब क़ब्रें[१०] जिलाकर उठाई जावें। ४।

मं० ७। सि० ३०। सू० ८२। आ० १। २।३। ४॥

---

१. **मुद्रणलिपिकर द्वारा त्रुटित क्रिया**—मुद्रणह० में लिपिकर ने "**है**" क्रिया को त्रुटित छोड़ दिया है। द्विप्र० में भी त्रुटित है।

२. **अपपाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में यह अपवाक्य है—"**बहिश्त में रहने वाले हूरें, फ़रिश्ते और मोती के सदृश लड़कों को कौन.... बहिश्त मिला।**" सभी नामों में द्वितीया बहुवचन व्याकरण की दृष्टि से आवश्यक है।

३. **मुद्रणकाल में पाठ-निष्कासन अनुचित**—मुद्रणह० में "**और रूह....वा बैठा**' पाठ को काटकर इसके स्थान पर नयी समीक्षा बगल में मुंशी समर्थदान जी ने लिखी है। वही द्वि० सं० में प्रकाशित हो रही है। जो नयी समीक्षा लिखी गई है वह '**रूह**'='**पवित्रात्मा अथवा जिबरईल**' अर्थ पर आधारित है। ऋषि की समीक्षा को हटाना उचित इस कारण नहीं था क्योंकि पवित्रात्मा भी एक '**रूह**'=सूक्ष्म आत्मा पैगम्बर के रूप में मान्य है, (देखिए, आयतखण्ड १७२), अत: महर्षिप्रोक्त मूल समीक्षा सही है।

४. **मुंशी जी द्वारा पाठ-परिवर्धन और पाठ-ग्रहण**—द्विप्र० में प्रकाशित "**रूह नाम यहां .... नाम खुदाई है**" यह समीक्षान्तर्गत अनुच्छेद परिवर्धित है। इसको मुंशी जी ने अपने लेख में लिखकर जोड़ा है। भिन्नार्थ पर आधारित होने से यह ग्राह्य है, हालांकि इसकी भाषा और प्रभावशालिता बहुत ही सामान्य और शिथिल है।

५. **मुद्रणलिपिकर की घोर असावधानी**—मूलहस्त० से मुद्रणप्रति बनाते समय मुद्रणलिपिकर उसके दो पन्ने एक साथ पलट गया जिससे इस शब्द के बाद १७२ आयत लिख गया। ग्यारह पंक्तियों लिखने के बाद उसको गलती का आभास हुआ, तब उस लिखे पाठ को काटा और ठीक पाठ लिखा। प्रतिलिपि-कर्त्ता ने इस प्रकार अनेक त्रुटियां की हैं।

६. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—भद में १-४ अशुद्ध संख्या है, ११ त्रुटित है।

७. **अपवाक्य**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में "**बड़ी बेसमझ की बात है**" अपवाक्य है, यहां '**बेसमझी**' वांछित है।

८. **मुद्रणकाल में अनावश्यक परिवर्तन**—मुद्रणकाल में मुंशी जी ने दोनों हस्त० में प्राप्त "**मूर्खता**" पद के स्थान पर "**बेसमझ**" पाठ बना दिया है जो अनावश्यक तथा शिथिल है। यह समीक्षा के प्रथम वाक्य में प्रयुक्त हो चुका है, अत: पुनरुक्ति है।

९. **मुद्रणकालीन अपपाठ**—द्विप्र० में आयत में और समीक्षा में '**उड़**' क्रिया के स्थान पर "**झड़**" अशुद्ध क्रिया परिवर्तित की है। '**उड़ना**' का भाव है—'बिखर जाना, ऊपर-नीचे अस्त-व्यस्त हो जाना।' '**झड़ना**' का भाव है—'केवल नीचे गिरना'।

१०. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में आयत में और समीक्षा में '**क़बरें**' अपवर्तनी है।

समीक्षक—वाह जी '**क़ुरान**' के बनानेवाले '**फ़िलासफ़र**'! आकाश को क्योंकर फाड़ सकेगा? और तारों को कैसे उड़ा सकेगा? और दरिया[१] क्या लकड़ी है जो चीर डालेगा? और क़ब्रें[२] क्या मुर्दे[३] हैं जो जिला सकेगा? ये सब बातें लड़कों[४] के सदृश हैं॥ १६६ ॥

१६७. क़सम है आसमान बुर्जों वाले की। १। किन्तु वह 'क़ुरान' है बड़ा[५]। २१। बीच महफ़ूज़ लौह रक्षा के। २२। मं० ७। सि० ३०। सू० ८५। आ० १।२१।२२॥[६]

समीक्षक—इस '**क़ुरान**' के बनानेवाले ने भूगोल-खगोल भी नहीं पढ़ा था, नहीं तो आकाश को क़िले के समान बुर्जों-वाला क्यों कहता? यदि मेषादि राशियों को बुर्ज कहता है, तो अन्य बुर्ज क्यों नहीं? इसलिये यह बुर्ज नहीं हैं, किन्तु सब तारे लोक हैं। क्या वह '**क़ुरान**' ख़ुदा के पास है? यदि वह[७] '**क़ुरान**' उसका किया है, तो वह भी इससे अधिक विद्या और युक्ति से विरुद्ध होकर अविद्या से भरा होगा॥ १६७ ॥

१६८. निश्चय, वे मकर करते हैं एक मकर। १५। और मैं भी मकर करता हूं एक मकर। १६।[८] मं० ७। सि० ३०। सू० ८६। आ० १५।१६॥

समीक्षक—मकर कहते हैं ठगपन को। क्या ख़ुदा भी ठग है? और क्या चोरी का जवाब चोरी और झूठ का जवाब झूठ है? क्या कोई चोर भले आदमी के घर में चोरी करे, तो क्या भले आदमी को चाहिये कि उसके घर में जाके चोरी करे?[९] ॥ १६८ ॥

१६९. और जब आवेगा मालिक तेरा और फ़रिश्ते पंक्ति बांध के। २२। और लाया जावेगा उस दिन दोज़ख़ को....। २३।[१०] मं० ७। सि० ३०। सू० ८९। आ० २२।२३॥[११]

समीक्षक—कहो जी! जैसे कोटपाल[१२] वा सेनाध्यक्ष अपनी सेना को लेकर पंक्ति बांध फिरा करे वैसा ही इनका ख़ुदा है। क्या दोज़ख़ घड़ा-सा है कि जिसको उठाके जहाँ चाहे वहाँ ले जावें? यदि इतना

१-३. **मुद्रणकाल में अपवर्तनी**—द्विप्र० और बहुत-से सं० में ''**दर्या**'' ''**कबरें**'' ''**मुरदे**'' अपवर्तनियां हैं। दोनों हस्त० में ''**मुर्दे**'' शुद्ध वर्तनी है। इसको मुद्रणकाल में ''**मुरदे**'' रूप बिगाड़ा है।

४. **मुद्रणकाल में उचित संशोधन**—मूलह०, मुद्रणह०, मूलप्रति सं० में ''**ये सब बातें लड़के के सदृश हैं**'' अपपाठ है। द्विप्र०, द्वि०सं० में संशोधित है।

५. **कुरान बड़ा**—बड़ा का अर्थ है उच्च महिमा या गौरववाला। पाठक ध्यान दें, अरबी में '**कुरान**' शब्द का प्रयोग पुंल्लिंग में है। इसी के अनुसार महर्षि ने भी पुंल्लिग का प्रयोग किया है।

६. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, उदयपुर सं० में यहां २२ संख्या त्रुटित है। ये तीन आयतें हैं।

७. **वह कुरान**—'**कुरान**' में '**वह**' सर्वनाम का प्रयोग किया है। महर्षि ने इस पर प्रश्न उठाया है कि क्या इससे कोई दूसरा भी '**कुरान**' है जो '**यह**' न कहकर '**वह**' सर्वनाम का प्रयोग कुरान की भाषा में किया है? यदि कोई दूसरा होगा तो वह भी अविद्या से भरा होगा, जैसा यह प्रकट '**कुरान**' है।

८. **'मकर' का शुद्ध रूप**—अरबी में '**मक्र**' शुद्ध है। इसका विशेषण मक्कार है। इसी का अपभ्रंश 'मकर' है।

९. **मुद्रणकाल में अनावश्यक पाठपरिवर्धन**—द्विप्र० में यहां यह वाक्य बढ़ाया है—''**वाह! वाह जी!! कुरान के बनानेवाले।**'' दोनों हस्त० में यह वाक्य नहीं है। इसको मुंशी जी ने बढ़ाया है। यह सभी द्वि०सं० में ग्रहण किया हुआ है।

१०. **पुनरुक्ति अन्तिम निर्णय की**—द्रष्टव्य आयतखण्ड संख्या १६४। **सफ़**=पंक्ति बांधकर फ़रिश्ते अन्तिम दिन खड़े होते हैं।

११. **अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मुद्रणह०, द्विप्र०, भद तथा उदयपुर सं० में २१ आयतसंख्या अशुद्ध है, २३ त्रुटित है।

१२. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**कोटवाल**'' वर्तनी है। यह संस्कृत में '**कोटपाल**' या हिन्दी में '**कोतवाल**' प्रचलित है।

छोटा है तो असंख्य क़ैदी उसमें कैसे समा सकेंगे?॥ १६९ ॥

१७०. बस, कहा था वास्ते उनके पैग़म्बर ख़ुदा के ने, रक्षा करो ऊंटनी ख़ुदा की को, और पानी पिलाना उसके को। १३। बस झुठलाया उसको, बस पांव काटे उसके, बस मरी डाली[१] ऊपर उनके, रब उनके ने। १४। मं० ७। सि० ३०। सू० ९१। आ० १३। १४॥

समीक्षक—क्या ख़ुदा भी ऊंटनी पर चढ़के सैल[२] किया करता है? नहीं तो किसलिये रक्खी? और विना क़यामत के अपना नियम तोड़ उन पर मरी क्यों डाली? यदि डाली तो उनको दण्ड किया। फिर क़यामत की रात में न्याय और उस रात का होना झूठ समझा जायगा? इस ऊंटनी के लेख से यह अनुमान होता है कि अरब देश में ऊंट-ऊंटनी के सिवाय दूसरी कोई सवारी नहीं होती हैं। इसीलिये किसी अरब देशी ने '**क़ुरान**' बनाया है॥ १७० ॥

१७१. यों जो न रुकेगा, अवश्य घसीटेंगे उसको साथ बालों माथे के। १५। वह माथा, कि झूठा है और अपराधी। १६। हम बुलावेंगे फ़रिश्ते [जो उन्हें ले जायेंगे][३] दोज़ख़ के। १८।

मं० ७। सि० ३०। सू० ९६। आ० १५। १६। १८॥[४]

समीक्षक—चपरासियों के इस नीच काम '**घसीटने से**' भी ख़ुदा न बचा।[५] भला, माथा भी कभी झूठा और अपराधी हो सकता है सिवाय जीव के? भला, यह भी कभी ख़ुदा हो सकता है कि जैसे जेलखाने के दारोग़ा को जिले का हाक़िम[६] बुलावा भेजे॥ १७१ ॥

१७२. निश्चय, उतारा हमने क़ुरान को बीच रात क़द्र[७] के। १। और क्या जाने तू क्या है रात

---

१. **अपपाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में समीक्षा में ''**मरी रोग डालना**'' अपप्रयोग मिलता है जबकि आयत में '**मरी डाली**' शुद्ध प्रयोग है। '**मरी**' कोई रोग नहीं होता। कुरान में ''**मरी डालना**'' एक मुहावरा है, जिसका अर्थ है—''**तबाही या विनाश करना।**'' हज० मुहम्मद ने उक्त विनाश आक्रमण करके किया था। '**समूद**' समुदाय के एक व्यक्ति ने पैगम्बर मुहम्मद की ऊंटनी को मार दिया था। यद्यपि ऊंटनी का क़त्ल एक व्यक्ति ने किया था किन्तु मुहम्मद साहब ने पूरी जाति के विनाश से उसका बदला लिया (द्रष्टव्य आयतखण्ड संख्या ११२, १२७ भी)। उदयपुर आदि सभी सं० में यह अपपाठ है।

२. ''**सैल**'' **प्रयोग**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में यहां ''**सैल**'' प्रयोग मिलता है। अरबी में मूलतः '**सैर**' पद है, उसका समान्तर ''**सैल**'' भी प्रचलित है। इसी से '**सैलानी**'=पर्यटक पद बनता है।

३. **त्रुटित पद**—मूलह०, मुद्रणह०, मूलप्रति सं०, द्विप्र० में यहां '**उसको**' पद त्रुटित है। ''**उसको साथ बालों माथे के**'' शुद्ध है। द्वि०सं० में है। इसी प्रकार दोनों हस्त० और तीनों सं० में अनुवाद में कोष्ठकान्तर्गत पाठ त्रुटित है जो स्पष्टार्थ के लिए आवश्यक है। इस परिवर्धित पाठ के बिना विपरीत अर्थ प्रकट होता है कि दोज़ख़ के भी फरिश्ते होते हैं।

४. **त्रुटित आयतसंख्या**—मूलह०, मुद्रणह० में तीन आयतसंख्याएं त्रुटित हैं। मुद्रणकाल में द्विप्र० में अंकित की है।

५. **स्थानभ्रष्ट अपपाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**नीच**'' पद अस्थान में है। यह ''**काम**'' का विशेषण है, ''**चपरासियों**'' से पहले प्रयुक्त होने से अन्यथा अर्थ प्रकट होता है कि चपरासी नीच हैं, जबकि ग्रन्थकार घसीटने के काम को नीच कह रहा है।

६. **मुद्रणलिपिकर के प्रमाद से त्रुटित पाठ**—मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में ''**जिले का हाक़िम**'' पाठ त्रुटित है। इस पाठ के बिना समीक्षा का दृष्टान्त चरितार्थ नहीं होता क्योंकि कर्त्ता का नाम ही नहीं है। यह त्रुटि मुद्रणहस्तलेख में मुद्रणप्रति-लिपिकर के प्रमाद से हुई है। वेस, भद, युमी आदि सभी सं० में यह पाठ त्रुटित मिलता है। उदयपुर सं० के सामने त्रुटित और पूर्ण पाठ के दोनों विकल्प विद्यमान थे किन्तु कथित दश सम्पादकों ने गम्भीर विचार न करके त्रुटित पाठ को ही ग्रहण किया है। यहां महर्षिप्रोक्त मूलह० का पाठ ही पूर्ण होने से ग्राह्य है।

७-८. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में दोनों स्थानों पर ''**क़दर**'' अपवर्तनी है। '**क़द्र वाली रात**' अर्थात् पवित्र रात्रि। यह वह रात है जिसमें पहले-पहले '**कुरान**' मुहम्मद साहब के हृदय में प्रकट हुआ। वैसे कुरान २३ वर्ष तक उतरता रहा, तब जाकर पूर्ण हुआ था। इतिहासकारों के अनुसार हज० मुहम्मद के देहान्त के बाद '**क़ुरान**' का प्रामाणिक पाठनिर्धारण, संशोधन और

क़द्र[६] की ?। २। उतरते हैं फ़रिश्ते और पवित्रात्मा बीच उसके, साथ आज्ञा मालिक अपने की, वास्ते हर काम के। ४।[१] मं० ७। सि० ३०। सू० ९७। आ० १। २। ४॥

समीक्षक—यदि एक ही रात में '**क़ुरान**' उतारा, तो वह आयत अर्थात् [अमुक आयत] उस समय में उतरी और [उसको] धीरे-धीरे उतारा, यह बात सत्य क्योंकर हो सकेगी? और रात्रि अन्धेरी है, इसमें क्या पूछना है? वहाँ लिख आये हैं ऊपर-नीचे कुछ भी नहीं हो सकता और यहां लिखते हैं कि फ़रिश्ते और '**पवित्रात्मा**' ख़ुदा के हुक्म से संसार का प्रबंध करने के लिये आते हैं। इससे स्पष्ट हुआ कि ख़ुदा मनुष्यवत् एकदेशी है। **अब तक देखा था कि खुदा, फ़रिश्ते और पैग़म्बर तीन की कथा है। अब एक 'पवित्रात्मा' चौथा निकल पड़ा! अब न जाने यह चौथा 'पवित्रात्मा' क्या है?** यह तो ईसाइयों के मत अर्थात् पिता, पुत्र और '**पवित्रात्मा**' तीन के मानने से चौथा भी बढ़ गया। यदि कहो[२] कि हम इन तीनों को ख़ुदा नहीं मानते, ऐसा भी हो, परन्तु जब '**पवित्रात्मा**' पृथक् है, तो ख़ुदा, फ़रिश्ते और पैग़म्बर को '**पवित्रात्मा**' कहना चाहिये वा नहीं? यदि '**पवित्रात्मा**' है, तो एक का ही नाम '**पवित्रात्मा**' क्यों? और घोड़े आदि जानवरों, रात-दिन और '**क़ुरान**' आदि की ख़ुदा क़समें खाता है। **क़समें खाना भले लोगों का काम नहीं**॥ १७२॥

अब इस[३] '**क़ुरान**' के विषय को लिखके बुद्धिमानों के सम्मुख स्थापित करता हूं कि यह पुस्तक कैसा है? मुझसे पूछो तो यह किताब न ईश्वर की, न विद्वान् की बनाई और न विद्या की हो सकती है। यह तो बहुत थोड़ा-सा दोष प्रकट किया, इसलिये कि लोग धोखे[४] में पड़कर अपना जन्म व्यर्थ न गमावें। **जो कुछ थोड़ा-सा इसमें सत्य है, वह वेदादि विद्या-पुस्तकों के अनुकूल होने से जैसे मुझको ग्राह्य है, वैसे अन्य भी मज़हब के हठ और पक्षपातरहित विद्वानों और बुद्धिमानों को ग्राह्य है। इसके विना जो कुछ इसमें है, वह सब अविद्या, भ्रमजाल[५] और मनुष्य के आत्मा को पशुवत् बनाकर, शान्तिभंग कराके, उपद्रव मचा, मनुष्यों में विद्रोह फैला, परस्पर दुःखोन्नति करनेवाला विषय है।**

सम्पादन हुआ था। कुछ मुस्लिम विद्वान् इस तथ्य को अस्वीकार भी करने लगे हैं। विस्तृत टिप्पणी देखिए पृ० ९३९ पर।

१. **फरिश्तों के द्वारा संसार का प्रबन्ध**—इस्लामी धारणा के अनुसार खुदा सृष्टि को बनाकर फरिश्तों से उसके प्रबन्ध कराता है। उनमें कुछ प्रमुख फरिश्तों के कार्य इस प्रकार हैं—(**१**) **जिबरईल**—अल्लाह की आज्ञाएँ पैगम्बरों तक पहुँचाने का कार्य करता है। उनको प्रत्येक सहायता देता है। खुदा की आज्ञा भंग करनेवालों को कष्ट देता है। (**२**) **मीकाईल**—वर्षा कराना, नदी-नालों, समुद्रों की व्यवस्था करना और सभी प्राणियों को भोजन, जीविका उपलब्ध कराना आदि इसके काम हैं। (**३**) **इसराकील**—प्रलय से पूर्व रणसिंगा फूंकेगा जिसकी ध्वनि से प्रत्येक वस्तु नष्ट हो जाएगी। दूसरी बार रणसिंगा फूंकने पर पुनः सभी वस्तुएं यथावत् बन जायेंगी। तीसरी बार फूंकने पर सभी मुर्दे जीवित होकर कब्रों से बाहर आ जायेंगे। (**४**) **इज़राइल**—इसका काम जीवधारियों का प्राणहरण करना है। (**५-६**) **करामन और कातवीन**—मनुष्यों के साथ रहकर पहला उनके अच्छे कामों का और दूसरा बुरे कामों का विवरण लिखता है। (**७-८**) **मुनकिर और नकीर**—मृतक को क़ब्र में दफ़नाने के बाद ये मुर्दे से कुछ प्रश्न पूछते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य फरिश्ते भी हैं जिनमें से कुछ स्वर्ग का काम, कुछ नरक का, कुछ जासूसी का, कुछ ख़ुदा का तख्त उठाने का, कुछ पूजा-उपासना का काम करते हैं (द्रष्टव्य, तालीमुल इस्लाम, भाग ३, पृष्ठ ६-८)।

२. **अपप्रयोग**—मूलह०, मुद्रणह०, मूलप्रति सं० में ''**कहे**'' अपप्रयोग है। द्विप्र०, द्वि०सं० में शुद्ध किया हुआ है।

३. **अपप्रयोग**—मूलह०, मुद्रणह०, मूलप्रति सं० में यहां ''**यह**'' अपप्रयोग है। मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में संशोधित है।

४. **उचित संशोधन**—मूलह०, मूलप्रति सं० में ''**धोखा में पड़कर**'' अपपाठ है। द्विप्र०, द्वि०सं० में शुद्ध कर दिया है।

५. **मुद्रणलिपिकर के प्रमाद से अपप्रयोग**—मूलह० के शुद्ध पाठ को मुद्रणलिपिकर ने प्रमादवश ''**अविद्या भ्रम जान**'' लिखा है। द्विप्र० में ''**अविद्याभ्रम जान**'' और अधिक अशुद्ध छपा है। अन्य सभी सं० में संशोधित है।

और **पुनरुक्त दोषों**[१] **का तो 'क़ुरान' जानो भंडार ही है।**[२]

परमात्मा सब मनुष्यों पर कृपा करे कि सब सबसे प्रीति, परस्पर मेल और एक दूसरे के सुख की उन्नति करने में प्रवृत्त हों। जैसे मैं अपना वा दूसरे मतमतान्तरों के दोष पक्षपातरहित होकर प्रकाशित करता हूं, इसी प्रकार यदि सब विद्वान् लोग करें, तो क्या कठिनता है कि परस्पर का विरोध छूट, मेल होकर आनन्द में एकमत होके, सत्य की प्राप्ति सिद्ध न हो ?

यह थोड़ा '**क़ुरान**' के विषय में लिखा, इससे[३] बुद्धिमान् धार्मिक लोग ग्रन्थकार के अभिप्राय को समझ लाभ लेवें।

यदि कहीं भ्रम से अन्यथा लिखा गया हो तो उसको शुद्ध कर लेवें।[४]

[५]अब एक बात यह शेष है कि बहुत से मुसलमान ऐसा कहा करते और लिखा वा छपवाया करते हैं कि "**हमारे मज़हब की बात 'अथर्ववेद' में लिखी हैं।**" इसका यह उत्तर है कि 'अथर्ववेद' में इस बात का नाम-निशान भी नहीं है।

प्रश्न—क्या तुमने सब 'अथर्ववेद' देखा है? यदि देखा है[६] तो '**अल्लोपनिषद्**' देखो। यह साक्षात् उसमें लिखी है। क्यों कहते हो कि '**अथर्ववेद**' में मुसलमानों का नाम-निशान भी नहीं है?

---

१. **अपप्रयोग**—दोनों हस्त०, तीनों सं० में "**दोष**" एकवचनात्मक अपप्रयोग है। "**भंडार**" के सम्बन्ध से बहुवचन चाहिए।

२. **क़ुरान पुनरुक्त दोषों का भण्डार**—कुरान की आयतों का विश्लेषण करने पर यह तथ्य सामने आता है कि इसमें सैकड़ों पुनरुक्तियां हैं। महर्षि ने चौदहवें समुल्लास में जो आयतें उद्धृत की हैं उनमें भी इसके कई प्रमाण दिये हैं। जैसे—

(क) **बहिश्त में बीबियां मिलने का लालच और अन्य ठाठ-बाट**—आयतखण्ड संख्या ९, ५०, ६०, ६२, ९३, ११३, १४१, १४२, १४८, १४९, १५०, १५६, १६३ आदि।

(ख) **क़ाफिरों या गैर मुस्लिमों से लड़ाई करना और उनका खून बहाना**—आयतखण्ड संख्या ३८, ५६, ५९, ६३, ६५, ७३, ८१, ८६, ८८, ८९, ९०, ९४, ९५, ९६, ९९, ११९, १४८, १४९, १५७, १७०, १७१ आदि।

(ग) **अल्लाह के मार्ग में मरने वाले जीवित रहते हैं**—३२, ३८, ५६, ६३ आदि।

(घ) **अल्लाह की ऊंटनी का वर्णन**—१००, ११२, १२७, १७० आदि।

(ङ) **मुसलमानों पर हराम खाद्य वस्तुएं**—३६, ७० आदि।

(च) **अल्लाह को ऋण और उधार देने का कथन**—४२, ७१, १५५ आदि।

(छ) **छह दिन में सृष्टि उत्पन्न करके आराम करना**—७८, ९७, १५१ आदि।

(ज) "**हो जा**" **कहते ही सृष्टि का हो जाना**—२८, ५४, १०८, १४० आदि

'**पुनरुक्ति**' एक दोष है जो यह सिद्ध करता है कि इस दोष से युक्त पुस्तक ईश्वरकृत या ईश्वर-प्रेरित नहीं हो सकती।

३. **अपप्रयोग**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में '**इसको**' अपप्रयोग है। यही उदयपुर सं० में है।

४. **ऋषिलेख और सत्यार्थप्रकाश की सम्पन्नता**—ऋषि ने मूलहस्तलेख में यहां तक लिखकर सत्यार्थप्रकाश की पूर्णता कर दी थी। इसके बाद स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश संक्षेप से लिखने का संकेत है और फिर चतुर्दश समुल्लास का समाप्तिबोधक उपसंहार वाक्य है। 'अल्लोपनिषद्' की समीक्षा '**भारतमित्र**' समाचार मित्र में '**अल्लोपनिषद्**' छपने के बाद लिखी है।

५. **अल्लोपनिषद् का परिवर्धन**—मूलहस्तलेख में चौदहवां समुल्लास पूर्ण होने का संकेतक वाक्य ऊपर लिखा हुआ है। उसके बाद अल्लोपनिषद् तथा उससे सम्बन्धित समीक्षा "**अब एक बात......वैदिक मत को ग्रहण करो**" है। संस्कृत-भाग लिखने के लिए उसमें एक पृष्ठ पर खाली जगह छोड़ी हुई है। उस पाठ को मुद्रणप्रति में लिखकर जोड़ा गया है। यह ज्ञात होता है कि यह अंश '**भारतमित्र**' नामक समाचार पत्र, जो कलकत्ता से छपता था, उसके गुरुवार श्रावणसुदि ६, संवत् १९४० (९ अगस्त सन् १८८३) के अंक में '**अल्लोपनिषद्**' के संस्कृत पाठ के साथ '**मुसलमानों के मज़हब का मूल अथर्ववेद में है**' शीर्षक लेख छपने के बाद उस भ्रान्ति के निवारण के लिए प्रकाशन के समय लिखकर जोड़ा है। इस लेख के प्रत्युत्तर में महर्षि ने एक लेख उस समाचार पत्र को भी भेजा था। वह पत्र 'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन' संस्करण दो, पृ० ४४७, ४४८ पर छपा

अथ-'अल्लोपनिषदं' व्याख्यास्यामः

अस्माल्लां इल्ले मित्रावरुणा दिव्यानि धत्ते।

इल्लल्ले वरुणो राजा पुनर्द्दुः।

हया मित्रो इल्लां इल्लल्ले इल्लां वरुणो मित्रस्तेजस्कामः ॥ १ ॥

होतारमिन्द्रो होतारमिन्द्र महासुरिन्द्राः।

अल्लो ज्येष्ठं श्रेष्ठं परमं पूर्णं ब्रह्माणं अल्लाम्॥ २ ॥

अल्लोरसूलमहामदरकबरस्य[1] अल्लो अल्लाम्॥ ३ ॥

आदल्लाबूकमेककम्॥ अल्लाबूक निखातकम्॥ ४ ॥

अल्लो यज्ञेन हुतहुत्वा। अल्ला सूर्य्यचन्द्रसर्वनक्षत्राः ॥ ५ ॥

अल्ला ऋषीणां सर्वदिव्यां इन्द्राय पूर्वं माया परममन्तरिक्षाः ॥ ६ ॥

अल्लः पृथिव्या अन्तरिक्षं विश्वरूपम्॥ ७ ॥

इल्लां कबर इल्लां कबर इल्लां इल्लल्लेति इल्लल्लाः ॥ ८ ॥

ओम् अल्लाइल्लल्ला अनादिस्वरूपाय अथर्वणाश्यामा हुं ह्रीं जनान् पशून् सिद्धान् जलचरान् अदृष्टं कुरु कुरु फट्॥ ९ ॥

असुरसंहारिणी हुं ह्रीं अल्लोरसूलमहामदरकबरस्य[2] अल्लो अल्लाम् इल्लल्लेति इल्लल्लाः ॥ १० ॥

इति-'अल्लोपनिषत्' समाप्ता॥

जो इसमें प्रत्यक्ष मुहम्मद साहब [को] रसूल लिखा है इससे सिद्ध होता है कि मुसलमानों का मत वेदमूलक है।

उत्तर—यदि तुमने '**अथर्ववेद**' न देखा हो, तो हमारे पास आओ, आदि से पूर्त्ति तक देखो। अथवा जिस किसी अथर्ववेदी के पास बीस काण्डयुक्त मन्त्रसंहिता '**अथर्ववेद**' को देख लो। कहीं तुम्हारे पैग़म्बर साहब का नाम वा मत का निशान भी न देखोगे। और जो यह '**अल्लोपनिषद्**' है वह न '**अथर्ववेद**' में, न उसके '**गोपथ ब्राह्मण**' में है वा किसी शाखा में है। यह तो अकबर शाह के समय में, अनुमान है कि किसी [मुसलमान][3] ने बनाई है। इसका बनानेवाला कुछ अरबी[4] और कुछ संस्कृत भी पढ़ा हुआ दीखता है, क्योंकि इसमें अरबी[5] और संस्कृत के पद लिखे हुये दीखते हैं। देखो,

---

है। मूलहस्त० से प्रतिलिपि करके इस पाठ को फिर क्रमबद्ध रूप से लिखा गया है।

६. **उचित संशोधन**—मूलह०, मूलप्रति सं० में "**देखा होता तो**" अपपाठ है। मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में संशोधित है।

१,२. **अव्यवस्थित वर्तनी**—एक ही प्रसंग और एक ही स्थान पर तीनों सं० में दो वर्तनियां हैं—महामद और महमद। फिर से देखिए लिपिकर और सम्पादक का प्रमाद! यहां 'महामद' संस्कृत रूप ठीक है। सभी सं० में यह अव्यवस्था है।

त्रुटित आवश्यक पाठ—"**किसी**" विशेषण के आगे विशेष्य पद अपेक्षित है। वह छूट गया है। ऊपर बृ० कोष्ठक में है।

४-७. **अपवर्तनी और घोर प्रमाद**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में इस अनुच्छेद में चार बार '**अरबी**' नाम प्रयुक्त हुआ है। लिपिकर की लीला और आदि-सम्पादक की असावधानी देखिए कि एक ही वाक्य में एक शब्द की दो वर्तनियां लिखी हैं—"**अर्बी**" और "**अरबी**"। लिपिकर ने जो किया, वह तो किया, आर्यसम्पादकों ने क्या किया? भद और कथित दश सम्पादकों द्वारा सम्पादित उदयपुर सं० में यही हास्यास्पद स्थिति है। इस प्रकार ग्रन्थ की भाषा का स्तर गिरता है। यहां '**अरबी**' वर्तनी ग्राह्य है।

''**अस्माल्लां इल्ले मित्रावरुणा दिव्यानि धत्ते**'' इत्यादि में जो कि दश अङ्क में लिखा है, जैसे—इसमें ''**अस्माल्लां**'' और ''**इल्ले**'' अरबी[६] और ''**मित्रावरुणा दिव्यानि धत्ते**'' ये संस्कृत-पद लिखे हैं, वैसे ही सर्वत्र देखने में आने से किसी संस्कृत, अरबी[७] के पढ़े हुए ने बनाई है। यदि इसका अर्थ देखा जाता है तो भी यह कृत्रिम, अयुक्त, वेद और व्याकरण-रीति से विरुद्ध सिद्ध होती है। जैसे यह उपनिषद् बनाई है, वैसे बहुत-सी उपनिषदें मतमतान्तरवाले पक्षपातियों ने बना ली हैं। जैसे[१] 'स्वरूपोपनिषद्',[२] 'नृसिंहतापनी', 'रामतापनी', 'गोपालतापनी' बहुत-सी बना ली हैं।

प्रश्न—आज तक किसी ने ऐसा नहीं कहा, अब तुम कहते हो, हम तुम्हारी बात सच कैसे मानें?

उत्तर—तुम्हारे मानने वा न मानने से हमारी बात झूठ नहीं हो सकती। हां, जिस प्रकार से मैंने इसको अयुक्त ठहराया है,[३] उसी प्रकार से जब तुम '**अथर्ववेद**', '**गोपथ**' वा इसकी शाखाओं के प्राचीन लिखित **पुस्तकों में जैसा का तैसा लेख दिखलाओ, और अर्थसंगति से भी शुद्ध करो, तब तो [तुम्हारा लेख]**[४] **सप्रमाण हो सकता है।**

प्रश्न—देखो, हमारा मत कैसा अच्छा है कि जिसमें सब प्रकार का सुख और अन्त में मुक्ति होती है।

उत्तर—ऐसे ही अपने-अपने मत-वाले सब कहते हैं कि हमारा ही मत अच्छा है, बाक़ी सब बुरे। विना हमारे मत के दूसरे मत से मुक्ति नहीं हो सकती। अब हम तुम्हारी बात को सच्ची मानें वा उनकी? **हम तो यही मानते हैं कि सत्यभाषण, अहिंसा, दया आदि शुभगुण सब मतों में अच्छे हैं और बाक़ी वाद-विवाद, ईर्ष्या-द्वेष, मिथ्याभाषणादि कर्म सब मतों में बुरे हैं। यदि तुमको सत्य मत-ग्रहण की इच्छा हो, तो वैदिक मत को ग्रहण करो।**

इसके आगे '**स्वमन्तव्यामन्तव्य का प्रकाश**' संक्षेप से लिखा जायगा।[५]

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे
सुभाषाविभूषिते यवनमतविषये
चतुर्दशःसमुल्लासः सम्पूर्णः ॥ १४ ॥[६]

---

१. **अपप्रयोग**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**जैसी**'' अपप्रयोग है।

२. **पाठ-परिवर्तन**—द्वि०सं० में उपनिषद् का नाम ''**स्वरोपनिषद्**'' परिवर्तित किया गया है। स्वामी वेदानन्द जी, पं० मीमांसक जी और उदयपुर सं० में ''**स्वरोपोपनिषद्**'' नाम दिया है।

३. **अपवाक्य**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**मैंने इसको अयुक्त ठहराई है**'' अपवाक्य है। अन्य सभी सं० में अपवाक्य है।

४. **त्रुटित आवश्यक पाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में कोष्ठकान्तर्गत पद त्रुटित हैं। इनको बढ़ाना वाक्यपूर्ति के लिए आवश्यक है।

५. **विषय-संकेतक वाक्य**—चतुर्दश समुल्लास के विषय की समाप्ति-विषयक वाक्य पृ० १०४२ पर लिखा जा चुका है—''**यह थोड़ा कुरान के विषय में लिखा।**'' अत: यहां अब केवल अग्रिम विषय-संकेतक वाक्य ही उक्त है।

६. **मुद्रणकालीन पाठ**—मूलहस्त० तथा मुद्रणहस्त० दोनों में ही यह समाप्तिसूचक वाक्य अंकित नहीं है। शैली की एकरूपता के आधार पर मुद्रण के समय इस पाठ को बनाकर अंकित किया गया है।